CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

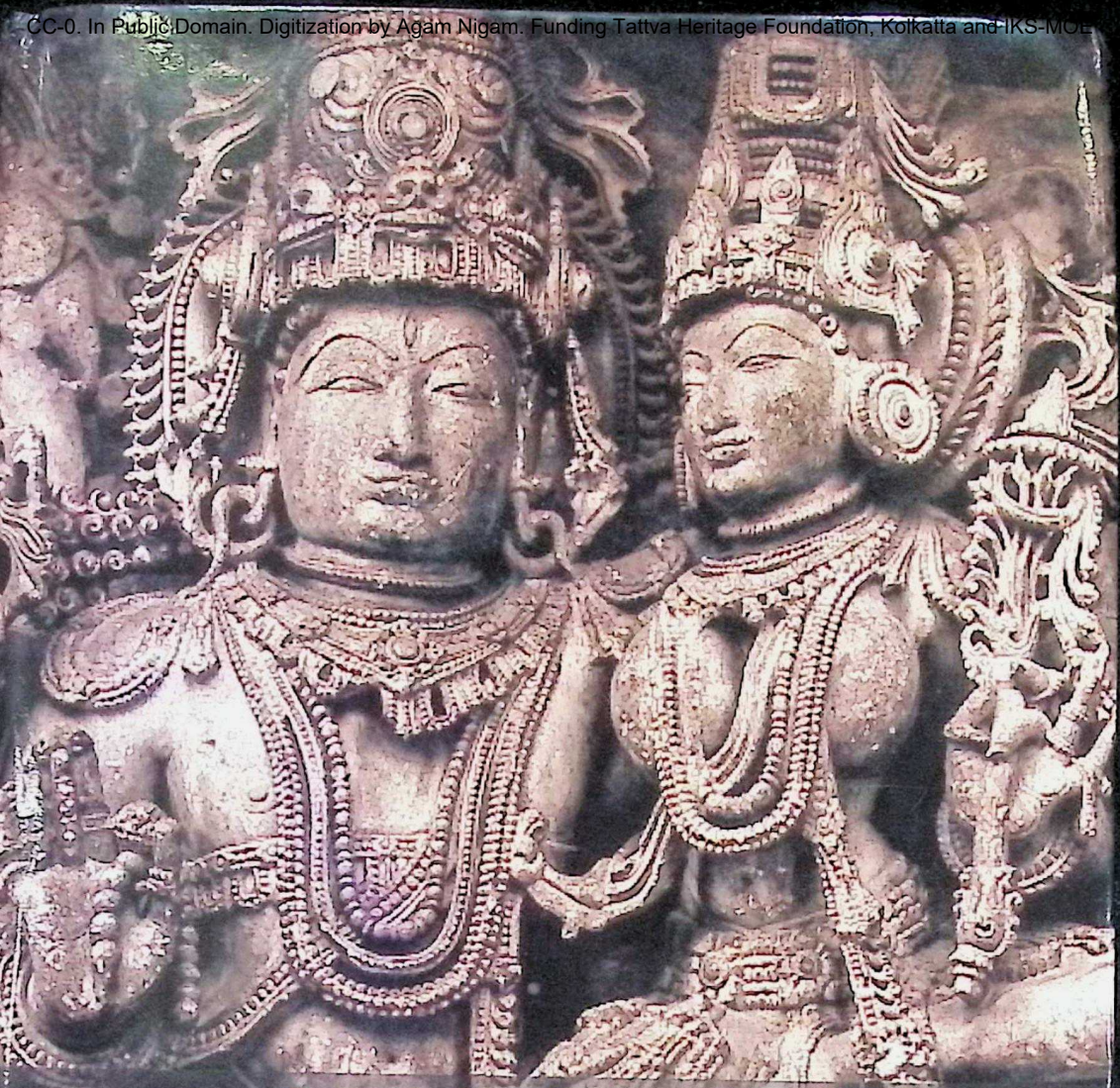

शैवधर्मप्रतिपादकं स्कन्दागस्त्यसंवादमयं

श्रीमद्शिवधर्मोत्तरपुराणम्

(शैवधर्मसम्मत उपपुराण)

(मूलपाठ एवं मोहनबोधिनी हिन्दी टीका सहित)

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

प्रो. भँवर शर्मा

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

C.S.S

CENTRE FOR SHAIVA STUDIES
Puducherry

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१६६

शैवधर्मप्रतिपादकं स्कन्दागस्त्यसंवादमयं

श्रीमद्शिवधर्मोत्तरपुराणम्

(शैवधर्मसम्मत उपपुराण)

(मूलपाठ एवं मोहनबोधिनी हिन्दी टीका सहित)

सम्पादक एवं अनुवादक
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'
प्रो. भँवर शर्मा

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-I

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, विक्रम सम्वत् 2073, सन् 2016

ISBN : 978-81-7080-474-1

© डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के. 37/99, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर (मैदागिन) के पास
पोस्ट बॉक्स नं. 1008, वाराणसी-221001 (भारत)
फोन : आफिस : 0542-2333458; आवास : 0542-334032, 2335020
फैक्स : 0542-2333458
E-mail : cssoffice01@gmail.com
Website : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के. 37/118, गोपाल मन्दिर लेन
निकट गोलघर (मैदागिन), पोस्ट बॉक्स नं 1118
वाराणसी - 221001 (भारत)
दूरभाष : 0542-2335020

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
166

ŚRIMAD ŚIVDHARMOTTARPURĀṆAṂ

(The Mythological Text)

(Text with Mohanbodhini Hindi commentary)

Edited with own sufficient
Notes & translation

By
Dr. Shrikrishna 'Jugnu'
Prof. Bhanvar Sharma

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi
Edition : First, 2016

ISBN : 978-81-7080-474-1

© Dr. Shrikrishan 'Jugnu'

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : Office : 0542-2333458,
Res. : 0542-2334032 & 2335020
Fax : 0542-2333458
E-mail : cssoffice01@gmail.com
Website : www.chowkhambasanskritseries.com

Also can be had from :
CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin), Post Box No. 1118
Varanasi-221001 (India)
Phone : 0542-2335020

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अलख, आनन्द, लक्ष्मी
अध्यात्म गुरु एवं माता-पिता की पुण्य स्मृति में
पुराण शास्त्र के अनुवाद का यह पुष्प.....

- भँवर शर्मा

परम श्रद्धेय पिताश्री व सद्गुरु नित्यलीलालीन
पण्डितप्रवर श्रीमद् मोहनलालजी चौहान
की पुण्यस्मृति में....

- श्रीकृष्ण

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

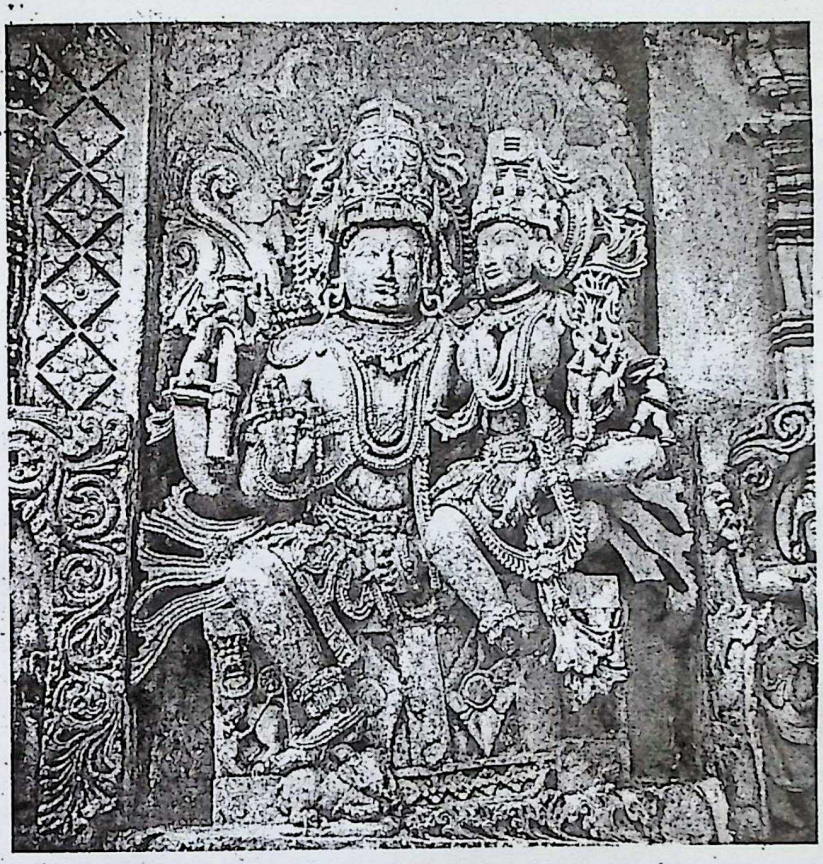

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-I

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पुरोवाक्

शिव की महिमा अनेकानेक शास्त्रों में अनेकविध, नाना स्वरूपों में मिलती है। वे आशुतोष हैं और सर्वसहाय देवता के रूप में स्वीकार्य रहे हैं। उपनिषदों का वचन है कि जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासन-शक्तियों के द्वारा समस्त लोकों पर शासन करता है, वह रुद्र एकमेव हैं अतएव मनीषियों ने जगत के कारण को निश्चित करते हुए अन्य किसी का आश्रय नहीं लिया और यह जान लिया कि वही समस्त जीवों के भीतर विद्यमान हो रहा है, निखिल लोकजगत की रचना करके उनकी सुरक्षा करने वाला परमेश्वर प्रलयकाल में इन सबको अपने में उपसंहारित कर लेता है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 3, 2)

यही नहीं, उपर्युक्त अवधारणा को आत्मसात करके प्रज्ञापुरुषों ने उनको इस रूप में प्रणाम किया कि वे रुद्र उमापति हैं, वे ही समस्त कायाओं में जीवात्म स्वरूप से प्रविष्ठ-प्रतिष्ठ होते हैं, इसलिए सर्वथा प्रणम्य हैं। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है, वे ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के स्वरूप में, प्रजापति लोक में प्रजापति के स्वरूप में, सूर्यमण्डल में वैराट के स्वरूप में तथा देह में जीव स्वरूप में स्थिरीभूत हुए हैं, वे रुद्र सच्चिदानन्दात्मक स्वरूप हैं और इसी अर्थ में पुनः पुनः प्रणम्य हैं; निखिल चराचरात्मक जगत जो वर्तमान है, था और आगे भी रहेगा, वह सब प्रपंचीभूत रुद्र की सत्ता से पृथक् हो ही नहीं सकता, यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रूप में वे प्रणम्य हैं—

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु। पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः। विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्। सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु।

शिव की शास्त्रसत्ता और शिवधर्मोत्तर :

अनेकानेक शास्त्रों का प्रणयन उनके सदास्मितमुखारविन्द से हुआ है। वेदों, ब्राह्मणों से लेकर क्रियानुष्ठानमूलक ग्रन्थों, प्रस्तुतिपरक और शिल्प-स्थापत्य सम्मत शास्त्रों में भी शिव के बहुविध प्रसंग रचे और सम्पादित किए गए हैं। यह शिव की

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-

सर्वत्रगोचर सत्ता का सुपरिभाषित स्वरूप है। उनके सद्योजात, वामदेव, महाघोर, तत्पुरुष और ईशान इन पाँचों ही मुखों से लोकोपयोगी शास्त्रों का प्रवर्तन हुआ है—

सद्योवाममहाघोरपुरुषेशानमूर्तयः।
प्रत्येकं पञ्चवक्त्रास्त्युस्तैरुक्तं लौकिकादिकम्।

(कामिकागम पूर्व. 3, 18-19)

ऐसे शैवधर्मसम्मत शास्त्रों में शिवधर्मोत्तर को पुराण के रूप में आदर प्राप्त रहा है। आधुनिक विद्वानों ने इसको शास्त्र के रूप में भी परिभाषित किया गया है। इसके मूल में कारण है कि स्वयं इसी ग्रन्थ में आया है— शिवधर्मोत्तरं नाम शास्त्रं ईश्वरभाषितम्। किन्तु, यह अगस्त्य-स्कन्द के संवाद के रूप में उपलब्ध है। कामिकागम में शिवधर्मोत्तर का प्राचीनतम सन्दर्भ मिलता है। उसके तन्त्रावतार पटल में जिस ऋषि ने जिस विद्या-शास्त्र को रचा अथवा प्रचारित किया, उनकी विस्तृत सूची मिलती है। यह पटल भारतीय शास्त्रों की उपलब्धता व उनके प्रसारित-प्रचारित होने के सन्दर्भ की दृष्टि से अति ही मूल्यवान है। क्योंकि, इसमें परा-अपरा भेद से शिव प्रकाशक ज्ञान और शिवज्ञान की सूचियाँ हैं। इनको भी लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक तथा अतिमार्गी, मन्त्र नामक और तन्त्रसम्मत भेदों में विभाजित किया गया है। यही नहीं, इसमें शास्त्रों को आपाद शिरस् स्वरूप में भी आकल्पित किया गया है। इसमें नृसिंह से प्राप्य सोमभेद नाम से जिन ग्रन्थों का उल्लेख है, वे पाँच प्रकार के बताए गए हैं और इनमें ही शिवधर्मोत्तर को स्वीकार किया गया है—

नृसिंहः प्राप्तवान् सोमोद्भेदः पञ्चविधो भवेत्।
शिवधर्मोत्तरं चैव वायुप्रोक्तं तथैव च॥
दिव्यप्रोक्तमथैशानं शर्वोद्गीतं विधीयते।

(कामिकागम पूर्व. 3, 84-85)

इस सन्दर्भ के बाद, शिवधर्मोत्तर का उल्लेख शिवपुराण में आता है। पुराणकार के लिए यह बहुत सम्मानस्पद रहा है। उपमन्यु ने स्वीकार किया है कि शैवी विद्या समस्त पशुपाश का विमोचन करने वाली है। यह पंचार्थ नाम वाली है और पशुविद्या से बहिष्कृत है। इसके ग्रन्थ रूप में अन्यतम 'शिवधर्म' और 'शिवधर्मोत्तर' है, जो सर्वथा पुराण और श्रुति सम्मत हैं। शैवागम के रूप में कामिकागमादि चार प्रकार के ग्रन्थ हैं, वे शिव के प्रति विशेषकर सद्कृत्य के रूप में आदरणीय है। इनसे ही मेरे विचारों की पुष्टि होती है, अर्थसिद्धि होती है, उनसे ही कर्म की अन्यतम सिद्धि स्वीकार्य है—

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अथ विद्या परा शैवी पशुपाशविमोचिनी।
पञ्चार्थसंज्ञिता दिव्या पशुविद्याबहिष्कृता॥
शास्त्रं च शिवधर्माख्यं धर्माख्यं तदुत्तरम्।
शैवाख्यं शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसम्मतम्॥
शैवागमश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्विधाः।
शिवाभ्यामविशेषेण सत्कृत्येह समर्चिताः॥
ताभ्यामेव समाज्ञाता ममाभिप्रेतसिद्धये।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम्॥

(शिव. वायवीय. उत्तर. 31, 164-167)

अन्तःबहिर्साक्ष्यों के आधार पर प्राचीनता :

कामिकागम और शिवपुराण में इस ग्रन्थ का सन्दर्भ सुलभ होना इसकी प्राचीनता का प्रमाण है। कामिकागम में स्मृत होने से इसकी रचना उससे पहले ही हो चुकी थी। शिवपुराण का सम्पादन 11वीं सदी तक हो चुका था और कामिकागम उससे पूर्व 8वीं तक अस्तित्व में आ चुका था। ऐसे में शिवधर्मोत्तर की रचना इनसे पूर्व की है और शिवधर्मपुराण के बाद की। हालांकि इसमें नन्दिनागरी लिपि इत्यादि के सन्दर्भ के आधार पर स्वीकारा जा सकता है कि परवर्तीकाल में सम्पादित भी किया गया था किन्तु यह भाषा भी इसी काल में नान्देड़, विजयनगर आदि क्षेत्रों के अभिलेखों में मिलनी आरम्भ होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थकार अक्षरों को सम्पूर्ण अवयवों सहित लिखने का निर्देश करता है, अक्षरों में मात्रा, अनुस्वार, ह्रस्व-दीर्घादि लक्षणों का उचित प्रयोग करने और पुस्तक की पूजा करने पर भी जोर देता है। अग्निपुराण की भाँति ही शिवधर्मोत्तर पुराणकार पुस्तक की यात्रा आयोजित करने, पुस्तक को गजादि पर प्रतिष्ठित कर उसे ऐसे स्थल पर स्थापित करने का निर्देश करता है जिस पर शिवयन्त्र हो। उस स्थल के स्थापत्य का वर्णन भी करता है—

सम्पूर्णावयवैस्निग्धे नाति विच्छिन्नसंहतैः।
मात्रानुस्वारसंयोग ह्रस्वदीर्घादि लक्षणैः॥
नन्दिनागरकैवर्णैः लेखयेत् शिवपुस्तकम्।
सम्पूज्येत्पूर्वं विधिना पुनः पूजां प्रकल्पयेत्॥

(शिवधर्मोत्तर. 2, 41-43)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS

शिवधर्मोत्तर के द्वितीय अध्याय में देशी भाषा (स्थानीय बोली) का महत्वपूर्ण सन्दर्भ आया है और कहा गया है कि जो शिष्य संस्कृत और प्राकृत का अनुकरण करता है, वह सीखा हुआ होता है किन्तु जो देशभाषा में उपाय करना जानता है, वह गुरु होता है। यह भी कहा गया है कि विद्यादान करने वाला शिवात्मक होता है, विद्यादान महादान है और यह समस्त दानों में उत्तमोत्तम है, जो शिष्यों और शिवभक्तों का शिवविद्या के अनुसार प्रतिबोधन करता है, वह विद्यादान है—

अथ विद्याविदे दाता विद्यात्मानं शिवात्मकम्।
तस्यादानं महादानं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥
अध्याप्य यजनैश्शिष्याञ्छिवभक्तान्प्रबोधेयेत्।
शिव विद्यानुसारेण विद्यादानं तदुच्यते॥
संस्कृतैः प्राकृतैर्व्वाक्यैः यश्शिष्यमनुरूपतः।
देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुस्मृतः॥
यथा शिवस्य नेवान्तः सम्पूर्णस्य महात्मनः।
तथा विद्या प्रदानस्य नान्तस्सर्व गुणात्मनः॥

(तुल. व्रतखण्ड प्रथम अध्याय पृष्ठ 235-236)

इसी मत और लिपि की महत्ता को हेमाद्रि ने उद्धृत किया है। पण्डित हेमाद्रि (1260-71 ई.) के चतुर्वर्ग्गचिन्तामणि ग्रन्थ में कहा गया है कि 'लिपि विधात्रा लिखिता जनस्य भाले विभूत्या परिमृत्य दुष्टाम्। कल्याणिनीमेष्ष लिखत्यथैनां चित्रां प्रमाणी कुरुते विधिश्च॥' हेमाद्रि ने नन्दिनागरी लिपि की महत्ता के लिए जो श्लोक दिए हैं, वे शिवधर्मोत्तर सहित देवीपुराण में उपलब्ध होते हैं। हेमाडपंत नाम से ख्यात पंडित हेमाद्रि ने इसके कतिपय श्लोक दानादि प्रसंग में उद्धृत किए हैं और कुछ ऐसे श्लोक भी चतुर्वर्ग्गचिन्तामणि में उद्धृत हैं जो स्कन्दपुराण के बताए गए हैं किन्तु उसके वर्तमान पाठ में नहीं मिलते हैं, ऐसे में वे स्कन्दपुराण के पूर्ववर्ती, सम्भवतः संहितात्मक पाठ में रहे होंगे जो उस समय कदाचित विद्यमान हो और उनको बाद में शिवधर्मोत्तर में सम्मिलित किया गया अथवा दोनों के ही लिए ये अन्य किसी स्रोत से लिए गए हों। पण्डित हेमाद्रि देवगिरि के शासक यादव, नारायण प्रौढ प्रताप चक्रवर्ती रामदेव या रामचन्द्र राव का करणाधिप रहा और अपने काल का उद्भट विद्वान था, उनके योगदान का एक शिलालेख पंढरपुर में शक 1195 का मिला है। उनके सम्बन्ध में एक शिलालेख में कहा गया है— सा सम्पत्तदिदं यशो बलमिदं सोथं प्रतापो महानेकैकं पृथिवीभृतो भुवि महादेवस्य लोकोत्तरम्। यस्य श्रीकरणाधिपः स्वयमयं हेमाद्रिसूरिः

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पुरः प्रौढप्रातिभवर्ण्यमानविलसद्वंशो भृशं शोभते॥ *(हेमाद्रि ऊर्फ हेमाडपंत : केशव आप्पा पाध्ये, पुणे, 2008, पृष्ठ 199)* हेमाद्रि ने अपने निबन्ध ग्रन्थ के लिए उपस्कार ग्रन्थ के रूप में शिवधर्मोत्तर का आश्रय लिया है। इससे पूर्व याज्ञवल्क्यस्मृति के टीकाकार अपरार्क (1100-1130 ई.) ने एक स्थान पर शिवधर्मोत्तर के मत को उद्धृत किया है। इससे यह स्पष्ट है कि हेमाद्रि से पूर्व अपरार्क के काल से पूर्व तक यह ग्रन्थ प्रामाणिकता के लिए प्रसिद्धि अर्जित कर चुका था और जनोपयोगी विविध प्रसंगों में प्रमाण के लिए इसके श्लोकों को उद्धृत और प्रस्तुत किया जाने लगा था। यह इसकी प्राचीनता और सर्वप्रियता का उदाहरण है जो उससे पूर्व लगभग चार सौ वर्षों की अवधि में रही है।

उत्तरवर्ती धर्मपुराण के रूप में ख्याति :

यह उत्तरपुराणों की कोटि का ग्रन्थ है, क्योंकि विष्णुधर्मोत्तरपुराण के काल (500-600 ई.) से ही उत्तरपुराणों की जो परम्परा देखने में आती है, उसी क्रम में शैवरचनाकारों द्वारा इसका नामकरण किया गया लगता है। वैष्णव और शैव ही नहीं, सौरधर्मावलम्बियों ने भी इस तरह से नामकरण का आश्रय लिया है। कालमाधवादि में सौरधर्मोत्तरपुराण का सन्दर्भ भी मिलता है। यह परम्परा भविष्योत्तर तक देखने को मिलती है। यह भी प्रतीत होता है कि पुराणों के समानान्तर विषयों को ग्रहण करते हुए धार्मिकों को समय-समय पर इस प्रकार की रचनाओं की आवश्यकता अनुभव हुई और ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। यह समय उत्तर-गुप्तकाल स्वीकार्य प्रतीत होता है क्योंकि इसी काल में बौद्धमत के क्षरण के साथ ही वैष्णवों, शैवों, शाक्तों और सौरों का अपूर्व अभ्युदय दिखाई देता है। भारतीय समाज में इन मत-सम्प्रदायों का अप्रत्याशित प्रचार-प्रसार दिखाई देने लगता है। यह प्रभाव ग्रन्थों के समानान्तर प्रासाद और शिल्प-स्थापत्य में भी लक्षित होता है। अधिकाधिक जन समुदाय को अपनी ओर आकर्षित करने के ध्येय से पूजोपासना की पद्धतियों का भी सरलीकरण होता गया और न केवल भारतीय बल्कि यहाँ आगन्तुकों को भी अपने प्रभाव क्षेत्र में लिए जाने के बहुतेरे प्रयास होते रहे। इस दृष्टि से शिवधर्मोत्तर की विषयवस्तु को भी देखा जा सकता है।

शिवधर्मोत्तरपुराण के अद्यावधि अप्रकाशित होने से इसके स्वरूप को लेकर उहापोह की स्थिति ही रही है। इसके सम्बन्ध में दो सूचनाएँ अब तक ज्ञात है। एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता में शिवधर्म नाम से जो पुराण की पाण्डुलिपियाँ हैं, उनमें से प्रथम मातृका नेवारी लिपि में हैं। इसमें कुल 8200 श्लोक परिगणित हैं। हालांकि इस मातृका के नाम से छह ग्रन्थ हैं— 1. शिवधर्म, 2. शिवधर्मोत्तर, 3.

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS

शिवधर्मसंग्रह, 4. उमा-माहेश्वर संवाद, 5. शिवोपनिषद् एवं 6. उत्तरतन्त्र। उक्त अध्यायों के आधार पर यह स्पष्ट है कि इस पुराण में शिवभक्ति, शिवपूजन, शिवलिंगार्चन विधि, शिवलिंगोत्पत्ति, प्रासाद, शान्ति, दान, शिवलिंगमहाव्रत, उपवास, गोदान एवं शिवाश्रम जैसे विषयों का विवेचन है।

एशियाटिक सोसायटी के उपाध्यक्ष महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने प्राकृत एवं संस्कृत ग्रन्थों की जो सूची 1915 में तैयार कर प्रकाशित करवाई, उसमें नेपाल दरबार लाइब्रेरी में विद्यमान इसकी पाण्डुलिपियों की सूचना है। इसके अनुसार (3) 393 क्रम में शिवधर्म की दो प्रतियाँ हैं। ये पाण्डुलिपि साढ़े 22 गुणा 2 इंच के आकार पर है और कुल पत्र 285 हैं जिनमें पाँच-पाँच पंक्तियाँ प्रत्येक पत्र पर हैं और नेवारी लिपि में कुल 9000 हजार श्लोक हैं। अध्यायों का विवरण इस प्रकार है—

पत्र 41 (1). 12 अध्याय — इति शिवधर्म।

पत्र 52 (2) 12 अध्याय — इति शिवधर्मोत्तर समाप्त।

पत्र 59 (3) — इति शिवधर्म संग्रह समाप्त।

पत्र 32 (4) — भगवतो गीतपुराणे धर्मगुह्ये राजेन्द्रमोक्षणं उमा-माहेश्वर संवादे एकविंशतितमोऽध्यायेः।

पत्र 24 (5) उत्तरोत्तर।

पत्र 19 (6) इति शिवोपनिषद।

पत्र 46 (7) बृषसारसंग्रह समाप्त।

पत्र 12 (8). 16 अध्याय— पदपुत्रिका। *(पॉम लीफ एण्ड सेलेक्टेड पेपर्स मैन्यूस्क्रीप्ट बिलोगिंग टू द दरबार लाइब्रेरी नेपाल : महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, एम. ए., सी. एल. ई, वाल्यूम 2, बेपटिस्ट मिशन प्रेस, कोलकाता 1915, पृष्ठ 86-87)*

यह पाण्डुलिपि आषाढ़ शुक्ला तृतीया, नेपाल संवत् 189 तद्नुसार 1069 ई. की है। इसके अन्त में यह भी आया है कि शंकर नामक महाराज के काल में धर्म के आश्रय, सद्कुल में जन्मे गुणप्रिय राघव नामक सिद्ध ने इस समग्र शिवधर्मशास्त्र को लिखा—

नवोत्तरराशीतियुते$_{189}$ शतेऽब्दे आषाढ शुक्लस्य तिथौ तृतीये।
श्रीशङ्कराख्ये जयति क्षीतिन्द्रे श्रीजज्वलस्योत्तरटोल्लकेयः॥
धर्माश्रयः सदकुललब्ध जन्मा गुणप्रियो राघव सिद्धनामा।
ज्ञानप्रकाशं शिवधर्मशास्त्रं शुभप्रतिष्ठं कृतयान् समग्रम्॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

कर्तुरेतेन पुण्येन भूयात् लक्ष्मीरनुत्तरा।
त्रैलोक्यपूजितं शैव वाक्यं जयति सर्वदा॥

इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह शैवधर्म का उत्तरवर्ती पुराण है, इसमें कहा गया है— शिवमादौ शिवं मध्ये शिवमन्ते च सर्वदा। अर्थात् इसमें शिव ही आदि में, मध्य में और शिव ही अन्त में सदा विद्यमान है। उक्त वर्णन के परिप्रेक्ष्य में जब प्रस्तुत लेखक ने इसके पाठ का अनुसन्धान किया तो तेलुगु और नेवारी लिपि में पाठ उपलब्ध हुआ। इस उपलब्ध पाठ की यदि समीक्षा करें तो ज्ञात होता है कि शिवधर्मोत्तर अधिकांशतः संवाद शैली की अपेक्षा सीधे-सीधे ही लिखा गया है। इसमें कुल 12 अध्याय है और गद्य सहित मिलाकर लगभग 2000 श्लोक हैं। पुराण के अध्यायों का स्वरूप उनके अन्त में उपलब्ध पुष्पिकाओं के क्रम से इस प्रकार ज्ञात होता है —

1. गोषडङ्गविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः। (कुल श्लोक 150)
2. विद्यादानफलं नाम द्वितीयोऽध्यायः। श्री साम्ब सदाशिवार्पणमस्तु। (कुल श्लोक 196)
3. पञ्चमहायज्ञगुणाध्यायो नाम तृतीयोऽध्यायः। (कुल श्लोक 88$^{1/2}$)
4. सत्पात्रं गुणं नाम चतुर्थोऽध्यायः। (कुल श्लोक 199$^{1/2}$)
5. शिवसङ्गत्य नाम पञ्चमोऽध्यायः। (कुल श्लोक 153)
6. पापभेदं नाम षष्ठोऽध्यायः। (कुल श्लोक 101)
7. नरकविशेषनाम सप्तमोऽध्यायः। (कुल श्लोक 253)
8. संसारप्रसवाख्यानं नामाष्टमोऽध्यायः। (कुल श्लोक 235)
9. स्वर्ग-नरकचिह्नो नाम नवमोऽध्यायः। (गद्यपाठ एवं लगभग 10 श्लोक)
10. ज्ञानयोगो नाम दशमोऽध्यायः। (कुल श्लोक 198)
11. प्रायश्चित कथनं नामैकादशोऽध्यायः। (कुल श्लोक 187$^{1/2}$)
12. पातालादि शिवलोकपर्यन्तानां लोकानां निरूपणं तत्र विशेषतो गोलोकवर्णनं द्वादशोऽध्यायः। (अतिभागो न विद्यते, पाण्डुलिपि अपूर्ण, श्लोक लगभग 247)

यथास्थान इसमें बारहवें अध्याय में अगस्त्य उवाच के रूप में निम्न श्लोक है— श्रुत्वैतत्परं गुह्यं गवां देह समुद्भवम्। ब्रह्मकूर्चस्य माहात्म्यंमगस्त्य पुनब्रवीत्॥ इसी प्रकार प्रथम अध्याय के आरम्भ में 'स्कन्दागस्त्य संवाद रूप षडक्षरमन्त्रप्रभावं' आया है, इससे यह ज्ञात होता है कि यह स्कन्द और अगस्त्य के संवाद रूप में आरम्भ हुआ

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS

है। तेलुगु लिपिकार ने अधिकांश अध्यायों के अन्त में साम्बसदाशिवार्पणमस्तु लिखा है, इससे ध्वनित होता है कि उक्त मातृका दक्षिण भारत में कहीं तैयार हुई।

इसका आरम्भ इस प्रकार होता है—

शिवमस्तु सर्वजगतां परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु शान्ति सर्वत्र सुखी भवन्तु सकललोकाः॥
ज्ञानशक्तिधरं शान्त कुमार शङ्करात्मजम्।
देवारिसूदनं स्कन्दमगस्त्य परिपृच्छति॥

(शिवधर्मोत्तर. 1, 1-2)

प्रसिद्ध पुराणवेत्ता प्रो. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा ने शिवधर्मोत्तर पर एक विस्तृत परिचयात्मक आलेख लिखा था जिसका प्रकाशन उनके अभिनन्दन ग्रन्थ में भी हुआ है। यह प्रस्तुत ग्रन्थ में सश्रद्ध उद्धृत किया जा रहा है। इसमें इसकी उपलब्ध और सूचित-संकेतित प्रतिलिपियों, पाण्डुलिपियों से लेकर विविधानेक प्रमाणों को दिया गया है। उनको यहाँ दोहराना उचित नहीं होगा किन्तु यह स्वीकारना होगा कि शैवधर्म सम्मत ग्रन्थों में इसको प्रतिलिपित करके रखने की परम्परा रही है। यह शिवधर्मपुराण के आगे संयुक्तकर रखा जाता था। प्रस्तुत पाठ को अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास में विद्यमान पाठ के आधार पर सम्पादित किया गया है किन्तु संशोधन के लिए पूर्वा-पर अनेक ग्रन्थों के श्लोकपाठों से तुलना की गई है। स्थल-स्थल पर यह प्रयास देखने को मिलेगा।

शिवधर्मोत्तर के कतिपय विशिष्ट स्थल :

इस पुराण की विषय-वस्तु पूर्व में इसके अध्यायों के रूप में प्रतिपादित की जा चुकी है और अन्यान्य विषय इसमें द्रष्टव्य है। इस पुराण में तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीति परम्पराओं की सुन्दर झांकी है। शिवधर्मोत्तरकार दानादि के सम्बन्ध में शिवालयों के अर्थ में दानादि वस्तुओं के फलाफल के सम्बन्ध में भी कहता है। इनमें छत्रदान, वस्त्रदान, शिबिका या पालकी दान, शय्यासनदान, वाटिका निर्माण आदि मुख्य हैं—

छत्रदानेन गच्छन्ति यथा यान्द्रेण देहिनः।
दिव्यवस्त्रपरिधानाः यान्ति वस्त्रान प्रदाय सः॥
शिबिकायाऽऽभयदानेन स रथेन सुखं व्रजेत्।
शय्यासन प्रदादेन सुख यान्ति सविश्रमाः॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

आरामकर्ताश्चायासु शीतकासु सुखं व्रजत्।

(शिवधर्मोत्तर. 7, 7-9)

यही नहीं, इसमें गोधन की महत्ता आई है। शिवसाधकों के मठादि में गोशालादि के निर्माण की विधि इसमें आई है। गोधन की महत्ता इसमें उस काल की प्रमुख विशेषता के रूप में दिखाई देती है। पुराणकार गोधन के नष्ट होने पर कृषि के नष्ट होने की बात कहता है, आँधी की प्रबलता पर भी इसी आशंका को व्यक्त करता है —

गावोनष्टाः कृषिर्भग्नाः वातश्च प्रबलायते।
आधामि प्राहुणिकाः प्राप्ताः भग्नछिद्रं च मे गृहम्॥

(शिवधर्मोत्तर. 8, 170)

अनेक प्रकार के अपराधों का इसमें स्मरण हुआ है, यह उस काल के समुदाय की दशा का परिचायक है। लोग राजभय से भी नहीं डरते थे, ऐसे में नरक का भय दिखाया जाता था। इसमें नरक का वर्णन सर्वाधिक हुआ है। यही वर्णन बाद में शिवपुराणकार के लिए भी आदर्श सिद्ध हुआ। शिवपुराणकार ने इसके वर्णन को ज्यों का त्यों ग्रहण किया है, यह कहते हुए अतिशयोक्ति नहीं होती है। ग्रन्थ में यथास्थान पादटिप्पणियों में यह स्पष्ट किया गया है। ग्रन्थकार अपने पारम्परिक कर्म के अनुसरण-अनुकरण पर जोर देता है और कहता है कि अन्य किसी का कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि उसमें दारुण क्लेश होता है। इसके परिणामस्वरूप मूल से कटे हुए वृक्ष की तरह उसे अवश होकर भूमि पर गिरना पड़ता है। (तत्रैव 200)

शिवधर्मोत्तर में पद्य सहित गद्यपाठ भी उपलब्ध है। यह इस ग्रन्थ के पुरातन ग्रन्थ सम्मत विशेषता है। स्वर्ग-नरक वर्णनमूलक नवाँ अध्याय इस रूप का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें कर्मानुसार ही फल मिलने की मान्यता है। यह फल इहलोक और परलोक दोनों में ही सम्भावित कहा गया है। इसके उपाय के लिए कहा गया है कि सदा अक्षय सुखों की प्राप्ति के लिए दान करें। इससे भोग वैसे ही समाप्त हो जाते हैं जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटे नदी-नाले जलविहीन हो जाते हैं। (9, 5) दसवें अध्याय में ज्ञानयोग को पारिभाषित किया गया है। यह संसारचक्र से मुक्ति के उपाय के रूप में है और इसे शिवप्रकाशक ज्ञान की संज्ञा से मण्डित किया गया है। इसके प्रारम्भिक श्लोकों से विदित होता है कि उस काल में अनेक प्रकार के मत-सिद्धान्त व्यवहार में थे किन्तु पुराणकार कहता है कि वे अपने ही विचारों के विरोध में तर्क सम्मत विचार करें और ज्ञान तथा अपवर्ग के

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS

तत्त्व के अनुसन्धान में जुट जाएँ। (10, 2) शिवशास्त्र की प्रशंसा में कहा गया है कि यह सब अर्थों का प्रकाशक, शाश्वत और मुमुक्षुजनोपयोगी है। इसमें धर्माधर्म, बन्धन और मोक्ष के उपदेश पर विचार करने का निर्देश है। (10, 12) योग और योगांगों के वर्णन के साथ मण्डलीकृत साधनाओं का सन्दर्भ साधकों के लिए उपयोगी है। योग को इसमें छह प्रकार का बताया है— प्राणायाम, प्रत्याहार, प्रतिस्थान धारणा, ध्यान, जप और समाधि। (10, 111)

ग्यारहवें अध्याय में प्रायश्चित विधि के अन्तर्गत स्कन्द ने उत्थापन, मूत्रोत्सर्ग, शौचाचार नियम, वस्त्रशौच विधि, स्थानशुद्धि, कार्दमादि शुद्धि, शाकादि की शुद्धि, जल की शुद्धि आदि बताई है। पाँच प्रकार की शुद्धि मनुस्मृति सम्मत (5, 133, 145) है। इसी प्रकार द्रव्य की शुद्धि, शिरस्नान विधि, उपवीत धारण विधि, सन्ध्याचरण के साथ ही अनेक प्रकार के प्रायश्चितों का प्रावधान है। अन्तिम बारहवें अध्याय में पातालादि अनेक लोकों का वर्णन बहुत ही रोचक है और पुराणवर्णन सम्मत है। इसमें गोलोक की सभी कामनाएँ पूरी करने वाली कहा गया है— गोमातृलोकं परमं सर्वकाम समन्वितम्। (12, 3) सप्तद्वीपा पृथ्वी का वर्णन अन्यान्य पुराणों के अनुसार ही मिलता है। प्रस्तुत पाठ में उनकी तुलना देवीभागवत और कूर्मादि पुराणों के सन्दर्भों से की गई है। ऊर्ध्वलोकों के वर्णन के बाद शिवपुर का वर्णन है और उसको विष्णु लोक से ऊपर बताया गया है। वहाँ के प्राणियों का वर्णन मिस्रादि देशों के शिल्प में मिलने वाले प्राणियों के रूपों से तुलनीय है। ईश्वर के लोक से भी ऊपर धर्मवृष की स्थिति का वर्णन है और शिवलोक और गोलोक में एकात्म बताया गया है और वहाँ विराजित रहने वाली गायों के नाम नन्दा, भद्रा, सुरभि, सुशीला और सर्वकामदा हैं। (12, 89-90)

गायों के सुभाषित इस ग्रन्थान्त की अनूठी विशेषता है। इनको चतुवर्ग्गचिन्तामणिकार ने भी उद्धृत किया है। महाभारत, बृहत्पराशरस्मृति में भी इस प्रकार के वचन मिलते हैं। इसी में गोशाला के निर्माण और उसके फल तथा प्रबन्धन का वर्णन है। प्राचीन भारत में गोशाला के निर्माण और उनके विधि-विधान के अध्ययन-अनुसन्धान की दृष्टि से यह वर्णन बहुत रोचक है। वहाँ पर बछड़ों के पालन-पोषण के प्रबन्धन का विवरण अनुकरणीय है। गोशाला में ब्रह्मादि तीनों ही देवताओं, देवियों, पंचसंघाती, विनायक, सोम, नन्दी की पूजा का निर्देश है। (12, 110-113) इसी क्रम में गाँवों में आहारगृह बनवाने का पुण्य, गोदान, वृषभदान, गोकुलदान और गोप्रशंसा है। वृषविषयक पापों का वर्णन प्रासंगिक इस अर्थ में है कि आज यह गोधन सुरक्षित नहीं है। उनकी सुरक्षा के लिए जो स्वर आज उठाया जा रहा है, उसकी पुष्टि

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शिवधर्मोत्तर से होती है। कदाचित इसलिए राजाओं के काल में वृषभ की सुरक्षा भी गायों की तरह ही की जाती थी। बड़ौदा प्राच्य विद्या मन्दिर में विद्यमान 'गोविज्ञानम्' नामक एक ग्रन्थ मातृका (क्रमांक 13514) में इसी प्रकार का वर्णन है— इत्येवं प्रार्थ्य वृषभं पूजयित्वा विशेषतः। श्रान्ता यथा ते न क्लान्तास्तावत्कार्यमुदीरितम्॥ तन्मनःक्लेशहेतुश्च विफलाय विनिश्चितः। तस्मान्न योजयेत् श्रान्तान् वृषभान् कृषिकर्मणि॥ (जर्नल ऑफ द ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, मार्च-जून 1980, पृष्ठ 225)

शिवाश्रम की यात्रा का माहात्म्य शिवलोक प्राप्ति के हेतु के रूप में कहा गया है। (12, 182-183) शिवज्ञानियों के प्रति वस्त्र, कृष्णाजिन, सव्यजनभिक्षा, जल, कलश और नाना पात्र के दान के फल भी इसमें कहा गया है। इसी प्रकार शिवब्रह्मचारियों का वर्णन है और अन्त में ग्रन्थ की महिमा है।

आभार निवेदन :

शिवधर्मोत्तरपुराण के प्रस्तुत पाठ की मातृका की उपलब्धता के लिए अड्यार लाइब्रेरी, चैन्नई के संचालकों का अनेक-अनेक आभार स्वीकारता हूँ। यह पाठ हालांकि बहुत ही त्रुटित और खण्डित था। इसके सम्पादनकार्य में जितना श्रम और समय व्यय करना पड़ा, उससे कम श्रम व समय में इतने नवीन श्लोकों को रचा जा सकता था। यह शिवकृपा ही थी कि इसके कई श्लोक अथवा उनसे सम्बद्ध विषय अन्यान्य पुराणादि ग्रन्थों में प्राप्त हुए किन्तु इनको ढूँढ़ने में पर्याप्त परिश्रम लगा। यथास्थान उन ग्रन्थों का संकेत दिया गया है। उनके सम्पादनकर्ताओं, विद्वज्जनों का भी आभार ज्ञापित करता हूँ।

इसके अनुवाद में परमादरणीय श्रीभँवरलालजी शर्मा ने निष्काम सहायता की है। उनके प्रति आभार क्या निवेदित करूँ, वे मेरे अपने ही हैं और शिल्प ग्रन्थों की तरह इस ग्रन्थ में भी शिवस्वरूप में सहाय रहे। कई ऐसे स्थानों को उन्होंने चिह्नित किया था जो दुरूह या अस्पष्ट थे। सम्पादन के समय उन स्थलों पर विशेष श्रम करना पड़ा। कुछ स्थल ऐसे भी हो सकते हैं जो कि त्रुटित हों, किन्तु उनको अर्थ और भाव की दृष्टि से आत्मस्थ किया जाना चाहिए। अनुवाद और सन्दर्भ शोधन में ज्येष्ठ पुत्री सौ. कां. अनुभूति चौहान और अनुज श्री अरविन्द चौहान का सहयोग रहा। इसके टंकणकार्य में छोटी पुत्री अनुकृति चौहान और पुत्र गौरव चौहान ने परिश्रम किया। इस ग्रन्थ का कार्य सचमुच गिरिराजोत्थान के समान ही था, प्रभुवर श्रीनाथजी ने जो सहायता की, वह

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS

अनिर्वचनीय है। इसकी जो अच्छाइयाँ हैं, वे सब उनके अनुग्रह का ही सुपरिणाम हैं।

इसके प्रकाशन का दायित्व देश के प्रसिद्ध संस्कृत सेवी प्रतिष्ठान चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी के संचालक आदरणीय श्रीमान् ब्रजमोहनदासजी गुप्ता ने सहर्ष स्वीकार किया और बहुत सुन्दर स्वरूप में इसे लोककरवल्लभ करने का श्रम किया है। उनके प्रति अनेकशः आभार और धन्यवाद। विद्वज्जन इस स्वल्प किन्तु महत्वपूर्ण शैव ग्रन्थ का सम्मान करेंगे और शोधादि के लिए स्वीकारेंगे, श्रद्धालु इसको पारायणादि के लिए ग्रहण करेंगे, यह अपेक्षा है।

और अन्त में यही निवेदन है, इदं शिवधर्मोत्तरं नाम्नोपपुराणमब्रवीत्। षण्मुखं प्रोक्तमगस्त्यमुनिवरं प्रतिं पुरा॥ यः पठेत् शैवं सम्बद्धां यथा मर्त्यो महामतिः। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत कीर्तिमान्नरः॥

पुरुषोत्तममास प्रतिपदा, वि. सं. 2072 — विद्वद्वशंवदः
17 जून, 2015 ईस्वी. — *श्रीकृष्ण 'जुगनू'*
उदयपुर (राजस्थान)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

THE ŚIVA-DHARMOTTARA*

This is an interesting and fairly popular work[1] awaiting

---

* JGJRI, Vol. XIII, pts 1-4, pp. 19-50.

1. In analysing this unpublished work we have chiefly used Ms. No. G. 3852 preserved in the Library of the Asiatic Society, Calcutta. This Ms. is written on palm-leaf in Newari characters 'of the twelfth century' A. D., and consists of the following six works on Saivism : (1) *Śivadharma,* (2) *Śiva-dharmottara,* (3) *Śiva-dharma-saṅgraha* (4) *Umāmaheśvara-saṁvāda,* (5) *Śivopaniṣad,* and (6) *Uttarottaratantra.*

   For further information about this Ms. See Haraprasad Shastri, *Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Government Collection under the care of the Asiatic Society of Bengal* (hereinafter referred to as 'Shastri, *ASB Cat.'),* Vol. V, No. 4085, pp, 723-744.

   For other Mss. Of the *Śiva-dharmottara* See.

   (i) Shastri, ASB Cat., V. No. 4084, pp. 718-723 (Ms. No. G. 4077) which is written on palm-leaf in Newari script and contains nine different works on Saivism, of which the first six are the same as those in Ms. No. G. 3852 already mentioned, the seventh is the *Vṛṣa-sārasaṅgraha*, and the last two are both named *Lalita-vistara.* In this Ms. the eighth work, called *Lalita-vistara,* contains a post-colophon statement, which informs us that one 'Kula-putra-Ratna-siṁha' copied it in 'संवत् अदभ' (i.e. Newari year 156=1036 A. D.) during the victorious reign (vijayarajye) of 'Parama-bhaṭṭāraka-mahārājādhirāja-parameśvara-sri-Lakṣmī-kāma-deva'.

   (ii) Haraprasad Shastri, *Catalogue of Palm-leaf and Selected Paper Manuscripts belonging to the Durbar Library, Nepal,* P. 92, No. 36 (complete in 12 chapters; written in Newari script).

   (iii) *Catalogueof Sanskrit Manuscripts in the Adyar Library,* Part I, p. 158, Ms. No. 30 C 20 आ 332 (written in Andhra script).

   (iv) M. Winternitz, *Catalogue of South Indian Sanskrit Manu-*

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IK

publication. Like the *Śiva-dharma* (of which we have said elsewhere[2]) it is a short manual of religious rites and duties meant exclusively for the Śiva-worshippers. It consists of twelve chapters but is little more extensive than the *Śiva-dharma,* of which it is said to form the latter part. According to a statement made in its concluding chapter, this work was originally spoken out by Kumāra to the sage Agasti in 12000 verses dealing with Karma-yoga, Jñānayoga, and the nature of Dharma and Adharma, and, after fully comprehending its contents, Agasti spoke out its essence briefly in twelve chapters.[3] It should be mentioned here

---

scripts (especially those of the Whish Collection) belonging to the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland (London, 1902), No. 156 (Whish No. 162), p. 214 (a palm-lealf Ms. Complete in 12 chapters and written in Malayalam of the 17th or 18th century A. D.).

(v) P. P. S. Sastri, *Descriptive Catalogue of the Sanskrit Mss. in the Tanjore Maharaja Serfoji's Sarasvati Mahal Library* (Tanjore), Vol. XV, p. 7156, Nos. 10555-6 (complete in 12 chapters and written in Devanāgari Script).

(vi) A. C. Burnell, *Classified Index to the Sanskrit Manuscripts in the Palace of Tanjore* (London, 1880) p. 195 (complete in 12 chapters; written in Devanāgari).

(vii) R. L. Mitra, *Notices of Sanskrit manuscripts,* VI, pp. 272-4, No. 2208 (containing the *Śiva-dharma* and the *Śiva-dharmottara; written in Bengali script).*

(viii) G. Buhler, *Detailed Report of a Tour in Search of Sanskrit Mss. Made in Kashmir, Rajputana and Central India* (*JBBRAS*, Extra Number, 1877), p. vii.

For small treatises claiming to belong to the *Śivadharmottara* see.

(i) Shastri, *ASB Cat.,* V, p. 830, No. 4174A, Ms. No. G. 5628 (written in 'Udiya of the nineteenth century' and dealing with Vratas).

(ii) *A. B. Keith,* catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss. in the Library of the India Office *(London), II, ii, p. 1000 (a section on Umā-maheśvara-vrata).*

2. For our article one the *Śiva-dharma see Journal of the Ganganatha Jha Rsearch Institute* (Allahabad), X, 1852-53, pp. 1-20.

3. The relevant verses are the following.

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

that of this revised work, which has come down to us in Mss., Chap. 9 is composed mostly in prose.

The *Śiva-dharmottara* calls itself a 'Śastra' or 'Āgama' on several occasions[4] but not a 'Purāṇa' or 'Upapurāṇa' even once; it has none of the Puraṇic characteristics; and its name does not occur in any of the numerous lists of eighteen Upapurāṇas[5] known to us. Yet it came to be recognized as on Upapurāṇa, probably because of its title which connects it with the *Śiva-dharm* as the latter part of that work.

Beginning with a salutation to Śiva, called Hara, who bears on his head a crescent moon, has around his neck a snake and a garland of white skulls, and carries in his hand a trident with which he pierced the demons, the *Śiva-dharmottara* states that as Skanda[6] has heard the various kinds of Dharma (religious

---

उक्तं द्वादशसाहस्री (? स्रं) शिवधर्मोत्तरं महत्।
अगस्तये मुनीन्द्राय कुमारेण महात्मना।
इतीह कर्मयोगस्य ज्ञानयोगस्य तत्त्वतः।
धर्माधर्मगतीनां च स्वरूपमुपवर्णितम्।
इत्येतदखिलं बुद्ध्वा संक्षिप्यागस्तिरब्रवीत्।
द्वादशाध्यायसंयुक्त मिति सारं विमुक्तिदम्।
शिवधर्मोत्तरं शास्त्रं..... Chap. 12 (fol. 88a).

4. See, for instance, the following lines :
'Śivadharmottaram nama śāstram īśvara bhāṣitam' –Chap.1 (fol. 40b);
'atha dharmāḥ sivenoktāḥ śivadharmottare' –Chap. 5 (fol. 35b);
'Śiva dharmottarm śāstram vācayed yaḥ śṛṇoti ca' –Chap.12 (fol. 88a).
In a second place in Chap. 12 (fol. 88a) the name *'Śivadharmottara-śāstra'*.

5. For these lists see my article in *Annals of the Bhandarkar Oriental Rsearch Institute,* XXI, 1940, pp. 39ff. See also *Padma-purāṇa,* Pātāla-khaṇḍa, 111. 94b-98; and *Vindhyamāhātmya* (claiming to belong to the *Bṛhad-auśanasaupapurāṇa)* chap. 4 (Shastri, *ASB Cat,* V, pp. 745-6, No. 4086, Ms. No. G. 8091; fol. 8a).

6. He is also mentioned in this work under the names of Kumāra and Mahāsena and is said to be a son of Śaṅkara, an annihilator of the enemies of gods, and the possessor of knowledge and power (Jñānaśaktidhara)-See verse 2 of Chap. 1.

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IK

duty) described by Śiva to Devī, Agasti requested him to speak 'briefly' *(saṁkṣepāt)* on 'Śiva-dharma' (religious rites and duties relating to Śiva) including Liṅga-worship, donation especially of books *(vidyādāna),* performance of various pious acts which entitle people to practise Śaiva Yoga, performance of the five Great sacrifices *(mahāyajña)* viz., Karmayajña, Tapo-yajña, Svādhyāya-yajña, Dhyāna and Jñāna-yajña, signs of pious men and sinners, and so on. Consequently, Skanda spoke out "the Śastra named *Śiva-dharmottara* (which was originally proclaimed by Īśvara (i.e. Śiva)".[7]

Thus, laying claim to a divine origin and introducing its contents in the first fifteen verses, the *Śiva-dharmottara* goes on to describe the religious duties to Śiva. It praises Śraddhā (faith) as the first principle of life and as the best type of Tapas (austerity), and stresses upon its importance in the apprehension of the subtle *(sūkṣma)* Dharma which leads to final release. It lays down the characteristic features of a Mantra (which is to consist of only a few syllables, to be easy of pronunciation, to have great significance, to be capable of leading to final liberation, and so on), and praises the sis-syllabled Mantra 'oṁ namah śivaya', which is said to be the seed *(bīja)* or essence of all sciences *(sarva-vidyānām)* and to be expressive of Śiva described as 'pañca-brahma-tanu' and the cause of liberation. According to it, "the sixs-yllabled Mantra remains in the both the Veda and the Śivāgama [and] in the mouth of the good, and among the people [at large] it is remembered as consisting of five syllables."[8]

By way of praising faith in the words of Śiva and glorifying a spiritual guide who explains and preaches these words, the *Śiva-dharmottara* enjoins upon the Śaiva teachers the highly important duty of imparting instructions ofn Śiva-dharma to kings as well as commoners. The former are to be convinced by means of 'the eight-limbed discourse' *(aṣṭāṅga-vādena)* on Śiva and to be won over first to the practice of Śiva-dharma and then gradu-

---

7. For the relevant line see foot-note 4 above.
8. *Śivadharmottara,* Chap. I (fol. 41b)-

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ally to (Śaiva) Jñāna-yoga; and a wise Śaiva, who can enlighten a king given to sensual pleasures and acquisition of wealth and win him over to Śiva-dharma and Jñāna-yoga, is said to be known and respected as a universal teacher *(jagadguru)*[9]. A king in his turn, who, being himself attracted to Śiva-worship, encourages his subjects and other kings to practise Śiva-dharma, is said to be able to enjoy the various benefits accruing from this pious acts. As to the method of spreading Śiva-dharma among the common people the *Śiva-dharmottara* says that the Śaiva teachers are to propagate his Dharma among them by terrifying or tempting the illiterate and by influencing the greedy by means of spells, medicines, mystic rites, etc.[10]

After devoting a good number of verses of the praise of imparting instructions to kings, the *Śiva-dharmottara* distinguishes between good and bad speech, saying that those words which though sweet and polished, excite passion, hatred, anger, and similar other feelings and thus cause rebirths and lead to hell by creating nescience are really bad and vulgar, but fine words are those which, in spite of their being unattractive, create virtue, and destroy passion and other feelings which cause bondage.[11] As to

---

9. Ibid., chap. 1 (fol. 42a)-
   मन्त्रौषधिनिधिक्षेत्रबिलमूलरसक्रियाः।
   धर्ममार्गावताराय वादोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः।।
   प्रत्याय्याष्टाङ्गवादेन कामार्थाभिरतं नृपम्।
   शनैर्धर्मे नियुञ्जीत ज्ञानयोगे पुनः क्रमात्।।
   एवं यः सर्वयत्नेन राजानं बोधयेद् बुधः।
   जगद्गुरुः स विज्ञेयः सर्वलोकानुकम्पकः।।
10. Ibid., chap. 2 (fol. 42a)-
   उपायेन भयाल्लोभात् मूर्खान् सदानुबोधयेत्।
   मन्त्रौषधिकियाद्यैर्वा लुब्धान् धर्मे निवेशयेत्।।
11. Ibid., chap. 2 (fol. 42a)-
   रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारि यत्।
   वाक्यं निरयहेतुत्वात् तद् दुर्भाषितमुच्यते।।
   संस्कृतेनापि किं तेन मृदुना ललितेन च।
   अविद्यारागवाक्येन संसारक्लेशहेतुना।।
   यच्छ्रुत्वा जायते पुण्यं रागादीनां च संक्षयः।
   विरूपमपि तद् वाक्यं विज्ञेयमतिशोभनम्।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IK

the necessity of the study of Śāstras in life the *Śiva-dharmottara* says :

"The Purāṇa, the Bhārata, the Vedas, and the highly extensive Śāstras—all these are destructive of longevity, [because] Dharma [to be derived from them] is scanty, [whereas] there is a [great] extent and multiplicity of works."

"The great burden of sons, wives, etc. to perfectly infatuated persons, and that of Śāstras to learned people, - both of these are harmful to the practice of [really] beneficial Yoga."

"One who wants to know everything, thinking 'This has to be known', 'This has to be known', does not get to the end of Śāstras, even though he may have a life of a thousand years."

"(So,) knowing the 'Akṣara-tanmātra' and the life to be extremely fickle, one should set aside the multitudes of Śāstras and perform works beneficial in the next world."

"What is the good of a scholar and an able-bodied person who are incapable of bearing the burden of virtue beneficial in the next world?"

"A person, who is unable to deliver his own self from rebirths, is a fool, even though he may be a scholar, and lacks strength, even though he may be [physically] strong."[12]

The *Śiva-dharmottara* allows the Śaiva teachers to use Sanskrit, Prakrit or any of the local dialects as a medium of reli-

---

12. Ibid., chap. 1 (fol. 42a-b)-

पुराणं भारतं वेदः शास्त्राणि सुमहान्ति च।
आयुषः क्षयणाः सर्वे धर्मोऽल्पोग्रन्थविस्तरः।।
पुत्रदारादिकं भारः पुंसां संमूढचेतसाम्।
विदुषां शास्त्रसंभारः सद्योगाभ्यासविघ्नकृत्।।
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयं यः सर्वं ज्ञातुमिच्छति।
अपि वर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नाधिगच्छति।।
विज्ञायाक्षरतन्मात्रं जीवितं चातिचञ्चलम्।
विहाय शास्त्रजालानि परलौकिकमाचरेत्।।
पण्डितेनापि किं तेन समर्थेन च देहिना।
यः पुण्यभारमुद्वोढुमशक्तः पारलौकिकम्।।
पण्डितोऽपि स मुर्खः स्याच् छक्तियुक्तोऽप्यशकिमान्।
यः संसारात् स्वमात्मानमुत्तारयितुमक्षमः।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

gious instruction.[13] It extols a Śaiva teacher and calls him 'Vidyāparameśvara' (the supreme master of learning) who, being intimate with the meanings of Śaivatantras, restores the correct texts of Śaiva works made defective by time or spoiled by bad scribes and inefficient teachers in various ways, viz., by leaving out syllables or inserting new ones during copying, by wrongly reading a text, by making arbitrary changes in the text by way of correction, by separately reading the different members of a compound word, by reading the text in such a way as to create contradiction in sense or to give no sense at all, by creating serious metrical defects, and so on.[14] It then gives a detailed description of the method which is to be followed by the rich in giving away manuscripts of Śaiva scriptures copied by themselves or by scribes. According to this method, the donor has to worship Śiva, and Śaiva scripture to be copied for donation, and his spiritual guide. Next, he has to select a suitable place, in which a circular or quadrangular Vidyāmaṇḍala (i.e., a sacred piece of ground meant for keeping the book to be given away) of eight or four cubits is to be prepared with scented water mixed with cow-dung, and a lotus *(padma)* is to be painted in this Maṇḍala with white powder. Outside the lotus the Maṇḍala has to be decorated with painting of

---

13. Ibid., chap. 2 (fol. 43a)-

संस्कृतैः प्राकृतैर्वाक्यैर्यः शिष्यमनुरूपतः।
देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुः स्मृतः।।

The words संस्कृतैः प्राकृतैर्वाक्यैः may also be taken to mean 'polished or unrefined language.'

14. Ibid., chap. 2 (fol. 43b)-

शिवज्ञानस्य कालेन विनष्टस्य प्रमादतः।
ऊनातिरिक्तवर्णस्य मूढैर्दुर्लिखितस्य च।।
प्रमादाधीतपाठस्य नाशितस्याल्पबुद्धिभिः।
ज्ञानावलेपमानान्धैराचार्यैः शोधितस्य च।।
व्यस्तैः पदैरुपेतस्य पुनरुक्तस्य चार्थतः।
पूर्वोत्तरविरुद्धस्य स्वसिद्धान्तविरोधिनः।।
छन्दसातीवनष्टस्य शब्दार्थरहितस्य च।
इत्येवमादिभिर्दोषैरुपेतस्य क्वचित् क्वचित्।।
यः करोति पुनः सम्यक् संस्कारं पूर्ववद् गुरुः।
शिवतत्त्वार्थविद् धीमान् स विद्यापरमेश्वरः।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IK

different hues and with flowers of five colours; and a white or variegated canopy is to be spread over it. This canopy is to be set with pearls and small bells and decorated with hanging threads, pearl-necklaces, balls *(kanduka),* etc. The four posts, supporting the canopy, are to be covered with coloured cloth; and there should be four pitchers strewn over with white lotuses and earthen dishes containing germinating barley and Śali grains. An ivory throne, worked with gold and gems, is to be placed and worshipped, and on this throne the holy book, frm which the copy is to be made, and the leaves, which are to be used in preparing this copy, are to be kept and worshipped with the offer of flowers, incense, etc. Then, after worshipping his spiritual guide and having his permission, the donor is to take his bath, decorate himself, and begin to prepare the copy by writing five verses at first. He is then to feed his spiritual guide, and also Brāhmaṇas, beggars, invalids and others, to ask his spiritual guide's pardon, to take his meal, and to make offerings to Gaṇas at night. Next morning, a small Vidya-maṇḍala of two cubits is to be painted with various hues, decorated with flowers, shallow earthen dishes *(śarāva)* containing germinating barely grains, etc., and covered with a canopy. The book, to be used as the original, is to be brought down from the throne, placed on a special stool called Śara-yantra, and worshipped. Thus, every day, after worshipping the holy book, the work of copying is to be continued, the script used being Nandi-nagara as described in the following verses :

"चतुरस्त्रैः शमशीर्षैर्नातिस्थूलैर्नवा कृशैः।
सम्पूर्णविभवैः स्निग्धै र्नातिविछिन्नसंहतैः॥
मात्रानुस्वारसंयोगः (? ग-)ह्रस्वदीर्घादिलक्षितैः।
नन्दिनागरकैर्वर्णैर्लेखयेच् छिवपुस्तकम्॥"[15]

After the copy is completed, the donor is to observe fast, worship Śiva, Agni, the religious teacher, and the newly written manuscript, and keep awake at night with various diversions such

---

15. Ibid., chap. 2 (fol. 44a)-
The fourth line is the same as *Devi-purāṇa* (Vaṅgavāsī Press ed.) 91.53a.

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

as the sounding of drums and other musical instruments, singing of songs, performance of dance, narration of stories of Śiva, recitation of Vedic texts, exhibition of attractive shows and playful performances *(prekṣaṇakaiś ca śobhanaih, krīḍāyatta-prayogādyaiḥ),* and so on. In the following morning a beautiful Vimāna (car, conveyance) is to be constructed with wood and bamboos as covered with a piece of coloured cloth, and the Śaiva work *(śiva-jñānasya pustakam)* is to be placed in it together with the stool. This book is to be decorated with paintings, furnished with leather at the side, and tied tightly with a piece of strong thread.[16] The Vimāna, with the holy book in it, is to be taken to a Śivāśrama in a chariot. Or, it may be carried there either by strong men or by an elephant, and on its way to the Āśrama it should be taken round the city in a big procession led by the king and attended with songs of females *(Strīsaṁgītaiḥ).* The persons joining the procession should include wandering singers, professional bards, Brahmanas loudly citing Vedic hymns, and females carrying beautiful chowries and singing songs. While the book is thus carried to the Āśrama, Offerings are to be made in all directions and at every step. On this occasion the citizens are to clothe themselves in white, their houses are to be decorated with flags, Brāhmaṇas are to be fed by householders, no harm is to be done to anybody, not even to trees, enemies, imprisoned through rage, are to be released,[17] and the Kaumudi (Mahotsava), though out of time, is to be observed for two days in every house.

After the book has thus been taken to the Śivāśrama, it is to be kept before the image of Śiva in sanctified place and offered to the Śaiva teacher *(guru).* For averting evils *(śāntyartha)* of cows Brāhmaṇas, kings, country-folk and townspeople, a chapter of this work is to be read out by a good reader, who is to have thorough knowledge of metres, to be a good poet, to have a

---

16. Ibid., chap. 2 (fol. 44b)-
Pārśve carma-samāyuktaṁ dṛḍha-sūtra-nibandhanam.
17. Ibid., chap. 2 (fol. 44b)-
Bandhanasthāś ca moktavyā baddhāḥ krodhena śatravaḥ.

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IK

sweet voice, to know the science of music, and to be a cultured man *(vidagdha)*. The teacher, receiving the work, is to sprinkle the king and other persons present there with the water meant for averting evils, and to mean peace to the whole world. After feeding his teacher and paying honorarium to him, the king is to dine with his attendants and the females of the harem, and the dinner is to be followed by various shows.[18]

The copy of the Śaiva work, received by the Śaiva teacher, is to be kept in a Vidya-koṣa-gṛha made with cloth, and for this Vidyā-koṣa-gṛha, a Vidyāyatana, eight cubits in length, is to be constructed with stone, bricks, earth or wood and furnished with doors, doorpanels, bolts, walls, gardens, flags, canopy, bells, chowries, etc. In this Vidyāyatana the casket containing the holy book *(vidyā karaṇḍaka)*[19] is to be placed with ceremony; and the book is to be worshipped thrice daily like Śiva himself.

In connection with the donation of manuscripts the *Śiva dharmottara* gives details of the construction of a highly beautiful, three or four-storied house *(pura)* or monastery *(maṭha)* called Śivāśrama (hermitage of Śiva) and meant for Śiva and his worshippers. This house or monastery, which is to be built on a plinth having a height of two cubits and also pillars at the sides, is to be furnished with small but beautiful caves (or cubicles) meant for those who have given themselves up to the acquirement of knowledge of Śiva. It is to have a big kitchen in the south-east with an outlet for smoke, a sacrificial hall in the east, a room for incense and flowers in the north-east, a store-room *(bhāṇḍāgāra)* in the north, a granary *(koṣṭhāgāra)* in the north-west, and a bath-room in the west with windows. In the south-west there should be

---

18. Ibid., chap. 2 (fol. 45a)-
Kāryā ca vividhā prekṣā bhuktavatsu janesu ca.

19. This casket, which is to be made of gold, silver, copper, bellmetal, iron, wood, bamboo, etc. and to have a lid *(pidhana)*, has other peculiarities as mentioned in the verse :
सर्वाश्मकटकोपेतं दृढसूत्रनिबन्धनम्।
कुर्यात्तालकसंयुक्तं विद्यारत्नकरण्डकम्।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

a room for fuel, sacrificial wood, kuśa grass and weapons, and in the south there should be a safe and pleasant room meant for guests and furnished with bed, seats, foot-wears, water, fire, lamps and good servants. The intervals between the different rooms are to be decorated with groups of water-banana plants and with flowers of five hues; and outside the wall surrounding the entire mansion, there should be a good and well-arranged flower-garden, around which there should be another big outer-wall furnished with gates and door panels and surrounded by a ditch.[20] Above the third story there should be a beautifully painted lecture-hall *(vidyā-vyākhyāna-maṇḍapa)* with a Vidyā-maṇḍala in it and with windows and outlets; and in the uppermost story (?) a room *(vaḍabhī-gṛha)*, six or eight cubits in length, is to be made with beautiful cloth, and, after the ceremony of consecration of

---

20. The relevant verses of the *Śivadharmottara* (Chap. 2, fols. 46 b-47a) are the following :

यः कारयेन्महारम्यं सुवेदिसंस्थितं पुरम्।
पञ्चभौमं त्रिभौमं वा शिवज्ञानरतात्मनाम्।।
गुहाप्रवरकैर्युक्तं मैत्रस्थानसमन्वितम्।
वास्तुविद्याविभक्तं च प्राकारपरिवारितम्।।
तस्य वेदी द्विहस्तोच्चा पर्यन्तस्तम्भसंयुता।
पक्षे (? क्वे)ष्टकापरिच्छिन्ना तत्सुरम्यं भ्रमन्तकम्।।
सुवीथ्याः पुरतः कार्यं दिश्याग्नेय्यां महानसम्।
धूमनिर्गमनोपेतं पूर्वतः सत्रमण्डपम्।।
गन्धपुष्पगृहं कार्यमैशान्यां पटसंयुतम्।
भाण्डागारं च कौबेर्यां कोष्ठागारं च वायवे।।
उदकाश्रयं च वारुण्यां वातायनसमन्वितम्।
समित्कुशेन्धनस्थानं आयुधानां च नैर्ऋते।।
अभ्यागताभयं रम्यं शय्यासनसपादुकम्।
तोयाग्निदीपसद्भृत्यैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत्।।
गृहान्तराणि सर्वाणि जलजैः कदलीगृहैः।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत्।।
प्राकारान्तर्बहिर्दद्यात् पञ्चहस्तप्रमाणतः।
प्राकाराच्च बहिःकुर्यात् सर्वदिक्षु समन्ततः।।
दिव्यं शिवाश्रमारामं नानापुष्पोपशोभितम्।
सर्वर्तुकगुणोपेतं नानावृक्षसमन्वितम्।।

* * * *

स्थानविन्यासरचितैः सन्मार्गाधारसंयुतैः।
पुष्पैर्बहुविधैर्युक्तं दिग्विदिक्षु जलान्वितम्।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

the Śivāśrama is over, an earthen, wooden or stone image of Nakulisvara Śiva is to be established in this Vaḍabhī-gṛha with due worship. According to the *Śiva-dharmottara* this Nakulīśvara Śiva is the creator (or ordainer) of all the Sciences *(vidyā);* he is omniscient and is surrounded by his disciples and grand-disciples; he has one of his hands raised in explaining the Śāstras and is seated in a particular posture called Padmāsana; he is very white, has a pleased countenance, and is a teacher.[21]

The Śivāśrama, thus constructed, is to be provided with temple-girls *(śivāyatana-yoṣitaḥ)* called 'Rudra-gaṇikās' (harlots or female Gaṇas of Rudra), who may have willfully accepted that position in life, or who may have been presented there by somebody, or purchased for the purpose, or compelled to be so as a sort of punishment, or reduced to that state per force; and the descendants of these Rudra-gaṇikās are said to attain heaven after death by dint of their mothers' virtues.[22]

Going to describe the religious duties of Śiva *(Śiva-dharma)*,[23] for which it is exclusively meant, the *Śiva-dharmottara* speaks of their ten constituent parts *(skandha)*, viz., abstention from killing or giving pain to others, toleration, truthfulness, modesty, devotion, control of the organs of senses, munificence, performance of sacrifice, muttering (of the Mantra), and

---

21. *Śivadharmottara*, chap. 2 (fol. 47a)-
    तृतीयाच्च पुरादूर्ध्वं विद्याव्याख्यानमण्डपम्।
    गवाक्षनिर्गमोपेतं विचित्रं परिकल्पयेत्।।
    पुरार्धं पञ्चमं कार्यं शिवस्य वडभीगृहम्।
    षड्हस्तमष्टदीर्घं वा चारुपट्टविनिर्मितम्।।
22. Ibid., chap. 2 (fol. 47b)-
    दत्ताः कीताः प्रविष्टाश्च दण्डोत्पन्नाबलात्कृताः।
    विज्ञेया रुद्रगणिकाः शिवायतनयोषितः।।
    या रुद्रगणिकोत्पन्ना पुत्रपौत्रादिसन्ततिः।
    सापि याति मृता स्वर्गे मातुरेवानुभावतः।।
    तत्र मृद्दारुशैलं वा स्थापयेद् विधिवच् छिवम्।
    सर्वविद्याविधातारं सर्वज्ञं लकुलीश्वरम्।।
    वृतं शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याख्यानोद्यतपाणिकम्।
    पद्मासनस्थं सुश्वेतं प्रसन्नवदनं गुरुम्।।
23. See *ibid.*, chap. 3 (fols. 49a-50a). Also chap. 5 (fols. 53b-54a).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

meditation, and says that the nature of enjoyment is determined by the virtue earned by the practice of Śiva-dharma.[24] It mentions the five great sacrifices *(pañca mahāyajña),* of which Karma-yajña is said to consist of worship, sacrificial rites, etc., Tapo-yajña, of austere practices such as Cāndrāyaṇa, Svādhyāya-yajña, of the repetition of the Śiva-mantra, Dhyāna-yajña, of the incessant thinking of Śiva, and Jñāna-yajña, of teaching, studying, explaining, hearing and thinking of Śaiva scriptures. Accoding to this work, worship *(pūjā)* yields nothing more than a great kingdom, and the cult of Fire *(agni-kārya)* leads one to prosperity; so, Karma-yajña is much inferior to Tapo-Yajña, which, in its turn, is far excelled in efficacy by Svādhyāya-yajña which frees one from sins. Dhyana-yajña and Jñāna-yajña, which constitute Śiva-yoga, are together capable of yielding final emancipation; but Jñāna cannot be attained without the practice of Yoga. It is only by the practice of Yoga after getting away from all kinds of attachment to objects of senses that one can attain Jñāna which causes tranquility of mind, undisturbed concentration on god, and immunity from Upadhis. Ajñāna, on the other hand, is the cause of bondage and rebirth and, consequently, of untold suffering and misery in life. It can be destroyed not by karman but by Jñāna[25] which puts a stop to all kinds of attachment to worldly objects and thus makes one go beyond the domains of virtue and vice. "A successful Yogin, who has been satiated by the nectar of Jñāna, has no duty; but if he has any, he has not known the Truth."[26] "Just as one furnished with the power of spells, is not bitten by snakes when playing with them, so also a Jñānin, though playing with the snakes in the forms of the organs of senses, is not bitten by them. As a poison, taken [by one], is assimilated through the power of spells and herbs, so also the sinful acts of those possess-

---

24. *Ibid,* chap. 5 (fols. 53b-54a).
25. *Ibid,* chap. 3 (fols. 49b).
    Jñānena ca tad ajñānaṁ nivarteta na karmabhiḥ.
26. *Ibid,* chap. 3 (fol. 49b).
    ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।
    नैवास्ति किञ्चित् कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

ing Jñāna are digested (i. e., made ineffective) immediately [after these are done by them]."[27] As a matter of fact, "neither the holy places full of water nor the gods made of stone or earth reach those Yogins who have realized their own Self."[28] One, who realises Śaṁkara as omnipresent, finds him in his Ātman. "Persons failing to realise Śiva in their own Ātman search for him in a holy place."[29] "To those who are given to work the gods are in Fire, to the talented (sages) they are in heaven, to the unenlightened they are in images, and to the Yogins they are in their Ātman. The Yogins find Śiva in their Ātman and not in images. Due to Ājñāna, an image is worshipped for inspiring thought. One, who forsakes Śiva residing in his Ātman and worships the deity remaining outside, licks his elbow by leaving of the lump of food in his own hand."[30] So, people should try to experience the deity in their own Ātman, and for this purpose they should study the highly effective but least tiresome (works on) knowledge of Śiva in preference to the Vedas whose results are not directly perceived.[31] These people should also practice the faultless and liberating

---

27. *Ibid,* chap. 3 (fol. 50a).
यद्वत् मन्त्रबलोपेतः क्रीडन् सर्पैर्नदृश्यते।
कीडन्न दृश्यते ज्ञानी तद्वद् इन्द्रियपन्नगैः।।
मन्त्रौषधिबलैर्यद्वज् जीर्यते भक्षितं विषम्।
तद्वत् पापानि कर्माणि जीर्यन्ते ज्ञानिनां क्षणात्।।

28. *Ibid,* chap. 3 (fol. 50a).
तीर्थानि तोयपूर्णानि देवाः पाषाणमृण्मयाः।
योगिनो न प्रपद्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारिणः।।

29. *Ibid,* chap. 3 (fol. 50b).
Ātmastham ye na paśyanti tīrthe mārganti te śivam.

30. *Ibid,* chap. 3 (fol. 50).
अग्नौ क्रियावतां देवा दिवि देवा मनीषिणाम्।
प्रतिमास्वप्रबुद्धानां योगिनामात्मनिस्थिता।।
शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः।
अज्ञानाद् भावनार्थाय प्रतिमा परिपूजिता।।
आत्मस्थं यः शिवं त्यक्त्वा बहिःस्थं यजते शिवम्।
हस्ते पिण्डं समुत्सृज्य लिहेत् कूर्परमात्मनः।।

31. See *ibid,* chap. 3 (fol. 50b).
सत्यामागमवार्तायामप्रत्यक्षे च तत्फले।
अधेयमीश्वरं ज्ञानमल्पक्लेशं महाफलम्।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

Śiva-yoga by giving up the austerities which are difficult to practise and all sacrificial rites which ae troublesome and yield scanty result.[32]

It has already been said that the *Śiva-dharmottara* subordinates Karma-yoga to Jñāna-yoga. As a matter of fact, it regards the (Vedic) fire-cult as yielding unstable results[33] and discourages people from practicing austerities and performing the Vedic sacrificial rites. Even as regards Rudra-worship[34] it does not entertain any high opinion, inasmuch as it says that people attain different regions (such as those of piśācas, Rākṣasas, etc.) by worshipping Rudra in different ways. For instance, a worshipper is said to be able to go to the Yakṣa-loka by worshipping Rudra thrice a day with the intention of taking wine and meat *(madyamāṁsāturāḥ)*, to the Gandharva-loka by worshipping him three or four times daily with song and dance, to the Indra-loka by worshipping him five times a day, to the Prājāpatya-loka by worshipping him six times daily with a passionate mind *(kāmāsakta citta)*, to the Soma-loka by worshipping him seven times a day, to the Brahma-loka by worshipping him eight times a day with the Gāyatrī, to the Viṣṇu-loka by worshipping him nine times a day, and even to the Rudra-loka (also called Śiva-pura), which is situated above Viṣṇu-pura and meant for those who are given to Karma-yoga, without making much effort. The *Śiva-dharmottara* further tells us that above Śiva-pura there are three excellent regions *(sthāna-trayaṁ param)* of Skanda, Uma and Śaṁkara,[35] the last occupying the highest position and being

---

32. See *ibid*, chap. 3 (fol. 50b)-
    एवं हि कष्टानि तपांसि यज्ञान् क्लेशात्मकानल्पफलप्रदांश्च।
    संत्यज्य सर्वान् शिवयोगमेकं ध्यायेत् परं मुक्तिकरं विशुद्धम्।
33. Cf. *ibid*, chap. 3 (fol. 51a)-
    तस्मात् स्वग्नीयमुत्सृज्य कर्मयोगमशाश्वतम्।
    ध्यायेन्नित्यं विशुद्धं च ज्ञानयोगमनुत्तमम्।।
34. See *ibid*, chap. 5 (fol. 54a-b).
35. These three deities have been described as follows :
    श्कन्दं शक्तिधरं शान्तं षड्मुखं शिखिवाहनम्।
    तप्तचामीकरप्रख्यं त्रिशिखं बालरूपिणम्।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

the only place where rebirth is unknown.

Among other topics of interest the *Śiva-dharmottara* mentions the establishment of hospitals *(ārogya-śala)*[36] and poor-houses *(anātha-maṇḍapa)*[37] and the free distribution of medicine among the diseased *(ārtauṣadhi-dāna)*.[38] The hospitals are to be fully equipped *(sarvopakaranopetā)* and attended by great physicians *(mahāvaidya-samanvitā)*. In connection with the method of Śivaworship this work says[39] that in the Go-mātṛ-loka (the region of Cows, which is the same as Śiva-pura or Śiva-loka) there are five divine Cows named Mandā,[40] Subhadrā, Surabhi, Suśilā and Sumanas, who came out of the churned ocean and are the mothers of the whole world *(sarvalokasya mātarah)*. It is further said that from these five Cows, who came down to the earth from Śiva-pura descended all the cows on earth; from their dung originated all kinds of lotus-seeds as well as the Bilva tree, in which Śri (Lakṣmī) resides permanently; their urine was the source of origin of the fragrant gum resin; the seed of the world *(jagad-bīja)* came out of their milk; and nectar originated from ghee.

Besides the subjects mentioned above the *Śiva-dharmottara* deals with the following topics :

Method of Śiva worship[41] which includes the following

प्रभाभिर्भाषिततनुं सर्वलोकानुकम्पकम्।
ध्यायमानः प्रसन्नात्मा गुहस्थानमवाप्नुयात्।।
कन्यारूपामुमां शान्तां सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
ध्यायमानः सदा भक्त्या देव्याः स्थानमवाप्नुयात्।।
शुद्धस्फटिकसंकाशं जटामुकुटधारिणम्।
त्र्यङ्गं चतुर्भुजं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।।
वरदाभयहस्तं च त्रिशूलासक्तपाणिकम्। ध्यायमानः शिवं नित्यं शिवस्थानमवाप्नुयात्।।

Śivadharmottara, Chap. 5 (Fol. 54 b)

36. *Ibid*, chap. 2 (fol. 48a)-
37-38. *Ibid*, chap. 7 (fol. 58a)-
39. See *ibid*, Chap. 1 (fol. 42b) and Chap. 12 (fol. 84a)
40. In Chap. 1 the name 'Mandra' (for 'Nanda') occurs.
41. This method is called 'ṣaḍ-aṅga vidhi' (six-limbed procedure') For description of this method see *ibid.*, Chap. 1 (fols. 42b-43a) and Chap. 4 (fols. 51b-52a).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

operations : bathing the deity with ghee, milk and curd, which, being derived from cows, are highly sanctifying; offer of Bilva-leaves, red and blue lotuses, etc., and then of various kinds of delicious food including meat and other things cooked with ghee,[42] burning of fragrant gum resin after worship; circumam bulation and salutation of the deity, and prayer to him for forgiveness. Praise of performing, seeing, hearing or encouraging Śiva-worship.

Praise of giving copies of Śaiva works to students and worthy Śaiva teachers.[43]

Method of worshipping a Śaiva scripture *(śiva-Jñāna-pustaka)* on the full-moon day of Vaiśākha or Āśāḍha. (On this occasion all the requisites for preparing a copy are to be worshipped, viz., leaves, thread, ink-pot, pen, stool called Śara-yantra, seat, unguents, bed, good food, the sum to be given as remuneration, and so on.[44]

Praise of presenting a piece of cloth for covering the manuscript as well as a canopy for use at the place where the manuscript is kept and worshipped.[45]

Praise of giving food, clothes, foot-wears, umbrellas, bed, bed-sheets, seats, collyrium, unguents, requisites for bath, feasts, medicine, etc. to those given to the acquisition of knowledge of Śiva *(śiva-jñānabhiyukta)*.[46]

Results of reading, hearing, etc. of a complete or half verse

---

42. For a list of these varieties of food to be offered to Śiva See Chap. 4, fols. 51b-52a. These varieties include the following also; boiled rice with ghee; the same with soup; the same with pungent condiments; Śaṣṭika rice; various kinds of Śāli rice (viz., Sugandha-śāli, Raktaśāli and Kalama-śāli); tasteful condiments; milk with rice; scented drinks; special varieties of fruits; delicious sweets prepared with ghee; various kinds of sweet and fragrant curd prepared with sugar; and so on.
43. *Śiva-dharmottar,* Chap. 2 (fols. 43a-45a).
44-46. *Ibid.* Chap. 2 (fol. 45b).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

of a Śaiva scripture.[47]

Procedure of inaugurating a Śaiva monastery (*śivāśrama)* and of establishing an image of Śiva in it. (This procedure includes a number of functions, viz., Śivādhivāsa, silent recitation of five kinds of Śaiva hymns, Śivavijñāpana, etc.)[48]

Construction of small rooms in front of a Śiva-temple, each to accommodate one or two Śaivas; furnishing these rooms with coloured circles (called *Śiva-maṇḍalaka*) containing the figure of a lotus in the middle; and dedication of these rooms to Śiva.[49]

Praise of drawing Maṇḍalas for Śiva, the Śaiva scripture *(Vidyā)*, and the spiritual guide *(Guru)* and making a *Vidyā-maṇḍapa* (i.e., a shed for the scripture) in the lecture-hall *(vidyā-vyakhyānamaṇḍapa).*[50]

Praise of offer of food, cooked or not, to Śiva, Agni and Guru. All kinds of food are to be offered to Śiva first of all; next, Homa is to be performed by throwing a small part of these into the fire; and then a portion is to be offered to the spiritual guide. Observance of this procedure is said to destroy sins arising from cultivation, usury, trade, anger, untruth, and 'the five places of slaughter' *(pañcasūnā)*. Sins arising out of violation of this procedure.[51]

Superiority of Jñāna to vows, donation, austerities, sacrifices, etc.[52]

---

47. *Ibid.* Chap. 2 (fol. 46a).
48. *Ibid.* Chap. 2 (fol. 47a).
49. *Ibid.* Chap. 2 (fol. 47b-48a).

कृत्वा सुकुट्टिमं भूमिमीश्वरायतनाग्रतः।
तत्र मण्डलकं कुर्यात् सुवृत्तं गोमयाम्भसा।।
सूत्रेण समितं कृत्वा नानावर्णकशोभितम् ।
विचित्रकुसुमाकीर्णं मध्ये पङ्कजशोभितम्।।
प्रदीपाक्षतसंयुक्तमुदकं भ्राम्य पाणिना।
मूर्ध्ना प्रणम्य मेदिन्यां शिवाय विनिवेदयेत्।।

50. *Ibid.* Chap. 2 (fol. 48a).
51. *Ibid.* Chap. 4 (fol. 51b).
52. *Ibid.* Chap. 2 (fol. 49b).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

Praise of meditating on Śiva.[53]

Praise of serving Śiva-Yogins with food, drink, shelter, bed, clothes, etc.[54] and of seeing them, speaking with them and honouring them with food in a Śrāddha ceremony,[55] Results of neglecting or denouncing Śiva-Yogins.[56]

The five qualifications of a donor, viz., courtesy, generosity, friendliness, compassion and impartiality. Names of places suitable for making gifts, viz., Vārāṇasi. Kuruksetra, Prayāga, Puṣkara, Gaṅga-tīra, Samudra-tīra, Naimiṣa, Amara-kaṇṭaka, Śrīparvata, Gokarṇa, Vedaparvata, etc. Suitable time for making gifts, viz., eclipses, winter and summer solstice, etc. Necessity of Śraddhā in making gifts. The five components of Śraddhā.[57]

Nature of Śiva-dharma (which is free from the intention of doing mischief and the feeling of hatred, requires no physical torture or acute effort, is pure, extremely subtle and beneficial to all beings, yields the best results, has many branches all rooted in Śiva and so on).[58]

Discourses on *Adharma* (sinful acts), which varies with the inclination of sinners. Classification of *Adharma* into gross *(sthūla),* subtle *(sūkṣma)*, super-subtle *(susūkṣma)* etc. Description of Sthūla Adharma, which relates to the mind, speech and body. Four kinds each of mental, verbal and physical Adharma. Various other sinful acts, viz., denouncement and hatred of Śiva and his worshippers; stealing of Śaiva scriptures or of articles offered to Śiva; giving up of Saiva customs; denouncement or neglect, in any way, of one's spiritual guide; committing of the heinous crimes called *Mahāpātaka;* committing of sins with respect to the

---

53. *Ibid.* Chap. 3 (fol. 50a and 51a).
54. *Ibid.* Chap. 3 (fol. 48b-49a).
55-56. *Ibid.* Chap. 4 (fol. 52a and 52b respectively).
57. *Ibid.* Chap. 4 (fol. 53b).
The components of श्रद्धा are as follows
भक्तिर्भावपरा प्रीतिः शिवधर्मैकतानता।
प्रतिपत्तिरिति ज्ञेयं श्रद्धापर्यायपञ्चकम्।।
58. *Ibid.* Chap. 5 (fol. 53b).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

Brāhmaṇas (viz., divulging their serious faults, humiliating them by one's learning, refusing them after inviting to accept gifts, creating obstacles to them when they are hungry, dispossessing them of their property earned by fair means, and so on); giving up of Śiva-jñāna after studying it; forsaking of one's parents as well as of the sacrificial rites such as the Agnihotra, the five great sacrifices, and so on; killing of innocent animals living in forests; not giving a marriageable daughter in marriage; having sexual union with a son's wife, a friend's wife, a sister, a virgin girl, an Antyaja woman, and so on.[59]

Enumeration of the *Upapātakas*[60] committed by the following acts : refusing a person after promising to give him money; stealing an article belonging to a twice-born man; transgressing the boundary; allowing one's own self to be subject to extreme vanity or rage or to haughtiness, ungratefulness, miserliness, etc.; over-addiction to objects of senses; adultery; marrying before one's elder brother; doing mischief to a Śaiva monastery *(śivāśrama)* with respect to its trees, inmates, cattle, agricultural products (such as paddy), etc.; selling of one's wife or child; living on one's wife's property; living with a wife who is in the habit of drinking; administering poison, or applying a *Yantra* (Tantric diagram) for killing a person; performance of *Mūla-karmans* and *Abhicāra* with evil purposes;[61] teaching people or reading books for fees; breaking of embankments; manufacturing or selling bows, arrows, darts, missiles, etc.; practising cruelty to animals; showing neglect to guests; and so on.

Discourses on *Karma-vipāka*[62] (fruition of action), with the mention that the above-mentioned sins of four kinds lead people to the region of Yama, where Citragupta and five other officers

---

59. *Ibid.* Chap. 6 (fol. 55a-56a).
60. *Ibid.* Chap. 6 (fol. 56a-57a).
61. *Ibid.* Chap. 6 (fol. 56b).
    विषमारणयन्त्राणां प्रयोगो मूलकर्मणाम्।
    उच्चाटनाभिचारश्च गरविद्वेषणक्रिया।।
62. *Ibid.* Chap. 7 (fols. 58a-59a). Also Chaps. 8-9.

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

act as judges for the actions of all. Results of giving various things (including palanquins, horses, etc.), constructing a temple or an assylum *(pratiśraya),* making a garden, dedicating troughs for containing drinking water for animals, and so on.

Description of the city of the God of Death (Vaivasvatapura)[63] and of the way to it, a city, where people of objectionable conduct and miserly habit are taken after death and punished. Description of the affairs of Yama's house. Names and description of hells (Raurava, Mahāraurava, etc.) Praise of birth as a human being in Bhārata.

Accounts of rebirth *(saṁsāra),*[64] with a description of (i) the way in which creatures get different kinds of body according to their actions, (ii) the formation of the body in the mother's womb, (iii) the process of birth, and (iv) the sufferings undergone by creatures after death.

Five causes of death, viz., diseases, weapons, snakebite, poison and Abhicāra rites.

Denouncement of money. Need for performance of Dharma; and necessity of penance *(prāyaścitta)* for a better rebirth.[65]

Discourses on Jñāna-yoga[66] which reveals Śiva as the only reality and the course of which is to be determined by the Śaiva Āgamas and not mearly by one's a *priori* speculation.

Practice of Yoga[67]—Its four factors-the person meditating the act of meditation, the object of meditation, and the necessity of meditation. Qualifications for Yoga practice. Suitable places (which should be very secluded). Conduct of Yogins (who are to be moderate as regards their food, rest, sleep, etc.[68], and to look

---

63. *Ibid.* Chap. 7 (fols. 59a-64b).
64. *Ibid.* Chap. 8 (fols. 65b-70a).
65. *Ibid.* Chap. 9 (fols. 71a-72b).
66. *Ibid.* Chap. 10 (fols. 72b-74a).
67. *Ibid.* Chap. 10 (fol. 74a-78b).
68. युक्ताहारविहारात्मा युक्तचेष्टेन (? चेष्टश्च) कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधश्च सर्वायुक्तविवर्जितः।।

Ibid. Chap. 10 (fol. 74b).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

upon Brahmā, Viṣṇu and other gods as well as upon the diseases, relations and kings as great impediments to Yoga-practices).[69] Consttution of the seats to be used by Yogins.[70] Sitting postures (*āsana,* viz., Padmaka, Svastika, etc., before practising which Śiva, Devī and Gaṇādhipa are to be saluted). Mode of sitting.[71] Method of meditation, which consists of (i) *Tri-maṇḍala-dhyāna* which helps one get over the three Guṇas-Sattva, Rajas and Tamas, (ii) meditation on the twenty-fifth Tattva, viz., the Puruṣa who is beyond the Guṇas, and (iii) meditation on Śiva (having a figure as small as one's thumb) in the pericarp of a lotus *(padma)*, which is twelve Aṅgulas in diameter, has eight petals, rises from the navel, and remains above the Puruṣa. Different ways of meditating on Śiva in the pericarp, viz, Śiva as Oṁkāra may be conceived of as consisting of three Mātrās अ, उ and म् represented by Skanda, Devī and Maheśvara, or by Brahmā, Viṣṇu and Maheśvara, or by Vyakta, Avyakta and Puruṣa, Śiva himself being represented by half a Mātrā or kṣityāditattva-dhyāna; and so on. Description of Yoga of six functions *(ṣaḍaṅga yoga)*, viz., Prāṇāyāma, Pratyāhāra, Dhāraṇā, Dhyāna, Japa, and Samādhi. Method of performing *Recaka* (exhaling), *Pūraka*, (inhaling) and

---

69. *Ibid.* Chap. 2 (fols. 48a).

ब्रह्मविष्णुसुराः सर्वे व्याधयः स्वजना नृपाः।
योगस्यैते महाविघ्ना व्याधयस्तेन योगिनाम्।।

70. आसनं तूलसम्पूर्णं सितवस्त्रावगुण्ठनम्।
कृष्णाजिनोत्तरीयं च विन्यसेत् मृदुचर्मणि।।

Ibid. Chap. 10 (fol. 74b).

71. *Ibid.* Chap. 10 (fols. 74b).

ऋजुग्रीवः शिरोवक्षा (? ग्रीवशिरोवक्षा)
नातिश्लिष्टोष्ठलोचनः।
किंचिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान् न च स्पृशेत्।।
दन्ताग्रसन्निघौ जिह्वामचलां सन्निवेश्य च।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्ष्यौ तथा प्रजननं पुनः।।
ऊर्ध्वोपरि (च) संस्थाप्य बाहू तिर्यक् प्रयत्नतः।
दक्षिणं करपृष्ठं तु न्यसेद् वामतलोपरि।।
उन्नाम्य शनकैः पृष्ठमुरो विष्टभ्य चाग्रतः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं तु दिशश्चानवलोकयन्।।
संहतः (? संहत-)प्राणसंचारः पाषाण इव निश्चलः।
मैत्र्यादिवासनायुक्तः परं वैराग्यमाश्रितः।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

Kumbhaka (retention of breath). Various disturbances *(upadrava)*. Diseases and their treatment. Performance of Prāṇāyāma with or without *Japa* (mental repetition of the Mantra). Praise of Prāṇāyāma practised with *japa*. Praise fo Japa (which removes many difficulties). Idleness and other obstacles to Yoga-practice. Divine indications *(upasarga)*, such as *Pratibhā*, etc.,[72] foretokening success. Characteristics of a *Siddha* (successful) Yogin (viz., revelation of the knowledge of the Vedas and other scriptures as well as of the divine medicines, fragrance of the body, and so on).

Conduct of the Śiva-worshippers.[73] –Their morning duties; mode of purification of the body; cleansing of clothes of different stuff with different articles, cleansing and purification of utensils and other articles; bath after cleansing the body with earth and cow-dung and sanctifying the water by citing the Śiva-mantra twenty-one times; muttering of the Śiva-mantra as a means of purification in case of various kinds of sins including murder of men, women and children of different castes (among whom the *Sat-śūdras* and the ordinary Śūdras have been mentioned); restrictions about taking food, etc. in case of impurity due to birth and death. Method of bathing Śiva after performing the penance called *Brahma-Kūrca*[74] every four months, and of drinking this water for self-purification.

Statements (made in connection with the world of cows—*Go-loka* or *Go-mātṛ-loka*) about the position, extents, distance, etc. of the hells and the seven lower worlds *(pātāla)*.[75]

Terrestrial geography.[76] –Names and position of the seven continents *(Dvīpas)*, of which Jambu-dvīpa is said to be in the

---

72. *Ibid.* Chap. 10 (fols. 78a).
73. *Ibid.* Chap. 11 (fols. 78b-80b).
74. This penance is as follows :

    अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः।
    पञ्चगव्यं पिबेत् प्रातर्ब्रह्मकूर्चमिति स्मृतम्।

75. *Śiva-dharmottara*, Chap. 12 (fols. 80b-81a).
76. *Ibid*, Chap. 12 (fols. 81a-b).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

middle of the earth (mahī-madhye).[77] Names of the seven oceans, viz., those of salt, sugarcane juice, wine, etc. Names and position of the nine principal mountains of Jambu-dvīpa (viz., Himavat, Hemakūṭa, etc.). Names of mountains of other Dvipas, of which Puṣkara-Dvīpa is said to have a circular mountain named Mānasottara.[78]

Celestial geography.[79] – Position and description of the upper worlds *(loka)*, viz., Bhūr-loka, Bhuvar-loka, etc. The seven Winds, viz., Āvaha, Pravaha, Udvaha, Saṁvaha, Vivaha, Parāvaha and Parivaha, and the places occupied by these. Position and description of Brahma-Loka, Viṣṇu-loka, Skanda-loka, Umā-loka and Śiva-loka, the last one occupying the highest place. Detailed description of Śiva-loka (which is the same as Go-loka—the world of cows) and of the Gaṇas there.

Glorification of cows.[80] – Praise of rendering respectful service to cows and of making gifts of these animals to Śiva or to one's spiritual guide.

Detailed instructions on the rearing of cattle. Worship of Rudra, Brahmā, Viṣṇu, Durgā, Nandā and other Mātṛs (mother goddesses) in a cowshed. Nature of grazing grounds in different seasons. Restrictions about milking of cows (which are not to be milked during the first two months of their delivery, and from which only half the quantity of milk is to be had during the third month). Prohibitions about using cows and bulls for riding.

Gift of various things (including articles of food) to Śiva

---

77. *Ibid,* Chap. 12 (fols. 81b).
जम्बुद्वीपो महीमध्ये प्लक्षद्वीपस्ततः परः।
तृतीयः शाल्मलीद्वीपः कुशद्वीपश्च तद्बहिः।।
क्रौञ्चद्वीपश्च परतः शाकद्वीपश्च तद्बहिः।
परतः पुष्करद्वीपः सप्तमः परिकीर्तितः।।

78. *Ibid,* Chap. 12 (fols. 81b).
पुष्करद्वीपमध्ये च पर्वतो बलयाकृतिः
एकः स्थितः समन्ताच्च नामतो मानसोत्तरः।।

79. *Ibid,* Chap. 12 (fols. 82a-83a and 87a).

80. *Ibid,* Chap. 12 (fols. 83-87a).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

and to a 'Pāśupata'.[81]

Praise of study and practice of the Śiva-dharma.[82]

Method and praise of worshipping the Śiva-dharmaśāstra by placing it on a Siṁhāsana (throne) or a Daṇḍāsana[83] and of having it read out by a reader.[84]

The above summary of contents of the *Śiva-dharmottara* shows that it is an interesting work containing varied information about the contemporary state of religion and society. It belongs to those Pāśupatas who looked upon Lakulīśa as a great teacher *(guru)* identical with Śiva himself, worshipped Śiva in a Liṅga or image or in fire, and held that the best adept in religious lore was one who knew the import of the 'Śiva-tantras'.[85] These sectaries respected the Veda and looked upon it as one of the sources of their sectarian Mantra of six syllables (the other source being the Śivāgama),[86] but they deprecated the performance of Vedic sacrifices as causing great waste of time, money and energy and yielding negligible result.[87] On the other hand, they regarded the Śaiva Āgamas as the highest authority in religious matters[88] and advocated the superiority of these works over the Vedas saying that 'both the Vedas and the Śivāgamas being Āgamas, one should not have any dislike for the latter in which an easy way of attaining final release in a single life has been indicated.'[89] Ac-

---

81. *Ibid,* Chap. 12 (fols. 86).
82. *Ibid,* Chap. 12 (fol. 87b).
83-84. *Ibid,* Chap. 12 (fol. 88b).
85. *Ibid,* Chap. 2 (fol. 43b).
Śiva-tantrārthavid dhīmān sa vidyā-parameśvaraḥ.
86. For the relevant verse see foot-notes 8 above.
87. For the relevant verse see foot-notes 12 and 33 above.
88. Cf. *Śivadharmottara,* Chap. 10 (fol. 72 b).
स्वसिद्धान्ताविरोधेन यस्तर्केण विचारयेत्।
धर्मज्ञानापवर्गार्थं स तत्त्वान्वेषणे रतः।।
* * * *
तस्मादागमयुक्त्यैव सूक्ष्मार्थप्रविचारणम्।
कर्तव्यं नानुमाने न केवलेन विपश्चिता।।
89. *Ibid.* Chap. 10 (fol. 73b).

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta

cording to them, 'Śiva is known to the Śivāgamas as having no beginning, middle or end and being naturally pure, mighty, omniscient and complete'[90], and 'in spite of the multiplicity of scriptures the (book of) knowledge accomplished by the omniscient Śiva is the (only) authority'[91]. In their opinion, Rudra is the twenty-sixth Tattva, and Śiva, who is tranquil and extremely subtle and is the Parameśvara (supreme lord), is the twenty-seventh one[92]. They further say that from Purusa, who is the twenty-fifth Tattva, originate Rudra (i.e., the lower and secondary one), Viṣṇu and Pitamaha, and from *Pradhāna* comes *Buddhi,* from which, again, come *Ahaṁkāra* and the other *Tattvas* in succession.

Though decrying the Vedic sacrificial rites and professing to follow the Śaiva Āgamas, the *Śiva-dharmottara* seems to uphold the rigours of caste-system by distinguishing between satśūdras and ordinary Śūdras and by declaring as heinous crimes *(mahāpātaka)* all acts that may affect a Brāhmaṇa physically, mentally or economically. Like the other Purāṇic works it takes a pessimistic view of life and cites a good number of instances[93] to

---

आगमत्वेऽपि सामान्ये कः प्रद्वेषः शिवागमे।
अनायासेन यत्रोक्ता मुक्तिरेकेन जन्मना।।

90. *Ibid.* Chap. 10 (fol. 73a).
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तः स्वभावविमलः प्रभुः।
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयः शिवागमे।।

91. *Ibid.* Chap. 10 (fol. 73a).
बहुत्वेऽपि च शास्त्राणां सर्वज्ञेन शिवेन यत्।
प्रणीतममलं ज्ञानं तत् प्रमाणं न संशयः।।

92. *Ibid.* Chap. 10 (fol. 74a).
रुद्रः षड्विंशकः प्रोक्तः शिवश्च परमं ततः।
सप्तविंशतिमः शान्तः सूक्ष्मुम्मः परमेश्वरः।।

93. Viz., those of Yajña, whose head was severed and later joined to the trunk by Aśvins and who, consequently, had a permanent disease of the head *(śiroroga);* Mārtaṇḍa Bhānu, who had an attack of leprosy; Varuṇa, who suffered from dropsy *(jalodara);* Pūṣan, who had mutilation of tooth *(daśana-vaikalya);* Śacī's husband (Indra), who had his hand benumbed; Soma, who was attacked with a dangerous type of consumption; Dakṣa, who had a severe attack of fever; and so on.

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

show that even gods cannot escape the sufferings consequent upon physical existence.

A perusal of the the *Śiva-dharmottara* shows that it was composed much later than the *Śiva-dharma*. Unlike the latter, it recognises the authority of the Śivāgamas[94] and the Śiva tantras,[95] mention the use of Tantric Yantra for evil purposes,[96] and refers, in connection with the mention of the distances between the different Pātālas, to 'people most conversant with the meanings of Tantras' *(tantrārtha-vittama)*.[97] By its inclusion of meat among the articles of food to be offered to Śiva and by its mention that people used to worship Rudra for the sake of wine and meat, the *Śiva-dharmottara* seems to betray its knowledge of the wide spread of Tantricism among the people. In Chap. 2 (fol. 44a) there is a direction for the use of the Nandi-nāgara script in copying manuscripts, and, according to Dr. Bühler, this script originated from the Southern Nagarī of the 8th-11th centuries A.D.[98] So, the *Śiva-dharmottara* cannot possibly be dated earlier than 700 A. D. On the other hand, there are evidences to show that this work was written earlier than 800 A. D. It has already been mentioned that of the two old Newari Mss. In the library of the Asiatic Society, Calcutta, which include the texts of both the *Śivadharma* and the *Śiva-dharmottara* one was dated by Mm. Haraprasad Shastri in the twelfth century A. D. on palaeographical grounds and the other has in the post-colophon statement of its eighth work the mention of the Newari year 156 (=1036 A. D.). So, the *Śiva-dharmottara* must have been written not later than 1000 A. D. Again, a good number of verses have been quoted from the '*Śiva-dharmottara*' in Raghunandana's *Smṛti-tattva,* Rudradhara's *Varṣa-kṛiya,* Mādhavācārya's commentary,

---

94. See *Śiva-dharmotara* Chaps. 1 (fol. 41b), 5 (fol. 53b), and 10 (fols, 72 b, 73a, 73b).
95. *Ibid.* Chap. 2 (fol. 43b).
96. *Ibid.* Chap. 6 (fol. 56b). For the text of the verse see foot note 61 above.
97. *Ibid.* Chap. 12 (fol. 81a).
98. G. Bühler, *Indian Palaeography,* p. 51.

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS

on the *Parāśara-smṛti,* Hemādri's *Caturvarga-cintāmaṇi,* and Aparārka's commentary on the *Yājñavalkya smrti,* and also in the *Śvetāśvatara-upaniṣad-bhāṣya* ascribed to Śaṅkara[99] (see Appendices I and II); *Devi-purāṇa*, Chap. 91, which was interpolated not later than 1050 A. D.,[100] has the line 'nandi-nāgarakair varnair lekhayec chiva-pustakam' in common with *Śiva-dharmottara,* Chap. 2 and seems to have known and utilized the section on Vidyā-dāna of the latter work; the *Ekāmra-purāṇa,* which was written in the tenth or eleventh century A.D.[101] mentions 'Śiva-yoga' as having been described in the *Śiva-dharmottara*[102] and thus knows the present *Śiva-dharmottara*, which deals with, 'Śiva-yoga' in Chap. 10; and the Vāyavīya-saṁhitā (of the *Śiva-purāṇa*), which was written between 800 and 1000 A.D.,[103] knows the *Śiva-dharmottara*, which it mentions as the "Uttara" (latter part) of the "*Śiva-dharmākhya Śāstra*".[104] So, the *Śiva-dharmottara* must be dated not later than 800 A.D.

Thus, the date of composition of the *Śiva-dharmottara* (in its present form) falls between 700 and 800 A.D.

Like the *Śiva-dharma,* the *Śiva-dharmottara* also seems to have been written in Northern India. Most, if not all, of the holy

---

99. That this Bhasya is a post-Śaṅkara work can be little doubted. S. K. Belvalkar, Vidhuśekhara Śāstri, and others do not recognize it as a work of the great teacher Śaṅkarācārya.
100. For my article on the *Devī-purāṇa* See *New Indian Antiquary,* V, pp. 2-20.
101. For this date of the *Ekāmra-purāṇa* see my article in *Poona Orientalist,* XVI, 1951, pp. 70-76.
102. See *Ekāmra-purāṇa* (Dacca University Ms. No. 4492), fol. 86a-b.
    शिवयोगं समासाद्य शिवधर्मोत्तरोदितम्।
    अक्षये शिवलोके च शिवेन सह मोदते।।
103. For the date of the Vāyavīya-saṁhitā see my article on "The Problems relating to the *Śiva-purāṇa*" published in *Our Heritage* (a half-yearly Bulletin of the Research Department of the Sanskrit College, Calcutta), Vol. I., 1953, pp. 46ff.
104. See *Śiva-purāṇa* (Vaṅgavāsi ed.), V (Vāyavīya-saṁhitā). 24. 17a-*Sāstram ca śiva-dharmākhyaṁ dharmakhyam ca tad-uttaram.*

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

places, said to be resorted to by gods and Siddhas,[105] belong to this part of the country. It is probable that the work was written at Banaras, the name of which heads the list of holy places given in Chap. 4 (fol. 53 b). In spite of its probable origin in Northern India, this work attained popularity in South India also, where Mss. Of this work have been found in Devanāgarī, Āndhra and Malāyalam scripts.

It has already been said that the *Śiva-dharmottara* has been drawn upon in some of the Smṛti Nibandhas. But unfortunately, most of the verses quoted therein are not found in the present text of this work.[106] This remarkable fact may be explained by saying that the text of the *Śiva-dharmottara*, known to these writers, was more extensive than what has come down to us. As a matter of fact the *Śiva-dharmottara* itself records a tradition that it is the abridged form of a much bigger work dealing with Karma-yoga, Jñāna-yoga and the nature of Dharma and Adharma. So, the original *Śiva-dharmottara* must have been composed much earlier than the eighth century A. D.

---

105. These are Varāṇasi, Kurukṣetra, Prayāga, Puṣkara, Gaṅgā, Samudra-tīra, Naimiṣa, Amarakaṇṭaka, Srīparvata, Gokarṇa and Vedaparvata –*Śiva-dharmottara,* Chap. 4 (fol. 53b).

106. For an idea of these untraceable vesses see Appendise II.
One of these verses (quoted in Mādhavācārya's commentary on *Parāśara Smṛti* II. ii. p. 339) is as follows :

वेश्यां कुलवधूं कृत्वा वर्तते यो नराधमः।
भक्तं भोक्तुमशक्तश्च मण्डपानेन जीवति।।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

APPENDIX-I

The verses, ascribed to the '*Śiva-dharmottara*' in

1. Apararka's commentary (on the *Yājñavalkya-smṛti*),	Occur in *Śiva-dharmottara,*
p. 274 (the first quotation of 2 lines)	Chap. 11 (fol. 80a)
2. Hemādri's *Caturvarga-cintāmaṇi,* III	
p. 353 (2 lines wrongly ascribed to the *'Śiva-dharma'*)	Chap. 2 (fol. 43 a)
p. 430 (2 lines)	Chap. 4 (fol. 52a)
p. 434-5 (2 lines)	Chap. 4 (fol. 52a)
p. 1628-29 (17 lines)	Chap. 12 (fol. 85a-b)
p. 1633 (4 lines)	Chap. 12 (fol. 85b)
p. 1634 (7 lines)	Chap. 12 (fol. 85b)
3. Mādhavācārya's commentary (on the *Parāśara-smṛti*)	
II. ii, p. 208 (2 lines)	Chap. 6 (fol. 55a)
4. Raghunandana's *Smṛti-tattva,*	Chap. 2 (fol. 43a)
I. P. 657 (2 lines, wrongly ascribed to the *Śiva-dharma*)	
5. *Śvetāśvatara-upaniṣad-bhāṣya* ascribed to Śaṅkara (Ānandāśrama press ed.),	
p. 7 (4 lines)	Chap. 3 (fol. 49b, lines 3-4)
p. 8 (10 lines)	Chap. 3 (fol. 49b, line 6 to fol. 50a, line 2)
p. 33 (2 lines)	Chap. 3 (fol. 50a, line 3-v. 1. ज्ञानात् for ध्यानात्)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

p. 34 (2 lines)	Chap. 3 (fol. 49b, line-4)
p. 35 (9 lines)	Chap. 3 (fol. 50b, line 2)

While examining the *Śiva-dharma* we have already said that in *Caturvarga-cintāmaṇi* I, p. 467 and II. ii, pp. 396 and 887-9, 6, 11 and 37 metrical lines respectively of *Śiva-dharma,* Chaps. 10 and 9 have been wrongly ascribed to the *Śiva-dharmottara.* 27

*****

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

APPENDIX II

The verses, ascribed to the *'Śiva-dharmottara'* in the following works, are not found in the present *Śiva-dharmottara* :-

(1) Aparārka's commentary on the Yajñavalkya-smṛti, pp. 274-5 (five quotations of 3, 1, 4, 12 and 9 lines respectively on impurity and purification).

(2) Hemadri's *Caturvarga-cintāmaṇi* III. i, p. 354 (4 lines on the characteristics of an 'Ātmajña' and the Śiva-yogins).

(3) Madhavācārya's commentary on the *Parāśara-smṛti,* II. ii., pp. 227 (4 lines on Karma-vipāka), 236 (11 lines on the same topic), 339-40 (21 lines on the same topic), 243-4 (13 lines on the same topic), and 250 (2 lines on the same topic).

(4) Rudradhara's *Varṣa-kṛtya,* pp. 102-111 (about 200 lines on Śivarātri-vrata-vidhi).

(5) Raghunandana's *Smṛti-tattva*, I, p. 417 (2 lines on Śivaworship).

*****

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

विषयानुक्रमणिका

गोषडङ्गविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः 1

मङ्गलाचरण 1

श्रीअगस्त्योवाच 1

पञ्चमहायज्ञनामानि 2

श्रीस्कन्दोवाच 3

श्रद्धामाहात्म्य 3

शिवमन्त्रमाहात्म्य 4

गुणानुसारद्रव्यफलम् 8

शासकप्रतिकर्तव्यकथनम् 9

सुभाषितमहिमा 11

गोषडङ्गविधिवर्णनम् 14

विद्यादानफलं नाम द्वितीयोऽध्यायः 18

विद्यादातारप्रशंसाह, स्कन्दोवाच 18

विद्यादानमाह 18

गुरुलक्षणम् 18

पुस्तकाश्रित विद्यादानाह 20

विद्यासिंहासनलक्षणम् 22

दण्डलक्षणम् 22

लिप्यार्थ पुस्तकन्यासविधानम् 22

गुरुव्रतिनद्विजार्थ भोजनकर्त्तव्याह 24

विद्यामण्डलकं विधानम् 24

लेखनार्थाक्षरविधानम् 25

पुस्तकलेखनान्तरकर्त्तव्यम् 25

शिवविद्याविमानवर्णनम् 26

अकालकौमुदीदेवसत्रञ्च वर्णनम् 27

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IGNOU

पुस्तकवाचकगुणाह 29
आचार्यादीनां भोजनम्..... 29
महाशान्तिकृत्यं फलमाह 30
पु स्तकदानफलमाह 30
पुस्तकपूजनफलमाह 32
नवलेख्यपुस्तकनिवेदनफलमाह 32
लेखनोपस्कारादीनां दानफलमाह 32
पुस्तकास्तरणादीनां दानफलमाह 33
छाद्यदानफलमाह 33
उपानादीनां दानफलमाह 34
वाचनपूर्वे विद्यामण्डलकं विधानमाह 34
वाचनविधानमाह 35
पठनपाठनफलमाह 35
श्रीपर्णपुटकं फलकश्च दानफलमाह 36
सपिधानमञ्जूषाविद्याकोशं वर्णनम्..... 36
मठान्तर्गतविद्यादानगृहविधानम्..... 37
विद्यारत्नकरण्डकमाह 37
पुष्पगृहान्वितविद्यासिंहासनपूजनम्..... 37
विद्यायतनविधानम् 38
महारम्यवेदीनिर्माणविधानम्..... 40
शिवाश्रमारामशोभार्थे वृक्षादीनां परिकल्पनाह 41
स्नानादीनां विधानमाह 43
एवं विधं शिवपुरनिर्माणफलमाह 44
शिवाश्रमनिर्माणफलमाह 46
विद्याव्याख्यानमण्डपं फलमाह 47
अथारोग्यशालास्थापनफलमाह 47
पञ्चमहायज्ञगुणाऽध्याय नामकं तृतीयोऽध्यायः 50
स्कन्दोवाच 50
कर्मध्यानज्ञानश्च त्रिविधयज्ञवर्णनम्..... 52
ज्ञानयज्ञमाहात्म्यम्..... 52

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ज्ञानीनां स्थितिवर्णनम् 57
ज्ञानध्यानश्च वर्णनम् 58
सत्पात्रगुणं नाम चतुर्थोऽध्यायः 65
स्कन्दोवाच 65
शिवयोगिनां दानफलम् 66
नैवेद्यस्वरूपानुसारेणफलवर्णनम् 68
शिवयोगिनार्थ श्राद्धकर्म फलम् 70
शिवयोगीदर्शनं फलम 70
श्राद्धकाले शिवयोगीप्रतिभोजनफलम् 71
अथातिथिप्रशंसाह 71
विषमपात्रलक्षणम् 74
दाताग्रहिताश्च व्यवहारमाह 76
दानपात्रविचारमाह 77
दानोपयोगी स्मरणीयस्थानमाह 78
तत्र दानकालादीनां 79
शिवसङ्गत्य पञ्चमोऽध्यायः 80
स्कन्दोवाच 80
दशविधधर्मलक्षणमाह 81
नानाक्रमेण रुद्रार्चनफलमाह 82
विष्णुपुरादूर्ध्वं शिवपुरवर्णनम् 84
स्कन्दस्वरूपवर्णनम् 85
उमास्वरूपवर्णनम् 85
शिवस्वरूपवर्णनम् 85
ज्ञानयोगसिद्धस्थितिमाह 86
इत्यमनन्तर योगवर्णनम् 86
शिवपुरस्यैश्वर्यमाह 87
पापभेदं नाम षष्ठोऽध्यायः 88
मानसिकवाचिककायिककर्मञ्च 89
षट्महापापानि 90

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and MoE

गुरुनिन्दासमं पापमाह 92
ब्रह्महासंज्ञकमहादोषमाह 92
उपपातकलक्षणम् 95
मायावीचपलशठस्य लक्षणम् 98
वृथपाकलक्षणम् 99
गोघातकलक्षणम् 100
तथान्यनारकीनाह 100
प्रायश्चितविधानम् 103
नरक विशेष नाम सप्तमोऽध्यायः 104
चतुर्विधयमलोकवर्णनम्। स्कन्दोवाच 104
विविधदानादीनां फलमाह 105
अन्नदानमहिमा 107
जलदानमाहात्म्याह 109
यमपुरी वर्णनम् 110
यमराजस्वरूपवर्णनम् 116
चित्रगुप्त उवाच 118
स्कन्दोवाच 119
चित्रगुप्तवचनं 119
स्कन्दोवाच 120
यमराज उवाच 120
स्कन्दोवाच 120
नरकार्णववर्णनम् 121
रौरवादि नरकनामानि 122
तथान्यनरकं नामरूपाणि 122
नरकगतिवर्णनम् 125
शिवालयभञ्जकस्य दण्डमाह 132
गुरोर्निन्दाश्रवणफलम् 133
परस्त्रिस्पर्शादि फलम् 133
नेवैद्योलङ्घनफलमाह 134
लोभवशात्शिवारापुष्पाणिसङ्ग्रह्यफलम् 134

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

महात्मादीनां निन्दाफलम् 135
परद्रव्यग्रहणदीनां फलम् 135
शिवालयसीमायां पुरीषमूत्रविसर्जनफलम् 136
दुःखप्रवर्तक मनः 137
अतिथ्यापमानफलम् 137
बहुविधनरकदण्डवर्णनम् 137
महापातकिनादीनां नरकवासवर्णनम् 140
तथा च योन्यानुरूपजन्मचक्रम् 141
मनुष्यजन्मप्रशंसाह 142
मानुष्यत्वं कर्तव्यमाह 143
संसार प्रसवाख्यानं नामाष्टमोऽध्यायः 145
स्कन्दोवाच 145
कर्मानुसारेण चतुर्विधजीवयोनयाप्तिं 145
जीवजन्मविधानम् 147
द्वादशमलानि 148
रसात् द्वादशपरिणामः 148
शुक्राद्दिव्यशरीरस्य सम्भवामि 149
इत्यमनन्तर व्याधिवर्णनम् 165
आहारोत्पन्नपीडायाम् 170
धनीनां पीडायाम् 171
कालजन्यपीडायाम् 172
कुटुम्बिनां चिन्तायामाह 172
नराधिपस्य पीडावर्णनम् 173
प्रसङ्गानुसारेण दृष्टान्तमाह 173
कालमहिमावर्णनम् 174
व्यर्थ राज्ञोभिमानमूलक दृष्टान्तम् 176
स्वर्गिक सुखस्थितिमाह 177
स्वकर्मप्रशंसामाह 177
देवगणदुःखानि 178
चतुर्विधपातकमाह 178

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

स्थावरादीनां दुःखमाह 178
मनुष्यजन्मस्य दुःखादीनां 179
तदर्थे शुभोपायमाह 181
स्वात्मदोषवर्जननिर्देशमाह 182
स्वर्गनरकचिह्नो नाम नवमोऽध्यायः 184
स्कन्दोवाच 184
ज्ञानयोगो नाम दशमोऽध्यायः 191
संसारचक्रात् मुक्त्योपायज्ञानयोगवर्णन। स्कन्दोवाच 191
शिवशास्त्रप्रशंसाह 192
शिवज्ञानप्रशंसाह 193
ध्याताध्यानध्येयप्रयोजनम् 198
अन्यदप्याह 199
साधनायोग्यस्थलवर्णनम् 200
ध्यानयज्ञफलम् 202
गुणत्रयचिन्तननिर्देशाह 203
त्रयमण्डलपूर्वकं ध्यानम् 203
शिवस्य दशमूर्तिध्यानम् 207
शिवध्यानम् 208
षड्विधयोगवर्णनम् 209
प्राणायामजन्यव्याधीनामाह 211
व्याधिशमनार्थोपायमाह 211
द्वौविधः प्राणायामाह 213
प्राणायाममाहात्म्यम् 215
प्रत्याहार वर्णनम् 215
धारणा वर्णनम् 216
ध्यान वर्णनम् 217
जपयज्ञस्य माहात्म्याह 217
योगमार्गगतविघ्नाह 221
सिद्धिसूचकलक्षणाह 221

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

प्रायश्चित कथनं नामैकादशोऽध्यायः 224

स्कन्दोवाच 224

उत्थापनमूत्रोत्सर्ग च विधिः 224

शौचाचारनियमाः 225

वस्त्रशौचमाह 227

इदानीं स्थानशुद्धिमाह 228

कार्दमादीनां शुद्धिमाह 228

शाकादीनां शुद्धिमाह 230

जलशुद्धिमाह 231

पञ्चविध शुद्धिमाह 232

द्रव्यशुद्धिमाह 233

शिरस्नानविधिं 233

उपवीताचरणम् 234

संध्याभ्रष्टदोषनिवारणार्थ प्रायश्चितमाह 234

अनिवेद्यभोजप्रायश्चितमाह 235

प्राणिहत्याप्रायश्चितमाहं 235

मृतकसूतकाह 236

न स्पृशेत्पाण्यान्न भक्षयेत् 236

ब्रह्मकूर्चफलमाह 237

पातालादि शिवलोकपर्यन्तानां लोकानां निरूपणं द्वादशोऽध्यायः 239

अगस्त्योवाच 239

स्कन्दोवाच 239

सप्तद्वीपापृथ्वीवर्णनम् 242

शिवपुरवर्णनम् 247

तत्रैव नानाप्राणिस्वरूपमाह 249

तत्र भूमिवर्णनमाह 250

तत्राङ्गनारूपवर्णनम् 251

गोसुभाषितम् 255

गोशालानिर्माणं सफलमाह 256

गोशालाप्रबन्धमाह 257

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

तत्र पूजाकार्यमाह 257
गोप्रवेशकार्यमाह 258
गोशालानिर्माणफलम् 258
गोशालाशोधनफलमाह 260
गोचारणविधिमाह 260
गोवत्सप्रतिकर्त्तव्यमाह 261
आहारगृहनिर्माणोद्धारफलमाह 263
गोदानप्रसङ्गेन वृषभदानमप्यभिधीयते 263
गोकुलेगोदानफलमाह 266
गोप्रशंसामाह 266
वृषविषयकपातकानि 266
वृषभैकादशीदानफलमाह 268
गोपालनफलमाह 268
शिवाश्रमयात्रामाहात्म्यमाह 269
दानकालवचनमाह 269
शिवज्ञानीप्रतिवस्त्रकृष्णाजिनादीनां दानमाह 270
सव्यञ्जनभिक्षादीनां दानफलमाह 270
शिवभक्तप्रतिजलदानफलमाह 271
कर्करीयुक्तकलशदानपुण्यमाह 271
नानापात्रदानफलमाह 271
शूलधारकप्रतिनमस्कारफलमाह 272
शिवब्रह्मचारिणां भोजनफलमाह 272
बलीवर्द्दहननप्रायश्चित्तमाह 277
पोगण्डकहननप्रायश्चितमाह 277
भर्त्तृघ्नी प्रतिग्रहप्रायश्चित 277
उभयमुखीप्रदक्षिणाफलमाह 278
दधिधेनुप्रतिग्रहमाह 278
अथान्ते ग्रन्थमाहात्म्यमाह 278

*****

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

श्रीमद्शिवधर्मोत्तरपुराणम्

(मोहनबोधिनीटीकोपेतम्)

अथ गोषडङ्गविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ 1 ॥

अथ मङ्गलाचरण —

शिवमस्तु सर्वजगतां परहित निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु शान्ति सर्वत्र सुखी भवन्तु सकललोकाः ॥ 1 ॥

भगवान् शिव समस्त जगत के परहित में निरत रहते हैं। उनसे समस्त भूतगण प्राणियों के दोषों का निवारण होता है। सकल लोकों में शान्ति होती है तथा सभी प्राणी सुखी होते हैं। (उन प्रभु को प्रणाम)।

ज्ञानशक्तिधरं शान्तं कुमारं शङ्करात्मजम्।
देवारिसूदनं स्कन्दमगस्त्यः परिपृच्छति ॥ 2 ॥

भगवान् शिव के आत्मज पुत्र स्कन्दकुमार शान्त हैं और ज्ञान व शक्ति धारण करने वाले हैं। ऐसे देवताओं के शत्रुओं का विनाश करने वाले स्कन्द के प्रति अगस्त्य प्रश्न करते हैं और कहते हैं—

श्रीअगस्त्योवाच —

भगवन्दर्शनात्तुभ्यमन्त्यजस्यापि सद्गतिः।
सप्तजन्मनि विप्रश्च स्वर्गाद् भ्रष्टः प्रजायते ॥ 3 ॥
तेनापि नाथ भूतानां सर्वेषामनुकम्पकः।
अतः संक्षेपतो धर्मं ब्रूहि सर्वहितं मम ॥ 4 ॥

श्री अगस्त्य बोले— हे भगवन्! आपके दर्शनमात्र से अन्त्यज, नीचातिनीच व्यक्ति की भी सद्गति हो जाती है, सात जन्मों से स्वर्ग से भ्रष्ट हो चुके विप्रों और अन्य सभी पर भी हे नाथ! आप अनुकम्पा करने वाले हैं। अतएव आप धर्म के बारे में संक्षेप से उपदेश कीजिएगा जो मेरे और अन्य सभी के हित में हों।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and MoE

धर्मा बहुविधा देव्या देवेन कथिताः किल।
ते च श्रुता त्वया सर्वे पृच्छामि त्वामहं ततः॥ 5॥

बहुविध प्रकार के धर्म देवियों और देवताओं के बताए गए हैं। उन सभी को सुनकर ही मैं आपसे इस सम्बन्ध में यह प्रश्न कर रहा हूँ।

किं प्रधानाश्शिवे धर्माश्शिवनाक्यं च कीदृशम्।
शिवः लिङ्गेर्चितः केन विधिना सम्प्रसीदति॥
विद्यादानं च सर्वेषां दानानामुत्तमं किल॥ 6॥
तच्च श्रुतं द्विजेन्द्राणां नान्येषां समुदाहृतम्।
तत्पुण्यं सर्ववर्णानां जायते केन कर्मणा॥ 7॥

मैं जानना चाहता हूँ कि प्रधान शिवधर्म क्या है? शिवधर्म कैसा है? वह किस प्रकार का है? लिङ्ग की किस प्रकार की अर्चना से शिव प्रसन्न होते हैं? सभी दानों में विद्यादान उत्तम है— ऐसा सभी ब्राह्मणों से सुना है और किसी अन्य से ऐसा नहीं कहा गया है। यह पुण्य सभी वर्णों के लिए किस कर्म को करने से प्राप्त होता है?

ज्ञेयं कति विधं तच्च विद्यादानमनुत्तमम्।
कानि कृत्वैव कर्माणि गृहिणः स्वर्गताः पुनः॥ 8॥
मनुष्यलोके सम्भूता योगं विन्दन्ति शाङ्करम्।

यह अनुत्तम विद्यादान किस प्रकार ज्ञेय है? किन कर्मों के करने से गृहस्थगण स्वर्ग के सुखों को भोगकर पुनः मनुष्य लोक में जन्म लेकर भगवान् शङ्कर का योग प्राप्त करते हैं?

पञ्चमहायज्ञनामानि —

कर्मयज्ञ$_1$स्ततपोयज्ञः$_2$ स्वाध्यायो$_3$ ध्याननिवृत्तिः$_4$॥ 9॥
ज्ञानयज्ञश्च$_5$ पञ्चैते महायज्ञाः प्रकीर्तिताः।
एषां च पञ्चयज्ञानामुत्तमः कतमः स्मृतः॥ 10॥

यह सुना है कि 1. कर्मयज्ञ, 2. तपयज्ञ, 3. स्वाध्याययज्ञ, 4. ध्याननिवृत्ति और 5. ज्ञानयज्ञ— ये पाँच महायज्ञ कहे गए हैं। इन पाँच यज्ञों में उत्तम किस यज्ञ को कहा गया है?

एतद्यज्ञरतानां च प्रदाने कीदृशं फलम्।
धर्माधर्म प्रभेदाश्च कियन्तः परिकीर्तिताः॥ 11॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उपर्युक्त पाँच प्रकार के यज्ञकर्मों में निरत रहने वालों को दान देने का क्या फल होता है? धर्म और अधर्म के प्रभेद के क्या अन्त कहे गए हैं?

तत्साधनानिं कतिधा गतयश्च तदात्मकाः।
स्वर्गा नारकिणां पुंसामायतानां पुनः क्षितौ॥ 12॥
कानि चिह्नानि जायन्ते भुक्तशेषेण कर्मणा।
संसारसागराद्घोराद्धर्माधर्मोर्मि सङ्कुलात्॥ 13॥
गर्भादि दुःखफेनाद्वा मुच्यते देहिनः कथम्।

उनके साधन कितनी तरह के हैं और उनकी गति क्या है? स्वर्ग और नरक से पुनः इस पृथ्वी पर आए हुए पुरुषों को किन चिह्नों से जाना जाए कि उनके शेष कर्म इस संसार सागर में भोगने से उद्धार होगा और इस सागर की अधर्म रूपी लहरों के समूह से निजात पाएँगे? यही नहीं, इस संसार सागर के फेन रूपी गर्भादि दुखों से देहियों की मुक्ति किस प्रकार होगी?

इति संश्रोदितः स्कन्दः सम्प्रश्नार्थानुभावकः॥ 14॥
प्रत्युवाच महासेनः प्रणिपत्य महेश्वरम्।

इस प्रकार के प्रश्नों से प्रेरित होकर स्कन्द ने भगवान् महेश्वर को प्रणाम करके पूछा था (और जो कुछ उत्तर स्वरूप जाना था, उसका कथन किया)।

श्रीस्कन्दोवाच—

स्वर्गापवर्गफलदं नरकार्णवतारणम्॥ 15॥
शिवधर्मोत्तरं नाम शास्त्रमीश्वर भाषितम्।

श्री स्कन्द बोले— स्वर्ग, अपवर्ग के फल को देने वाला और नरक के दुःख के सागर से तारने वाला 'शिवधर्मोत्तर' नामक पुराण शास्त्र साक्षात् ईश्वर द्वारा कहा गया है।

अथ श्रद्धामाहात्म्य—

श्रद्धापूर्णा सर्वधर्मा श्रद्धा मध्यान्त संस्थिताः॥ 16॥
श्रद्धानिष्ठाप्रतिष्ठाश्च धर्मः श्रद्धैव कीर्तिताः।
श्रुतिमात्ररसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वराः॥ 17॥

इसके प्रति श्रद्धापूर्ण होकर और अपने धर्म में श्रद्धा को स्थिर रखना चाहिए। श्रद्धा, निष्ठा और प्रतिष्ठा है, श्रद्धा को धर्म कहा गया है। इसको समस्त श्रुतियों अथवा वेदों का सार और प्रधान ईश्वर का ही सूक्ष्म रूप कहा गया है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and

श्रद्धामात्रेण गृह्यन्ते नरकेना[ति] चक्षुषा।
कायक्लेशैर्नबहुभिः न चैवार्थ निराशिभिः॥ 18॥

केवल श्रद्धा से ही नर अपने चक्षुओं से इसे ग्रहण कर सकते हैं। इसमें कोई बहुत बड़ा काय-क्लेश या कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। इसके लिए न भूखा रहना पड़ता है न ही प्यास सहनी पड़ती है।

धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैस्सुरैरपि।
श्रद्धाधर्मं परं सूक्ष्मं श्रद्धादानं हुतं तपः॥ 19॥

यह श्रद्धा सूक्ष्मधर्मा है। इसको असुरों ने भी प्राप्त किया था। श्रद्धाधर्म परम सूक्ष्म है। श्रद्धा से ही दान, हुत या यज्ञ और तप (की सार्थकता होती) है।

श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत्।
सर्वस्वं जीवितं चापि दद्याद् श्रद्धया यदि॥ 20॥

श्रद्धा ही स्वर्ग है, श्रद्धा ही मोक्ष है। श्रद्धा यह समस्त जगत् है। यही नहीं, सभी का जीवित रहना भी श्रद्धा से ही दिया गया है।

न प्राप्नुयात् फलं किञ्चित् श्रद्धादानं ततो भवेत्।
एवं श्रद्धामयास्सर्वे शिवधर्माः प्रकीर्तिताः॥ 21॥
शिवश्च श्रद्धया गम्यः पूज्यो ध्येयश्च श्रद्धया।

तथापि उसका कोई फल नहीं चाहा गया हो तो उसे श्रद्धादान होना कहा जाता है। इस तरह की श्रद्धा रखने वाले सभी शिवधर्मा कहे गए हैं। भगवान् शिव श्रद्धा से ही गम्य या प्राप्त होते हैं। अतः उन्हें ध्येयपूर्वक श्रद्धा रखते हुए पूजना चाहिए।

शिवमन्त्रमाहात्म्य—

[अल्पाक्षरं महार्थं च वेदसारं विमुक्तिदम्।]
आज्ञासिद्धमसंदिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम्॥ 22॥[1]

(उन शिव का मन्त्र) अल्प अक्षरों वाला किन्तु महान् अर्थ वाला, वेद का सार और मुक्ति प्रदान करने वाला है। यह आज्ञासिद्ध है और असन्दिग्ध है, क्योंकि यह वचन स्वयं भगवान् शिव का है।

नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जनम्।
सुनिश्चितार्थ गम्भीरं वाक्यं [2]गाणेश्वरं स्मृतम्॥ 23॥

---

1. तुल.— लिङ्ग. पूर्व. 85, 29
2. तुल.— ० मे पारमेश्वरम्। इति लिङ्ग. पाठः। पूर्व. 85, 30

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यह नाना प्रकार की सिद्धियों से युक्त है, दिव्य है और लोकों के चित्त को अनुरंजित करने वाला है। यह गम्भीर और सुनिश्चितार्थ वाला है तथा गाणेश्वर या शिव का वाक्य कहा जाता है।

मन्त्रं मुखसुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसाधकम्।
प्राहोन्नमः शिवायेति स(शिव!)स्सर्व देहिनाम्॥ 24॥[3]

(शिव) मन्त्र सुखपूर्वक मुख से उच्चारित हो सकता है और अशेष प्रसाद या पूरा आनन्द देने वाला है। अतः सभी देहधारी इसको 'नमः शिवाय' कहते हैं।

सहजं सर्वलोकानां मन्त्रमाद्यं षडक्षरम्।
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत्॥ 25॥[4]

यह (ॐ सहित) षडक्षर होने पर अर्थात् 'ॐ नमः शिवाय' रूप में सभी लोकों के लिए सहज है। यह अति सूक्ष्म होते हुए भी महान् अर्थ का द्योतक है। इसको वटवृक्ष के बीज के समान समझें जो सूक्ष्म होकर भी बड़े वृक्ष का कारक होता है।

देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञस्सर्व कृत्प्रभुः।
ओमित्येकाक्षरं मन्त्रे स्थितः सर्वगतः शिवः॥ 26॥[5]

भगवान् शिव तीनों ही गुणों— सत्त्व, रज और तम से अतीत हैं। वे सर्वज्ञ हैं। वे सर्वकर्ता हैं। वे स्वामी हैं और ॐ नामक एक अक्षर के मन्त्र में स्थित रहकर सबमें समाए हुए हैं।

ईशानाद्यानि सूक्ष्माणि ब्रह्माण्येकाक्षराणि तु।
मन्त्रे नमः शिवायेति संस्थितानि यथाक्रमम्॥ 27॥[6]

ईशान आदि देव सूक्ष्म रूप से ब्रह्म के एकाक्षर में मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' इस यथाक्रम से स्थित हैं।

मन्त्रे षडक्षरे सूक्ष्मः पञ्चब्रह्मतनुः शिवः।
वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः॥ 28॥[7]

---

3. 'मन्त्र सुखमुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसादकम्।' इति मूलपाठः। तुल.— लिङ्ग. पूर्व. 85, 31
4. तुल.— लिङ्ग. पूर्व. 85, 32
5. तुल.—वेदः स त्रिगुणातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः॥ ओमित्येक्षरं मन्त्रं स्थितः सर्वगतः शिवः। लिङ्ग. पूर्व. 85, 32-33
6. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 9
7. मन्त्रे षडक्षरे सूक्ष्मे पञ्चाक्षरतनुः शिवः। लिङ्ग. पूर्व. 85, 33-34; शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 9-10

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and MoE

यह षडक्षर मन्त्र भगवान् शिव का ही सूक्ष्म रूप में पञ्चब्रह्मतनु (पञ्चाक्षर काय) कहा गया हैं। इसमें वाच्य और वाचक के भाव से साक्षात् शिव स्वभाव से ही स्थित रहते हैं।

वाच्यः शिवः प्रमेयत्वान्मन्त्रस्तद्वाचकः स्मृतः।
वाच्यवाचकभावोऽयमनादिः संस्थितस्तयोः॥ 29॥[8]

प्रमेयत्व के कारण शिव वाच्य हैं तथा मन्त्र उनका वाचक कहा गया है। इन दोनों का यह वाच्य-वाचक स्थिति भाव अनादिकाल से चला आ रहा है।

यथाऽनादिप्रवृत्तोऽयं घोरः संसारसागरः।
शिवोऽपि हि तथानादिः संसारान्मोचकस्स्मृतः॥ 30॥[9]

जिस प्रकार से यह घोर संसार सागर अनादि काल से प्रवृत्त है, उसी तरह भगवान् शिव भी अनादि काल से उस संसार सागर से मुक्ति दिलाने वाले हैं, ऐसा कहा जाता है।

व्याधीनां भेषजं यद्वत् प्रतिपक्षः स्वभावतः।
तद्वत्संसारदोषाणां प्रतिपक्षः शिवः स्मृतः॥ 31॥[10]

व्याधियों के लिए जिस प्रकार औषध स्वभाव से ही विरोधी है, उसी प्रकार संसार के सभी दोषों-दुखों के लिए भगवान् शिव प्रतिपक्ष या विरोधी हैं। वे दुःख मिटाने वाले हैं।

असत्यस्मिन् जगन्नाथे तमोभूतमिदं भवेत्।[11]
आदित्येन विहीनं हि निरालोक्यं जगद्यथा॥ 32॥

भगवान् शिव के इस जगत के स्वामी नहीं होने पर यह सब अन्धकार मात्र हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य के बिना यह जगत प्रकाश रहित या अन्धकार से आच्छन्न हो जाता है।

तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णः स्वभावतः।
मूर्तिहेतुः शिवः सिद्धः सर्वज्ञो ज्ञानभासकः॥ 33॥

---

8. तुल.— लिङ्ग. पूर्व., 85, 34; शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 10-11
9. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 11-12
10. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 12-13
11. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 13

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इसलिए स्वभाव से ही परिपूर्ण अनादि, सर्वज्ञमूर्ति के रूप में भगवान् शिव ही सिद्ध, सर्वज्ञ और ज्ञान के भासक या प्रकाश करने वाले हैं।

तस्याभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः।
अभिधानाभिधेयत्वान्मन्त्रा सिद्धः परः शिवः॥ 34॥[12]

उन भगवान् शिव का अभिधान मन्त्र अर्थात् नामजप का यह मन्त्र अवश्य अभिधेय होना चाहिए अर्थात् अभ्यास में रहना चाहिए। इसको अच्छी तरह स्मरण में रखना चाहिए क्योंकि अभिधान या नाम और अभिधेय या नामी के सम्बन्ध से ही परमशिव का मन्त्र सिद्ध होता है।

वेदे शिवागमे चैवमुभयत्र षडक्षरः।
मन्त्रः स्थितः सदां वक्त्रे लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः॥ 35॥[13]

वेद और शिवागम (शैव आगम प्रमाण ग्रन्थ) दोनों में ही यह मन्त्र षडक्षर (ॐ नमः शिवाय) के रूप में स्थित है किन्तु लोक में मुख पर यह सदा पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) के रूप में कहा गया है।

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः।
यस्योन्नमः शिवायेति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः॥ 36॥
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमधिष्ठितम्।[14]
येनोन्नमः शिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरीकृतः॥ 37॥

अतएव बहुत से मन्त्रों से उस साधक का क्या प्रयोजन है और अति विस्तृत शास्त्रों के प्रयोग से क्या उसका क्या अभिप्राय है, जिसके हृदय में यह 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र स्थित होता है। उसने तो मानो वेदों का अध्ययन कर लिया और सब कुछ अधिष्ठित कर लिया जिसने अपने को इस 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र के अभ्यास से स्थिरीकृत कर रखा हो।

शिवज्ञानानि यावन्ति विद्यास्थानानि यानि च।
षडक्षरस्य सूत्रस्य तानि भाष्यं समासतः॥ 38॥[15]

---

12. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 19
13. तुल.— वेदे शिवागमे वापि यत्र यत्र षडक्षरः॥ मन्त्रः स्थितः सदां मुख्यो लोके पञ्चाक्षरो मतः। लिङ्ग. पूर्व. 85, 35-36; शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 3
14. तुल.— यस्यैव हृदि संस्थोयं मन्त्रः स्यात् पारमेश्वरः। तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्॥ लिङ्ग. पूर्व. 85, 37; शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 34-35
15. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 33

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जितने शिवज्ञान हैं और जितने भी विद्यास्थान (ग्रन्थ प्रमाण) कहे गए हैं, वे सब इस षडक्षर सूत्र 'ॐ नमः शिवाय' के ही संक्षिप्त भाष्य बताए गए है।

एतावद्धि शिवज्ञानं एतस्मात्परमं पदम्।
यदोन्नमः शिवायेति शिववाक्यं षडक्षरम्॥ 39॥[16]

मात्र यही मन्त्र एक शिवज्ञान है। यही परमपद है। यही 'ॐ नमः शिवायः' षडक्षरी शिववाक्य है।

विधिवाक्यमिदं शैवं नार्थवादं शिवात्मकम्।
लोकानुग्रहकर्ता यः स मृषार्थं कथं वदेत्॥ 40॥[17]

यह शिव द्वारा कथित शिवात्मक विधिवाक्य है, न कि अर्थवाद है। शिव संसार के लिए अनुग्रहकर्ता है, ऐसे में उनका कहना मिथ्या कैसे हो सकता है।

सर्वज्ञः परिपूर्णस्तुदन्यथा केन हेतुना।
ब्रूयाद्वाक्यं शिवः शान्तः सर्वदोषविवर्जितः॥ 41॥

यह सर्वज्ञ का परिपूर्णमन्त्र है, अतः अन्यथा कैसे हो सकता है। इस मन्त्र-वाक्य का उच्चारण करते ही भगवान् शिव सब दोषों को मिटाकर शान्ति कर देते हैं।

गुणानुसारद्रव्यफलम् —

यद्यथाऽवस्थितं वस्तु गुणदोषैः स्वभावतः।
यावत्फलं च तत्पूर्णं च सर्वज्ञस्तु यथा वदेत्[18]**॥ 42॥**

जो वस्तु जिस अवस्था वाली है और जिन स्वाभाविक गुण-दोषों वाली है, उनका फल भी उनके अनुसार ही पूर्ण रूप से सर्वज्ञ द्वारा वैसा ही कहा गया है।

रागद्वेषादिभिर्दोषैर्ग्रस्तत्वादनृतं वदेत्।
ते चेश्वरे न विद्यन्ते ब्रूयात्सकथमन्यथा॥ 43॥[19]

राग, द्वेष इत्यादि दोषों से ग्रसित व्यक्ति मिथ्या ही भाषण करता है। ये गुण ईश्वर में नहीं होते हैं, ऐसे में उनका कथन अन्यथा नहीं हो सकता है।

---

16. तुल.— एतावत्तु शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम्। यदोन्नमः शिवायेति शिववाक्यं षडक्षरम्॥ शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 20
17. तुल.— अर्धश्लोकोपरान्त शिवपुराणायां 'यः सर्वत्र सुसम्पूर्णः स्वभावविमलः शिवः' इत्यधिकपाठः। वायवीय. उत्तर. 12, 21-22
18. तुल.—शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 22-23
19. तुल.— 'रागज्ञानादिभिर्दोषैर्ग्रस्तत्वादनृतं वदेत्।' इति प्रथमपंक्तिपाठः। शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 2

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अज्ञाताशेषदोषेण सर्वज्ञेन शिवेन यत्।
प्रणीतममलं वाक्यं तत्प्रमाणं न संशयः॥ 44॥[20]

समस्त दोषों से रहित सर्वज्ञ शिव द्वारा कहे गए वाक्य निर्मल रूप से प्रणीत और प्रमाण रूप होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

तस्मादीश्वरवाक्यानि श्रद्धेयानि विपश्चिता।
यथार्थपुण्यपापेषु तदश्रद्धो व्रजत्यधः॥ 45॥[21]

इसलिए विद्वान् को ईश्वर के वाक्यों के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए। पुण्य और पाप में उचित रूप से श्रद्धा नहीं रखने वाला व्यक्ति नरकगामी होता है।

शासकप्रतिकर्तव्यकथनम् —

शिववाक्य प्रवक्तारं शिववत्पूजयेद्गुरुम्।
नृपः परोपकाराय स्वात्मानश्च विभूतये॥ 46॥

शिव विषयक वचनों के प्रवक्ता को शिव के समान ही मानकर गुरुपूजन करना चाहिए। शासक को भी परोपकार और अपनी विभूति अथवा उन्नति के लिए ऐसा करना चाहिए।

जगद्धिताय नृपतिं शिवधर्मो नियोजयेत्।
तन्नियोगादयं लोकः शुचिः सयाद्धर्म तत्परः॥ 47॥

जगत के हित के लिए शासक को चाहिए कि वह शैवधर्म को नियोजित-प्रचारित करें। इस तरह से नियोजित-प्रबन्धित करने से यह लोक पवित्र और धर्म में तत्पर हो सकेगा।

यं यं धर्मं नरश्रेष्ठः समाचरति भक्तितः।
तत्तं समाचरेल्लोकस्तत्प्रामाण्याद्भयेन वा॥ 48॥

जिस-जिस धर्म को नरश्रेष्ठ राजा भक्तिपूर्वक अपने आचरण में लाते हैं, वैसा ही लोक भी उसे प्रमाण मानकर अनुवर्तन करने लगता है अथवा भय से भी अंगीकार करता है।

धर्मनिष्ठः कृतो राजा धर्मवादैक [भवं] सतः।

---

20. तुल.— एतावत्तु शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम्। यदोन्नमः शिवायेति शिववाक्यं षडक्षरम्॥ शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 24
21. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 25

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

युगत्रयः सविज्ञेयस्तस्माद्राजा चतुर्युगम्॥ 49॥

धर्मनिष्ठ होकर राजा धार्मिकता वाले सतयुग को लाता है। इसी तरह राजा की निष्ठा पर ही तीन युगों की निर्भरता को जानना चाहिए। चौथा युग तो राजा जानें।

धर्मज्ञः सत(तं) राजा प्रजा न्यायेन पालयेत्।
न्यायतः पालयमानन्तु ध्यायन्ति स्वामिनं शिवम्॥ 50॥

शासक को धर्मज्ञ होकर प्रजा का निरन्तर न्यायपूर्वक पालन करना चाहिए। न्यायपूर्वक पालन से ही प्रजा अपने स्वामी शिव का ध्यान करती है।

धर्ममर्थं च कामं च यदन्य [फल]मीहते।
तत्तदाप्नोत्ययं तेन प्रजान्यायेन पालयेत्॥ 51॥

धर्म, अर्थ, काम और अन्य जो भी फल महत्व के हैं, वे सभी कुछ इससे प्राप्त होते हैं। अतः प्रजा को न्यायपूर्वक पालना चाहिए।

पूजासु धर्मनिष्ठासु षष्ठमं च भजेन्नृपः।
अधमिष्ठात्स्वधर्मस्य चतुर्थांशेन लिप्यते॥ 52॥

प्रजा में धर्म के प्रति निष्ठा होने से राजा उसका षष्ठमांश प्राप्त करता है और यदि प्रजा अधर्मनिष्ठ हो जाए तो राजा को उसका चतुर्थांश भोगना पड़ता है।

तस्मादधर्मे मज्जन्तं लोकं राजा निवारयेत्।
शिवे नियोजयेन्नित्यमभयार्थं विचक्षणः॥ 53॥

इसलिए राजा लोक को अधर्म में डूबने से बचाएँ। उसको शिवधर्म में नियोजित करें और विचक्षण राजा उसे नित्य अभयार्थ बनाएँ।

धर्मशीले नृपे यस्मात् पूजास्युद्धर्म तत्पराः।
नृपतिं बोधये तस्मात्सर्वलोकानुकम्पया॥ 54॥

इस प्रकार धर्मशील राजा भी पूजाविधान से धर्म में तत्पर रहकर सभी लोकों को अपनी अनुकम्पा से बोध प्रदान कर सकेगा।

उपायेन भयाल्लोभात् मूर्खान् सदानुबोधयेत्।
मन्त्रौषधिक्रियाद्यैर्वालुब्धान् धर्मे निवेशयेत्॥ 55॥
मन्त्रौषधिनिधिक्षेत्रं फ(बि!)लमूलरसक्रियाः।
धर्ममार्गावताराय धर्मो(वादोऽ)ष्टाङ्गः प्रकीर्तितः॥ 56॥

राजा को चाहिए कि वह मूढ़ लोगों के लिए भय, लोभादि के साथ सदा बोध

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

प्रदान करने के उपाय करें। साथ ही मन्त्रविधि अथवा औषधक्रिया से भी लोभी जनों को धर्म के मार्ग में निवेशित करें। मन्त्र, औषध, कोश, खेत, फल-मूल, रस-क्रिया से लोक को धर्ममार्ग पर अनुसरण कराएँ। इसी हेतु ये धर्म के अष्टांगवाद कहे गए हैं।

प्रत्याय्याष्टाङ्गवादेन कामार्थाभिरतं नृपम्।
शनैर्धर्मे नियुञ्जीत ज्ञानयोगे पुनः क्रमात्॥ 57॥
एवं यः सर्वयत्नेन राजानं बोधयेद् बुधः।
जगद्गुरुः स विज्ञेयः सर्वलोकानुकम्पकः॥ 58॥

यदि कभी कोई राजा धर्म के अष्टांगवाद से विमुख हो जाए और काम तथा अर्थ में अभिरत हो जाए तो उसे धीरे-धीरे धर्म की ओर जोड़ने का ज्ञानयोग से क्रमशः प्रयास करना चाहिए— इस प्रकार के सभी यत्नों से बुद्धिमान् राजा को समझाएँ। ऐसे ही पण्डित जगद्गुरु कहलाते हैं और लोक पर अनुकम्पा करने वाले होते हैं।

संसार पङ्कनिर्मग्नं यस्समुद्धरते जनम्।
शिवज्ञानात्म हस्तेन कस्तेन सदृशः पिता॥ 59॥

वे प्रजाजनों को इस संसार के कीचड़ से डूबने से बचाते और उद्धार करते हैं। अपने शिवज्ञान रूपी हाथ से उबारने वाले इन गुरुओं की बराबरी करने वाला अन्य कौन पिता के समान हो सकता है?

अज्ञानवह्निसन्तप्तं निर्यापयति यः शनैः।
ज्ञानामृतेन नृपतिं कस्तं न प्रति पूजयेत्॥ 60॥

अज्ञान रूपी आग में तपे हुओं को जो धीरे-धीरे निजात दिलाते हैं और जो राजा अपने ज्ञानामृत से यह सब करते-कराते हैं, उनकी पूजा क्यों नहीं की जाए, अवश्य ही वे पूजनीय हैं।

सुभाषितमहिमा —

नैव राज्येन महत्ता न चैवार्थस्य राशिभिः।
प्राप्यमज्ञानशमनं परलोक सुभाषितम्॥ 61॥

यह ज्ञातव्य है कि न तो राज्य की महत्ता है और न ही धन राशि की महिमा है, मात्र अज्ञान के निवारण करने वाले और परलोक में सुख प्रदान करने वाले सुभाषित ही महत्व के होते हैं।

स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत्सुशोभनम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वाक्यं मुनिवरैः शान्तैस्तद्विज्ञेयं सुभाषितम्॥ 62॥[22]

स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धि के निमित्त जिन शोभाजनक वाक्यों को शान्तचित्त मुनिवरों ने कहा है, उनको सुभाषित वचन समझना चाहिए।

रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारि यत्॥ 63॥
वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद्दुर्भाषितमुच्यते।[23]

राग, द्वेष, झूठ, क्रोध, काम और तृष्णा से युक्त जो वाक्य कहे जाते हैं, वे नरक के हेतु होते हैं। अतः उनको दुर्भाषित कहा जाता है।

संस्कृतेनापि किं तेन मृदुना ललितेन वा॥ 64॥
अविद्यारागवाक्येन संसार क्लेशहेतुना।
यच्छ्रुत्वा जायते पुण्यं रागादीनां च सङ्क्षयः॥ 65॥
विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमिति शोभनम्।[24]

संस्कृत अथवा संस्कार से युक्त, मृदु अथवा ललित उन वचनों से क्या लाभ, जो अविद्या और राग से युक्त होने के कारण संसार में कष्टप्रदायक कहे जाते हैं। जिन वचनों को सुनने से पुण्य प्राप्त होता है और राग आदि दोषों का क्षय होता है, यद्यपि वे सुनने में अच्छे नहीं लगते हों किन्तु वे वाक्य अति शोभाजनक होते हैं।

पुराणं भारतं वेदं शास्त्राणि सुबहूनि च॥ 66॥
आयुष क्षयणायैव धर्मोल्पग्रन्थसंस्थितः।
पुत्रदारादि संसारः पुंसां सम्मूढचेतसाम्॥ 67॥

पुराण, महाभारत, वेद और ऐसे ही अनेकानेक शास्त्र हैं जिनको पढ़ते-पढ़ते आयु क्षीण हो जाती है किन्तु उन ग्रन्थों में धर्मचर्चा बहुत ही अल्प मात्रा में संगृहीत मिल पाती है (क्योंकि पाठक क्रिया और कथादि में ही रस लेता है)। पुत्र, पत्नी आदि सांसारिक सम्बन्ध व्यक्ति को मूढ़चेता या मोहग्रस्त बनाए हुए हैं।

विदुषां शास्त्रसंसारः स योगाभ्यास विघ्नकृत्।
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयं यः सर्वज्ञानमिच्छति॥ 68॥

विद्वानों के लिए यह शास्त्र का संसार है, योगाभ्यास में विघ्नकारी है क्योंकि

---

22. इत्यमनन्तरे 'विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमिति शोभनम्।' इति मूलपाठे। तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 25
23. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 27
24. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 12, 28-29

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यह जानें कि यह जानें? ऐसा सोच-सोचकर सर्वज्ञान बटोरने की इच्छाएँ भटकाती रहती है।

अपि वर्ण सहस्रायुः शास्त्रान्तं नाधिगच्छति।
विज्ञायक्षरतं मात्रं जीवितं चापि चञ्चलम्॥ 69॥

आयु यदि हजार वर्ष भी हो जाए तो भी इन शास्त्रों का अन्त नहीं पाया जा सकता, ऐसे शास्त्रप्रेमी केवल अक्षरज्ञान करते हुए ही अपना चंचल जीवन बिताते हैं।

विहाय शास्त्रजालानि पारलौकिकमाचरेत्।
पण्डिते नापि किं तेन समर्थेन च देहिना॥ 70॥

ऐसे में शास्त्रों के जाल को छोड़कर पारलौकिक आचरण करना चाहिए क्योंकि पण्डिताई और समर्थदेही होने का लाभ ही क्या है?

यः पुण्यभारमुद्वोढुमक्तः पारलौकिकम्।
पण्डितोऽपि स मूर्खः स्यात् शक्तियुक्तोप्यशक्तिकः॥ 71॥

जो पारलौकिक पुण्यभार को वहन करने में असमर्थ है, वह पण्डित होकर भी मूर्ख है और शक्तिमान् होकर भी अशक्त ही है।

यः संसारात् स्वमात्मानमुत्तरायितुमक्षयः।
तस्मात्सनिन्दितः शक्तः समनस्वी जितेन्द्रियः॥ 72॥

जो इस संसार-सागर से अपने को और अपनी आत्मा को तारने में अक्षम है, वह निन्दा का पात्र है और जो तार सकता है वह सशक्त, मनस्वी और जितेन्द्रिय है।

यः शिव ज्ञान सद्भावमालोचयितुमुद्यतः।
यः प्रपद्यान्महीं कृत्स्नां महामेरुं च काञ्चनम्॥ 73॥

जो व्यक्ति शिवज्ञान को सद्भावपूर्वक देखने के प्रति उद्यत रहता है, वह सारी पृथ्वी को ही महान् मेरुपर्वत के समान कांचन की बना सकता है।

रुचि व न्यायतः पृच्छे न तस्योपदिशेद्गुरुः।
यः शृणोति शिवज्ञानं न्यायतः तत्प्रवर्ति च॥ 74॥
तौ गच्छतः शिवज्ञानं नरकं तद्विपर्यये।

जो कोई रुचि लेकर न्यायपूर्वक प्रश्न करता हो, गुरु को चाहिए कि उसको अपने सदुपदेश से कृतार्थ करें। जो व्यक्ति शिव विषयक ज्ञान को न्यायपूर्वक सुनता है और उसमें प्रवृत्ति करता है, वह सदा इस शिवज्ञान से नरक के विपरीत स्वर्गलोक में जाता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अथवा देह सम्भूतः षडङ्गविधिना शिवः॥ 75॥
लिङ्गे सम्पूजितः शीघ्रं नराणां सम्प्रसीदति।

अथवा, ऐसा शिवसाधक षडंग विधि से शिव होकर इस देह में रहता है। यह सच है कि शिवलिंग के पूजन से भगवान् शिव लोगों पर शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं।

गोषडङ्गविधिवर्णनम् —

सुरासुरैर्मथ्यमानात् क्षीरोदात् सागरोत्तमात्॥ 76॥
पञ्चगावः समुत्पन्नास्सर्वलोकस्य मातरः।
नन्दा भद्रा च सुरभिः सुशीला सुमनया॥ 77॥

पूर्वकाल में देवताओं और दानवों ने मिलकर क्षीरसागर का मन्थन किया था। उसमें से पाँच गायें उत्पन्न हुईं— 1. नन्दा, 2. भद्रा, 3. सुरभि, 4. सुशीला और 5. सुमनया। ये पाँचों सभी लोकों की माताएँ हैं।

पञ्चगावः शिवपुरात्क्षितिं प्राप्ताः शिवेच्छया।
सर्वलोकोपकारार्थं देवानां तर्पणाय च॥ 78॥

ये पाँचों गायें भगवान् शिव के पुर से शिव की इच्छा से ही इस पृथ्वीलोक को प्राप्त हुईं। वे समस्त लोकों के उपकार और देवताओं के निमित्त तर्पण के लिए हैं।

गोमातरः स्थिता भूमौ स्नानार्थं च शिवस्य च।
गोमयं रोचनमूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम्॥ 79॥
षडङ्गानि पवित्राणि सर्वसिद्धिकराणि च।

ये गोमाताएँ भूमिलोक में स्थित रहकर शिव के स्नान के लिए 1. गोमय, 2. गोरोचन, 3. गोमूत्र, 4. दूध, 5. दही और 6. गोघृत प्रदान करती हैं। ये छहों वस्तुएँ पवित्र हैं और समस्त सिद्धियों को करने वाली हैं।

गोमयादुत्थितं श्रीमान् बिल्ववृक्षः[25] शिवप्रियः॥ 80॥
तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन सस्मृतः।
बीजान्युत्पल पद्मानां पुनर्जानाति गोमयात्॥ 81॥

गोमय (गोबर) से उत्पन्न श्रीमान् बिल्ववृक्ष शिव को अति ही प्रिय है। वहीं पर कमल को धारण करने वाली श्री अर्थात् लक्ष्मीदेवी विराजमान रहती है, ऐसे

---

25. श्रीसूक्त में आया है कि महालक्ष्मी के तप के प्रभाव से पुष्प के बिना ही फल देने वाले बिल्ववृक्ष की उत्पत्ति हुई— आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः। (श्रीसूक्त श्लोक 6)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

में उसको श्रीवृक्ष भी कहा जाता है। उसके धारण किए उत्पल या कमलों के बीजों से पुनः गोबर के संयोग से कमल ही उत्पन्न होते हैं।

गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसिद्धिदा।
गोमूत्राद्गुग्गुलुर्जातः सुगन्धः प्रियदर्शनः॥ 82॥

गाय से प्राप्त गोरोचन मंगलपूर्ण, पवित्र और सर्वसिद्धिदायक द्रव्य है। गोमूत्र और गुग्गुल से होने वाली सुगन्ध प्रियजनक होती है।

आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः।
यद्बीजं जगतः किञ्चित्तज्ज्ञेयं क्षीर सम्भवम्॥ 83॥

सभी देवताओं का आहार और विशेषकर शिव का नैवेद्य जो सारे जगत का कदाचित् बीज है, वह सब गाय के क्षीर या दूध से ही सम्भव है।

दध्नः सर्वाणि जातानि माङ्गल्यान्यर्थसिद्धये।
घृतादमृतमुद्भूतममराणामतिप्रियम् ॥ 84॥

दही से सभी उत्पन्नों का मंगल होता है, अन्य किसी द्रव्य से ऐसा सिद्ध नहीं हो पाता। घी से ही अमृत उत्पन्न हुआ है जो कि देवताओं को बहुत ही प्रिय है।

तस्माद्घृतेन पयसा दध्ना च स्नापयेच्छिवम्।
तदन्ते चोष्णतोयेन कषायैश्च विरुक्षयेत्॥ 85॥

इसलिए घृत से, दूध से और दही से भगवान् शिव को स्नान करवाएँ। इसके बाद गर्म जल और वृक्षजन्य कषायों से स्नान करवाएँ।

स्नाप्य शीताम्बुना पश्चात् लिङ्गं रोचनया लिपेत्।
पूजयेद्बिल्वपत्रैश्च पद्मैर्नीलोत्पलैरपि॥ 86॥

पुनः शीतल जल से स्नान कराकर लिंग को गोरोचन का लेप लगाएँ और बिल्वपत्रों अथवा नीलकमल के पुष्पों से पूजा करें।

अर्चयित्वा दहेत्पश्चाद्घृतयुक्तं च गुग्गुलम्।
पायसं दधिभक्तं च घृतं दध्ना परिप्लुतम्॥ 87॥
निवेदयेच्छिवायैतन् भक्ष्यं च घृतपाचितम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं चान्ते प्रणिपत्य क्षमापयेत्॥ 88॥

अर्चन-पूजन के उपरान्त घृत के साथ गुग्गुल जलाकर उसकी धूप करनी चाहिए। बाद में खीर, दहीभात, घृत, दूध से भरपूर सामग्री शिव को निवेदित करनी

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

चाहिए। यह भक्ष्य योग्य सामग्री घी में पकाई हुई होनी चाहिए। इसके पश्चात् शिवलिंग की प्रदक्षिण करें और साष्टांग प्रणामकर क्षमाप्रार्थना करनी चाहिए।

अनेन विधिना देवः षडङ्गेन प्रसीदति।
इहलोके परे चैव सर्वकामान्प्रयच्छति॥ 89॥

इस षडंग विधि से पूजा करने पर महादेव प्रसन्न होते हैं और वे इस लोक और परलोक की कामनाएँ पूरी करते हैं।

षडङ्गविधिना तस्मान्नृपतिः पूजयेच्छिवम्।
शिवभक्तः समुत्तार्य कुलानामेकविंशतिम्॥ 90॥

राजा को भी इस षडंग विधि से भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिए। ऐसा शिवभक्त अपने इक्कीस कुलों को तार देता है।

स्वर्गे स्थाप्य स्वयं गच्छेदैश्वरं परमं पदम्।
आश्रिताः सर्वभृत्याश्च देवकार्ये नियोजिताः॥ 91॥

वह इससे अपनी स्वयमेव स्थापना स्वर्ग में करके ईश्वर के परमपद को जाता है। अतः अपने आश्रितों और सभी सेवकों को भी देवकार्यार्थ नियोजित करना चाहिए।

प्रयान्ति स्वामिना सार्धं श्रीमच्छिवपुरं महत्।
भुक्ता तत्रातुलान्भोगान् भृत्यवर्गसमन्वितः॥ 92॥
कालात् पुनरिहायातः पृथिव्यामेकराद्भवेत्।

ऐसा करने से वे सब भी अपने स्वामी के साथ महान् शिवपुर या शिवलोक को जाते हैं और वहाँ के अतुलनीय भोगों को सेवकगणों सहित भोगते हैं। उचित काल बीतने के बाद वे पुनः एक साथ इस भूलोक पर आते हैं।

वृक्षः पुष्पाङ्गपत्राद्यैः उपयुक्ताः शिवार्चने॥ 93॥
शिवभावाच्च गच्छन्ति रुद्रलोकं न संशयः।
पूज्यत पूज्यमानं वा यः पश्येच्छ्रद्धया शिवम्॥ 94॥
सोऽपि यागफलं कृत्स्नं प्राप्नुयान्नात्र संशयः।

वृक्ष और उनके शाखादि अंगों सहित फूल-पत्ते जो भी शिवार्चन में प्रयुक्त होते हैं, वे भी शिवभाव में रहते हुए रुद्रलोक को जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। पूजते हुए, पूज्यमान शिव को जो श्रद्धा से देखता है, वह भी पूरे यज्ञ का फल प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं जानना चाहिए।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

श्रुत्वा तु मोदते पुण्यमैश्वरं यः समाधिना॥ 95॥
फलं तत्सममाप्नोति पूजयेच्छक्तितः शिवम्।
श्रुत्वा तु मुमुदे यस्ते स च योगफलं लभेत्॥ 96॥

जो भगवान् शिव की महिमा को सुनकर प्रसन्न होता है और पुण्य प्राप्त करके समाधि में ईश्वर दर्शन करता है, वह शिव-शक्ति के पूजन का फल प्राप्त करता है। जो शिव महिमा सुनकर मुदित होता है, वह भी योग के फल को प्राप्त करता है।

अर्चितं शङ्करं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
हर्षात् प्रणम्यं तं भूमौ शिवलोके महीयते॥ 97॥

भगवान् शंकर के अर्चन-पूजन और दर्शन से सभी पापों का मोचन हो जाता है। हर्षपूर्वक शिव को भूमि पर साष्टांग प्रणाम करके श्रद्धालु शिवलोक को जाते हैं।

सम्पूज्यमानं विधिना यः पश्येच्छ्रद्धया शिवम्।
तत्समं फलमाप्नोति शिवस्य वचनं तथा॥ 98॥

जो विधिपूर्वक शिवपूजा करता है और जो शिव के श्रद्धापूर्वक दर्शन करता है, वे समान फल ही प्राप्त करते हैं, ऐसा शिव का वचन है।

यदशेषैः शिवे भक्तैः ध्यानार्चनकृतं तपः।
भक्त्यानुमोदनेनेशः तत्सर्वं प्रसीदति॥ 99॥

जो शिव की अशेष भक्ति से ध्यान और अर्चन-पूजन करते हैं, तप करते हैं, उनकी भक्ति के अनुमोदन से ईश्वर शिव सर्वप्रकारेण प्रसन्न होते हैं।

शिवपुण्यमहींनाथामशेषजनसेवितम् ।
कालेत्रयेपि निखिलं तच्च स्यादनुमोदते॥ 100॥

शिवपूजन के सम्पादन के साथ इस पृथ्वी के नाथ की अशेष सेवा से तीनों काल भी निखिल ब्रह्माण्ड में उनका अनुमोदन करते हैं।

इति त्रिसन्ध्यमखिलं यः पुण्यमनुमोदते।
असंशयमतिश्रद्धं तत्समं फलमाप्नुयात्॥ 101॥

इस त्रिसन्धि— भूत, भविष्य, वर्तमान में जो अखिल पुण्य अनुमोदन करते हैं, वे असंशय अतिश्रद्धा से उनके समान फल को प्राप्त करते हैं।

इति धर्माः शिवेनोक्ताः सुसूक्ष्माः सुमहत्फलाः।
कीर्तितान्तेनमानेन शिवार्चनविधिं प्रति॥ 102॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इस प्रकार यह धर्म भगवान् शिव का कहा हुआ है। जो अत्यन्त सूक्ष्म होते हुए भी महान् फल को देने वाला है। इसको सम्मानपूर्वक कहने से शिवार्चन की विधि पूर्ण होती है।

इति श्रीशिवधर्मोत्तरपुराणे[26] गोषडङ्गविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः॥ 1॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तरपुराण में गोषडङ्गविधि नामक प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ।

*****

अथ विद्यादानफलं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ 2॥

अथ विद्यादातारप्रशंसाह, स्कन्दोवाच —

अथ विद्याविदेदाता विद्यात्मानं शिवात्मकम्।
तस्यादानं महादानं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥ 1॥

स्कन्द बोले कि विद्वान, विद्या को देने वाला व्यक्ति अपनी विद्या के मानानुसार स्वयं शिवात्मक ही है। उस विद्या का दान महादान है। उसको सभी दानों में उत्तमोत्तम माना गया है।

विद्यादानमाह —

अध्याप्य यजनैः शिष्याञ्छिवभक्तान्प्रबोधयेत्।
शिवविद्यानुसारेण विद्यादानं तदुच्यते॥ 2॥

शिष्यों को पढ़ाकर, यजन-हवन सिखाकर, उन्हें शिवभक्त बनाकर और उपदेश देकर जो उनको आनन्द पहुँचाया जाता है, वह शिवविद्या के मतानुसार विद्यादान कहा जाता है।

गुरुलक्षणम् —

संस्कृतैः प्राकृतैर्व्वाक्यैः यः शिष्यमनुरूपतः।
देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुः स्मृतः[1]॥ 3॥

---

26. 'शास्त्रे' इति मातृकायाम्।

1. चतुर्वर्गचिन्तामण्यान्तर्गत परिशेषखण्डे 'शिवधर्मा'त् स्वीरोक्ति त्रुटिपूर्णम्। पृष्ठ 353

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

संस्कृत और प्राकृत भाषा ही नहीं, स्थानीय मातृभाषा के वचनों से जो कि शिष्य की धारणा शक्ति के अनुरूप हों, ऐसी देशभाषा (पूरी तरह से मातृभाषा) का प्रयोग करके जो शिष्य को बोध करवाता है, उसको ही गुरु कहा जाता है।

यथा शिवस्य नैवान्तः सम्पूर्णस्य महात्मनः।
तथा विद्याप्रदानस्य नान्तः सर्वगुणात्मनः॥ 4॥

जिस प्रकार शिष्यों की संख्या अनन्त होती है, कम नहीं, उसी प्रकार महात्माओं का सम्पूर्ण होना भी सम्भव नहीं है। ऐसे ही सर्वगुणात्मक विद्या प्रदान करने वाले का कोई अन्त नहीं है अर्थात् वे बहुत हैं।

शिवाष्टगुणमैश्वर्यं विद्यादानादवाप्नुयात्।
इह कीर्तिश्रेयं ब्राह्मीं प्रज्ञावृद्धिं धनं सुखम्॥ 5॥

विद्यादान से शिव का आठ गुना ऐश्वर्य सुलभ होता है। विद्यादान से इस लोक में कीर्ति बढ़ती है। श्रेय अर्जित होता है। ब्राह्मी प्रज्ञा बढ़ती है और धन तथा सुख की अभिवृद्धि होती है।

योऽश्रद्धधानमात्मनंऽज्ञानमध्यापयेत्परम् ।
स याति नरकं घोरं पापीयान्ज्ञानघातकः॥ 6॥

विद्या के प्रति श्रद्धा नहीं रखकर अपने आपको जो गहन अज्ञान के बीच लगा देता है, ऐसा व्यक्ति घोर नारकीय दुःख में पड़ जाता है और अपने को उन पापियों व ज्ञानघातकों में सम्मिलित कर लेता है।

शिवज्ञानस्य कालेन विनष्टस्य प्रमादतः।
पुनातिरिक्तवर्णस्य मूर्खैर्दुर्लिखितस्य च॥ 7॥

यही नहीं, अपने प्रमाद से ज्यों-ज्यों काल व्यतीत होता है, वह अपने शिवज्ञान को नष्ट कर देता है और वर्णरहित अर्थात् अन्त्यजों (अनुलोम-प्रतिलोम) की श्रेणी को प्राप्त हो जाता है जो कि कदाचित मूढ़ और दुर्भाग्य वाले माने गए।

प्रमादाधीतपाठस्वसिद्धान्तविरोधिसाधितस्याल्पबुद्धिभिः।
ज्ञानावलेपमापन्नेराचार्यैर्बोधितस्य च॥ 8॥
व्यर्थैः पदैरुपेतस्य पुनरुक्तस्य चार्थितः।
पूर्वोत्तरविरुद्धस्य स्वसिद्धान्त विरोधिनः॥ 9॥

ऐसे व्यक्ति प्रमादवश पढ़े गए पाठ से अपने सिद्धान्तों के विपरीत चले जाते

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkata and IKS-MOE

हैं। जो अल्पबुद्धि वाले ज्ञान साधना करते हैं, वे केवल ज्ञान का लेप मात्र ही चढ़ाए हुए होते हैं। उन्होंने अपने आचार्यों द्वारा दिए हुए ज्ञान को भी व्यर्थ का उपदेश होने का स्थान दे दिया है और बारम्बार कहे जाने के भाव रखते हुए उन पूर्व में उत्तर पाए हुए विरोधियों के अपने-आपको ही स्वसिद्धान्त विरोधी बना देते हैं।

छन्दसातीवहीनस्य शब्दार्थरहितस्य च।
इत्येवमादिदोषैरुपे तस्य क्वचित्क्वचित्॥ 10॥
यः करोति पुनस्तस्य संस्कारं पूर्ववद्गुरुः।

ऐसे लोग व्याकरण छन्दों से अति विहीन हो शब्दों के अर्थ नहीं समझकर उनसे रहित हो जाते हैं और इस प्रकार के आदि दोषों से यदि कोई उपरत होना चाहे तो वे पुनः अपने संस्कारों सहित पूर्ववत् गुरु के पास जाएँ।

शिवतत्त्वात्मविद्धीमान् स विद्वान्परमेश्वरः॥ 11॥
न चास्य पुण्य माहात्म्यं वक्तुं शक्यं हि केनचित्।
यथा शिवस्तथैवायमस्मिन्नित्यं शिवस्थितः॥ 12॥

जो शिवतत्त्व को जानने वाला है, वह विद्वान स्वयं परमेश्वर ही होता है। उसके पुण्य के माहात्म्य का कोई किसी भी प्रकार वर्णन नहीं कर सकता है क्योंकि जैसे शिव हैं, वैसे ही वह भी है। उसकी नित्य ही शिवस्थिति बनी रहती है।

पुस्तकाश्रित विद्यादानाह —

विद्यादानं प्रवक्ष्यामि धनिनां पुस्तकाश्रितम्।
लिख्यते दीयते येन विधिना तत्फलं च यत्॥ 13॥

अब मैं धनवानों द्वारा पुस्तकाश्रित विद्यादान के सम्बन्ध में कहता हूँ। इसी क्रम में पुस्तक लिखने और विधिपूर्वक पुस्तक दान करने के फल को भी बताता हूँ।

शिवं सम्पूज्य विधिवत् तद्विद्यां पूजयेत्ततः।
गुरुं च शिववद्भक्त्या तुल्यमेतत्त्रयं यतः॥ 14॥

पुस्तकदान से पहले शिव की पूजा करनी चाहिए। बाद में उस विद्या का पूजन करना चाहिए। अपने गुरु को शिव के समान ही मानें और उनकी भक्ति करनी चाहिए।

यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः।
शिवविद्यागुरूणां च पूजया सदृशं फलम्॥ 15॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जैसे शिव हैं, वैसी ही उनकी विद्या है और जैसी विद्या है, वैसे ही गुरु होते हैं। अतः शिव और विद्या की तथा गुरु की पूजा का एक जैसा फल कहा गया है।

भूमिभागे समे रम्ये सर्वदोष विवर्जिते।
विद्यामण्डलकं कुर्यात् गन्धगोमयवारिणा॥ 16॥

पूजन के लिए भूमि का ऐसा भाग देखना चाहिए जो कि समतल और रम्य हो तथा समस्त दोषों से रहित हो। वहाँ पर विद्यामण्डल बनाना चाहिए। उसको गन्ध, गोबर और पानी से लीपना चाहिए।

अष्टहस्तं तदर्धं वा वृत्तं वा चतुरस्त्रकम्।
तन्मध्ये सितचूर्णेन लिखेत्पद्मं सुशोभनम्॥ 17॥

यह मण्डल आठ हाथ अथवा उसका आधा प्रमाण वाला होगा। यह गोलाकार अथवा चौकोर होगा। उसके मध्य में सफेद चावल के चूर्ण से सुन्दर कमल की रचना करनी चाहिए।

तद्बहिर्वर्णकैश्चित्रैर्नानाशोभां प्रकल्पयेत्।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः यथाशोभमलङ्कृतम्॥ 18॥

इसी प्रकार उसके बाहर की ओर तरह-तरह के रंगों से नाना आकार (रंगोली) कल्पित करें और पाँच रंगों के पुष्पों से यथाशोभा अलंकरण करना चाहिए।

सितं वितानछत्रं वा तदूर्ध्वमुपकल्पयेत्।
मुक्तादाम परिक्षिप्तं किङ्किणीरवकान्वितम्॥ 19॥

उस पर सफेद वितान-छत्र को बनाना चाहिए जिसमें मोतियों की लड़ियाँ हों और उसमें छोटे-छोटे घुंघरू लगाएँ जिनकी झंकार सुनाई देती हों।

लम्बककैर्ध्वजदामैश्च मुक्तादामैः सकञ्चुकैः।
पवित्रपुष्पस्त्रक्दामैः घण्टाचामरभूषितैः॥ 20॥

इसी तरह वितान को लम्बकों व ध्वज पंक्तियों तथा मोती की लड़ियों वाले हारों, कंचुकों सहित पवित्र पुष्पों की माला से लकदक करें। उसको घण्टा-चँवर आदि से विभूषित करें।

विचित्रवस्त्रसच्छन्नैः चतुर्भिर्दण्डकैर्युतम्।
बुद्बुदैरर्धचन्द्रैश्च पर्वणान्युपशोभितैः॥ 21॥

इसी प्रकार चित्र-विचित्र वस्त्रों की छवाई करें। चारों ओर दण्डों से युक्त

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkata and IKS-MOE

कनात बनाएँ जिसकी शोभा जगह-जगह उकेरी गई बुँदकियों और अर्द्धचन्द्रमा के कारण दिखाई देती हों।

सितपद्ममुखोद्गारैः चतुर्भिः कलशैः शुभैः।
शोभितं सितमृत्पात्रैर्यवशाल्यं कुरोद्भलैः॥ 22॥

वहाँ सफेद पद्म वाले गोरे मुख के चार सुन्दर कलश शोभायमान करें और सुन्दर श्वेत मृत्तिका के पात्रों में जौ और शाली के निर्मल अंकुर (जवारे) लगाएँ।

विद्यासिंहासनलक्षणम् —

विद्यासिंहासनं श्रीमान्नागदन्तादि निर्मितम्।
सुवर्णरत्ननिखचितं दुकूलास्तराणान्वितम्॥ 23॥

विद्यासिंहासन गजराज के दाँत का बना हुआ होना चाहिए। उस पर सोना और रत्नों की जड़ाई करनी चाहिए। प्रयोगकाल में उस पर दुकूल बिछाया जाना चाहिए।

दण्डलक्षणम् —

दण्डाननं वा श्रीमन्तं हेमरत्नोपशोभितम्।
नागेन्द्रदन्तखचितं रक्तचन्दनदारुजम्॥ 24॥

दण्ड या छड़ी सोने और रत्नों के प्रयोग से शोभायमान हो। उसको हाथीदाँत के काम सहित रक्तचन्दन की लकड़ी से बनाया जाना चाहिए।

लिप्यार्थ पुस्तकन्यासविधानम् —

स्नाव्यपुष्पगृहस्यान्तं गन्धपुष्पैः समर्चयेत्।
लेख्यं च लिखितं[2] चात्र विन्यसेत्पुस्तकद्वयम्॥ 25॥

गृह के अन्त में सुगन्धित पुष्पों के जल को छिड़ककर गन्ध-पुष्प से पूजा करें और लेख्य (लिखने योग्य) और लिखित (पाण्डुलिपि) दो पुस्तकें वहाँ पर रखनी चाहिए।

रोचनाचन्दनाद्यैश्च पुष्पैर्धूपैश्च पूजयेत्।
ध्वजप्रदीपमालाभिः क्षौमवस्त्रैश्च पूजितैः॥ 26॥

---

2. एतद् प्रसंगे नन्दिपुराणमतं विचारणीयम्— उभयं क्वापि तल्लेख्यं समी कुर्य्याच्च वाचकम्॥ उभयं पूर्व्वमुत्तरञ्च लेख्यं पुस्तकं समीकुर्य्याद् न्यूनाधिक मात्रादि लेखनदूरी करणाभ्यां पूर्व्वपुस्तकवच्छुद्धं कुर्यादित्यर्थः। विधानपारिजाते, चतुर्थस्तबकः 3, 143, 349 पृष्ठ 314

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इसी प्रकार गोरोचन, चन्दनादि सहित पुष्प और धूप से उनकी पूजा करें। वहाँ पूजनार्थ ध्वजा, दीपक, मालाओं और रेशमी वस्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

शिववत्पूजयेद्भक्त्या यथाविभवविस्तरम्।
तुरुष्कागरुकर्पूरैः सितचन्दन गुग्गुलैः॥ 27॥
दद्यात्पञ्चविधं धूपं समुत्क्षिप्यपुनः पुनः।
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा नमेत्सर्वाङ्गकं बुधः॥ 28॥

यह पूजन शिवपूजन के समान ही भक्तिपूर्वक हो किन्तु यथासामर्थ्य करना चाहिए। इस अवसर पर तुरुष्क (लोबान), अगरु, कपूर, सफेद चन्दन, गुग्गुल— इन पाँच प्रकार की धूप का खेवन करना चाहिए। धूप के लिए धूपपात्र को बार-बार उठाना चाहिए। तत्पश्चात् समझदार को प्रदक्षिणा करके साष्टांग प्रणाम करना चाहिए।

सम्पूज्यैव शिवज्ञानं गुरुं सम्पूजयेत्ततः।
द्वितीये पुष्पग्रहके श्रीमदानन सम्मितम्॥ 29॥
शिववत्पूजयेद्भक्त्या शिवज्ञानप्रकाशकम्।
त्रिधा प्रदक्षिणं कृत्वा दण्डवत् प्रणमेत्क्षितौ॥ 30॥

इस तरह शिवज्ञान की पुस्तकों का पूजन करने के बाद अपने गुरु की भी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। दो पुष्प उठाकर श्रीमान गुरुदेव के मुख पर चढ़ाएँ। गुरुदेव को भगवान् शिव के समान ही भक्तिपूर्वक पूजें क्योंकि गुरु ही शिवज्ञान के प्रकाशक हैं। उनकी तीन बार प्रदक्षिणा करके दण्डवत प्रणाम करने के लिए भूमि पर लेट जाएँ।

विज्ञापयेत्समुत्थाय जानुभ्यां धरणीं ततः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्य पुनर्गुरुम्॥ 31॥

तदनन्तर भूमि से उठकर घुटनों के बल बैठे और हाथ जोड़कर पुनः गुरु को प्रणाम करते हुए यह निवेदित करें —

'भगवन्! त्वत्प्रसादेन शास्त्रे सञ्चरयाम्यहम्।
तथैवास्त्वित्यनुज्ञातः शास्त्रपुण्यमथाचरेत्'॥ 32॥

"हे भगवन्! आपकी कृपा से मेरा शास्त्रों की ओर संचरण हो रहा है। अतः उसी के अनुरूप आशीर्वाद देकर मुझे अनुगृहीत कीजिएगा ताकि मुझे सद्शास्त्रों का पुण्य सुलभ हो सके।"

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkata and IKS-MOE

मङ्गलैस्तूर्यघोषैश्च कृत् स्वस्त्ययनः शुचि।
स्नातः शुक्लाम्बरधरो गन्धमाल्यैश्च भूषितः॥ 33॥
हेमाङ्गुलीयपाणिस्तु कटकाद्यैरलङ्कृतम्।
लिखेत् प्रणम्य देवेशं लेखकः श्लोक पञ्चकम्॥ 34॥

इस अवसर पर मंगलगान और तूर्यघोष के साथ पवित्र स्वस्तिवाचन कराएँ। स्नान करके उजले सफेद वस्त्र धारण करें। सुगन्ध लगाएँ और माला से विभूषित होना चाहिए। अपनी अंगुली में सुवर्ण की अँगूठी धारण करें और कटक (कड़ा) आदि से अलंकृत होना चाहिए। इस व्यवहार के उपरान्त देवेश भगवान् शिव को प्रणाम करके (लेखन प्रतिज्ञार्थ) पाँच श्लोकों को लिखना चाहिए।

गुरुव्रतिनद्विजार्थ भोजनकर्त्तव्याह —

ततो विविध भक्ष्यान्नपानक व्यञ्जनादिभिः।
भोजयेच्चगुरुं पूर्वं व्रतिन् सद्विजानपि॥ 35॥
दीनान्धकृपणानाथान् बालवृद्धकृशातुरान्।
मातृपितृसुहृद्बन्धूने तान्सर्वांश्च भोजयेत्॥ 36॥

उक्त लेखन-प्रतिज्ञा के बाद भोजन करवाने के लिए नाना प्रकार के खान-पान और व्यंजनों से अपने गुरुदेव और ब्राह्मणों सहित व्रतिनों को भोजन करवाना चाहिए। बाद में दीनों, अन्धों, कृपणों, अनाथों, बालकों, वृद्धों, दुर्बल और बीमार लोगों सहित माता, पिता, मित्र और भाई-बन्धु आदि सभी को भोजन करवाएँ।

समाप्यैवं गुरुं पश्चात् भुञ्जीयाद्भृत्य संयुतम्।
दत्वा गणबलिं रात्रौ ब्रह्मचारी निशिस्वपेत्॥ 37॥

इस तरह गुरु के साथ भोजन होने पर सभी सेवकों को भोजन करवाएँ और गणों को बलि निवेदित करके रात्रि में ब्रह्मचारी होकर सो जाना चाहिए। (इस प्रकार प्रथम दिवस का कर्त्तव्य हुआ)।

विद्यामण्डलकं विधानम् —

अपरेह्नि पूर्वाह्णे विद्यामण्डलकं बुधः।
कृत्वा द्विहस्तमात्रं तु नानावर्णोपशोभितम्॥ 38॥
यवाङ्कुरशरावाद्यैः चित्रकल्पैरलङ्कृतम्।
स्वं धूपादि समायुक्तं वितान विततताम्बरम्॥ 39॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

दूसरे दिन सुबह उठकर पूर्वाह्न में ही समझदार विद्यामण्डल की रचना करें। यह दो हाथ प्रमाण से बनाएँ और उसको नाना रंगों से सुशोभित करना चाहिए। वहाँ पर सकोरों-गमलों में जौ के अंकुर लगाएँ और सजावट के लिए अल्पनाएँ (रंगोली) बनाएँ। साथ ही आकाशीय वितान तानकर उसको धूपित करना चाहिए।

शिवयन्त्रासनासीनं तन्मध्ये पूज्यपुस्तकम्।
एवं लिखेद्वाचरेद्वा कृत्वा पूजां दिने दिने॥ 40॥

वहाँ पर शिवयन्त्र के ऊपर आसीन हो उसके मध्य में पूज्य पुस्तक रखें। इस प्रकार प्रतिदिन पुस्तक को लिखें अथवा वाचन और पूजन करना चाहिए।

लेखनार्थाक्षरविधानम् —

चतुरस्त्रैः समे शृङ्गैः नातिस्थूलैर्नवाङ्कुरैः।
सम्पूर्णावयवै स्निग्धैः नाति विच्छिन्नसंहतैः॥ 41॥
मात्रानुस्वारसंयोगह्रस्वदीर्घादि लक्षणैः।
नन्दिनागरकैर्वर्णैः लेखयेच्छिवपुस्तकम्[3]॥ 42॥

उक्त पुस्तक को लिखने में जिन अक्षरों का प्रयोग हों, वे चौकोर हो, समान आकार वाले, समान ऊँचाई लिए हो। वे अधिक मोटे नहीं हो और उनमें नवीन प्रयोग नहीं होने चाहिए। अक्षरों को उनके सम्पूर्ण अवयवों (शिरोरेखा, कलमकारिता, योज्यायोज्यता आदि) के साथ लिखें, वे साफ-सुथरे हों और न तो उनके बीच अधिक दूरी हो और न ही अधिक समीपता हो। मात्रा, अनुस्वार के संयोग के साथ ही लघु और दीर्घ लक्षणों का प्रयोग करते हुए 'नन्दिनागरी' वर्णों में शिव पुस्तक का लेखन करना चाहिए।

पुस्तकलेखनान्तरकर्त्तव्यम् —

सम्पूज्येत्पूर्वविधिना पुनः पूजां प्रकल्पयेत्।
शिवाग्निगुरुविद्यानां चोपवासप्रयत्नतः॥ 43॥

जब पुस्तक की रचना हो जाए तब पूर्व में बताई गई विधि के अनुसार पुनः पूजा करें। शिवाग्नि, गुरु, विद्या की पूजा और उस दिन सप्रयत्न उपवास रखना चाहिए।

कल्पयेज्जागरं तत्र वादित्रैर्मधुरस्वनैः।

---

3. 'नाभिसन्ततिविच्छिन्नं न च श्लक्ष्णैर्न कर्कशैः। नन्दिनागरकैर्व्वर्णै लेखयेच्छिवपुस्तकम्।' देवीपुराण (91, 53); चतुर्व्वर्गचिन्ता. दानखण्डे (पृष्ठ 545)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkata and IKS-MOE

गीतनृत्तैर्बहुविधैराख्यानैश्च शिवात्मकैः ॥ 44 ॥

इस अवसर पर जागरण करना चाहिए। उसमें वाद्यवादकों की कर्णप्रिय प्रस्तुतियों के साथ-साथ शिव लीलात्मक गीतों पर नृत्य हों और बहुविध आख्यान-कथाएं हों।

वेदघोषैश्च विविधैः प्रेक्षणीयैः सुशोभनैः।
क्रीडायन्त्रप्रयोगाद्यैरित्येवं क्षपयेन्निशाम् ॥ 45 ॥

बीच-बीच में वेदवचनों का घोष हो, तरह-तरह की देखने योग्य, शोभाजनक लीला प्रस्तुतियाँ हों। उसमें क्रीडायन्त्रों[4] का प्रयोग किया जाए और इसी तरह पूरी रात्रि व्यतीत करनी चाहिए।

शिवविद्याविमानवर्णनम् —

शिवविद्याविमानं च कुर्यात् प्रातः सुशोभनम्।
पञ्चषट्कर्तृभौमं वा गुरुवंशादिकं दृढम् ॥ 46 ॥
विचित्रवस्त्रसंच्छन्नं सर्वशोभा समन्वितम्।

सुबह होने पर शिवविद्या विमान (बेवाण, पालकी) की सजावट करें। यह विमान, पाँच या छह भूमिका (मंजिल) वाला हो और इसको उठाने के लिए सुदृढ़ बाँसों का प्रयोग किया जाए। उसको तरह-तरह के रंगों वाले वस्त्रों से आच्छादित करें और समस्त शोभा से युक्त करें।

विद्यासनं तु तन्मध्ये शिवज्ञानपुस्तकम् ॥ 47 ॥
हेमरत्नाचितं दिव्यमणि वा दन्तशोभितम्।
विचित्रं चित्रयुक्तं वा बहिरुत्कीर्णकम्बलम् ॥ 48 ॥
पार्श्वतः छत्रसंयुक्तं सुदृढं सूत्रबन्धनम्।

उक्त शिवविद्या विमान में विद्यासन के बीचो बीच शिवज्ञान पुस्तक को स्थापित करें। उस विद्यासन को सुवर्ण और रत्नों से अथवा दिव्य मणियों या हाथीदाँत की जड़ाई से शोभायमान किया जाना चाहिए। उस पर विचित्र उभरे हुए चित्ररूप वाले कम्बल होंगे। उसके दायें-बायें छत्र होंगे जो सुदृढ़ सूत्र बन्धन में बाँधे जाएँगे।

---

4. क्रीडायन्त्रों के रूप में पालकीदार झूले, हिण्डोले आदि स्वीकार्य रहे हैं। राजा भोजकृत 'समराङ्गणसूत्रधार' के यन्त्राध्याय में विविध लोकप्रिय क्रीडायन्त्रों का विवरण आया है। इसके अन्तर्गत शैलूष-नटों के कौतुक प्रदर्शन में सहायक यन्त्रादि भी स्वीकारे जा सकते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैः पूर्वोक्तविधिना बुधः ॥ 49 ॥
समुत्थापनयेद्भक्त्या तद्विमानं शिवाश्रमे।
सुस्थिरं रथमुख्येन पुरुषैर्वापि बलान्वितैः ॥ 50 ॥

वहाँ पर ज्ञानी को गन्ध-पुष्पादि से पूर्ववर्णित विधि के अनुसार पूजन करनी चाहिए। उस विमान को जो कि शिवाश्रम होता है, भक्तिपूर्वक उठाएँ। यह कार्य नियमित-नियुक्त रथ-मुखियाओं से हो अथवा बलिष्ठ पुरुषों को करना चाहिए।

छत्रध्वजपताकाद्यैः वितानै स्तुत्य निस्वनैः।
मङ्गलैर्वेदघोषैर्वाद्यैः धूपैः कलशैः शुभैः ॥ 51 ॥
चारणैर्वन्दिभिर्वाद्यैः स्त्रीसङ्गीतैर्विभूषितैः।

इस दौरान छत्र, ध्वज-पताकादि सहित वितान की रचना की जाए जिनके साथ-साथ स्तुतिगान होता रहे। मंगलपाठ और वैदिक ऋचाओं का घोष हो, वाद्यों का वादन हो। साथ ही धूपपात्र और सुन्दर कलश (पात्र धारक) हों। चारण, वन्दिजन विरुदपाठ करते और वाद्य वादन के बीच विभूषित स्त्रियाँ संगीत सुर छेड़ती हों।

चारुचामरहस्ताभिः छत्रदण्डैः सदर्पणैः ॥ 52 ॥
महता जनसङ्घेन पुरतश्च महीपतिः।
धर्मवृद्धैः स्वयं गच्छेत् सर्वशोभा समन्वितः ॥ 53 ॥

हाथ में सुन्दर चामरों को ढुलाते, छत्र, दण्ड व दर्पण लिए बड़ी संख्या में जन समूह हों। राजा स्वयं आगे चलकर धर्मवृद्धों को साथ लिए सर्वशोभा को बढ़ाते हों।

अथवा हस्तियानरथं कृत्वा पुस्तकमानयेत्।
राजमार्गेण महता नगरान्तः प्रदक्षिणम् ॥ 54 ॥

पालकी के अतिरिक्त उक्त शिवज्ञान पुस्तक को हस्तियान अथवा रथ में सजाकर भी लाया जा सकता है। इस प्रकार बृहद् राजमार्गों से पूरे नगर की प्रदक्षिणा की जानी चाहिए।

अकालकौमुदीदेवसत्रञ्च वर्णनम्—

सर्वायतनपूजां च स्वधनैः कारयेन्नृपः।
दशदिक्षु बलिं दद्यान्नगरस्य समन्ततः ॥ 55 ॥

राजा को चाहिए कि सर्वायतन (सभी नाम देवता) पूजा अपने निजी खर्च करें। इस दौरान दसों ही दिशाओं और नगर के चारों ही ओर बलि निवेदित करनी चाहिए।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

मार्गेऽपि पुरतो गच्छेत् पुष्पं दत्वा निरन्तरम्।
गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तमुदकं चन्दनानुगम्॥ 56॥

उस मार्ग में राजा को चाहिए कि आगे-आगे चलते हुए निरन्तर पुष्पवर्षा का प्रबन्ध करें। अनुगमन के दौरान सुगन्ध-पुष्प, अक्षत मिला चन्दन मिला जल भी छिड़कते जाएँ।

गच्छेयुर्यत्र तच्चात्र सर्वायतनवासिनः।
पुरतः शिवविद्यायाः स्मरन्तो मन्त्रमैश्वरम्॥ 57॥

सभी घरों के निवासी जहाँ-तहाँ चलते हुए आगे-आगे शिवविद्या का स्मरण करते हुए ईश्वर के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए गतिशील रहें।

शुक्लाम्बरधरा सर्वे भवेयुः पुरवासिनः।
कच्छ्रयेयुः पताकाश्च जनास्तद्देशवासिनः॥ 58॥
गृहदेवांश्च सम्पूज्य कार्यश्चाप्युत्सवोगृहे।
ब्राह्मणान्भोजयेयुश्च गृहेषु गृहमेधिनः॥ 59॥

जुलूस में सम्मिलित समस्त पुरवासी उजले सफेद वस्त्र धारण किए हों। उस देश की निवासी जनता पताकाएँ फहराती चलें। यही नहीं, वे गृह देवताओं की पूजा करते हुए अपने घरों में उत्सव का वातावरण बनाएँ। गृहपति घर-घर ब्रह्मभोज के आयोजन भी करें।

अन्नपानैर्जनपदाद्यात्रां कुर्याच्छिवाश्रमे।
अच्छेद्यास्तरवः कार्या सर्वहिंसां निवारयेत्॥ 60॥

इसी प्रकार जनपद निवासियों को भी अन्न-पान करवाएँ और शिवाश्रम जाने के लिए यात्रा करें। वे वृक्षों को नहीं काटें और इस प्रकार सभी प्रकार की हिंसा का निवारण करें।

बन्धनस्थाः प्रमोक्तव्याः वध्याः क्रोधान्न संशयः।
अकालकौमुदीं कुर्याद्देवसत्रतमीश्वरे॥ 61॥

इस अवसर पर जो बन्धनग्रस्त बन्दीजन हों, उनको मुक्त करना चाहिए और जो फांसी का दण्ड पाये हुए कैदी हों, उन पर सन्देह और क्रोध नहीं करें। इस तरह अकाल कौमुदी महोत्सव और ईश्वर के निमित्त देवसत्र का आयोजन करें।

शिवायतनमासाद्य विमानं स्थितमर्चयेत्।
पुण्याह जयशब्दैश्च महता तुमुलेन च॥ 62॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तदनन्तर उस विमान को शिवमन्दिर में लाकर स्थापित करें और उसका अर्चन-पूजन करें। इस अवसर पर पुण्याहवाचन और जयघोष की तुमुल ध्वनि करनी चाहिए।

स्थाने सुसंस्कृते रम्ये शिवस्य पुरतः शनैः।
स्थापयेद्वा गुरुं भक्त्या प्रणम्यं विनिवेशयेत्॥ 63॥

भगवान् शिव के आगे का सुरम्य स्थान साफ-सुथरा करके भक्तिपूर्वक वहाँ पर गुरु को विराजित करें और उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम निवेदित करें।

शान्त्यर्थमेवमध्यायं गोब्राह्मण महीभृताम्।
राष्ट्राणां नगराणां च वाचयेद्वाचकोत्तमः॥ 64॥

इस अवसर पर गाय, ब्राह्मण और राजा के उद्देश्य से शान्तिपाठ का आयोजन करें। वाचन के इस कार्य में समस्त राष्ट्र और नगर के उत्तम वाचक विप्रगणों को भाग लेना चाहिए।

पुस्तकवाचकगुणाह —

छन्दोलक्षणतत्त्वज्ञः सत्कविं मधुरस्वरः।
गान्धर्वविद्विदग्धश्च श्रेष्ठ पुस्तकवाचकः॥ 65॥

श्रेष्ठ पुस्तक वाचक को छन्दों के लक्षणों का तत्त्वज्ञ होना चाहिए। उसको अच्छा कवित्वगुणी, मधुर कण्ठ वाला और संगीतशास्त्र में विदग्ध होना होना चाहिए।

शान्तितोयेन राजानं समुत्थाय गुरुं ततः।
शिरस्यभ्युदयेदीषत्तत्रस्थं च जनं ततः॥ 66॥
अथवार्यजगच्छान्तिं पुनरन्ते पुनरन्ते नृपस्य च।

पाठकर्ता को शान्तिपूत जल से पारायण कराने वाले राजा का अभिसिंचन करना चाहिए। फिर, उठकर गुरु से अपने अभ्युदय का आशीष लेना चाहिए। बाद में वहाँ स्थित सभी जनों को आशीर्वाद देना चाहिए। इस तरह सारे जगत और राजा की पुनः-पुनः शान्ति करनी चाहिए।

आचार्यादीनां भोजनम् —

आचार्य भोजनं चात्र नृपः कुर्यात् सदक्षिणाम्॥ 67॥
स्वयमत्रैव भुञ्जीत सान्तःपुर परिच्छदः।
कार्याश्च विविधाः प्रेक्षा भुक्तवत्सु जनेष्वपि॥ 68॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इसके उपरान्त राजा को चाहिए कि वह आचार्य को भोजन करवाएँ और दक्षिणा भी भेंट करें। स्वयं भी वहीं पर अपने पूरे अन्तःपुर के परिवार, सेवकगणों एवं राज परिषद के साथ भोजन ग्रहण करें। इसी प्रकार विविध कार्यों को करने वाले जनों को भी प्रीतिपूर्ण दृष्टि से देखते हुए भोजन करवाएँ।

महाशान्तिकृत्यं फलमाह—

एवं कृते महाशान्तिं नृपस्य नगरस्य च।
राष्ट्रस्य च समन्तस्य जायते नात्र संशयः[5] ॥ 69 ॥
अरातयः प्रणश्यन्ति न च मारि प्रवर्तते।
शाम्यन्ति सर्वघोराणि प्रशमन्ति भयानि च ॥ 70 ॥

इस विधि के सम्पादन से राजा और राजा के नगर सहित सम्पूर्ण राष्ट्र के चारों ही ओर महाशान्ति रहती है, इसमें कोई संशय नहीं है। इससे शत्रुगणों का विनाश होता है और किसी प्रकार की महामारी नहीं होती है। सभी प्रकार के घोर कष्टों का शमन और सभी तरह के भयों का प्रशमन होता है।

ग्रहास्तुष्यन्ति सर्वेऽपि प्रणश्यन्ति च शत्रवः।
उपसर्गाः प्रलिप्यन्ते न दुर्भिक्षऽभयं भवेत् ॥ 71 ॥
विघातकाश्च नश्यन्ति सौभाग्यं परं भवेत्।
राज्यवृद्धिश्च विपुला नित्यं च विजयं नृपः ॥ 72 ॥
वर्धते पुत्र पौत्रैश्च मतिर्धर्मेऽपि प्रवर्तते।

सभी ग्रह भी सन्तुष्ट रहते हैं और शत्रुगणों का विनाश होता है। सभी उपसर्ग-कष्टातिष्ट मिट जाते हैं और किसी भी दुर्भिक्ष का भय नहीं होता है। विघातक गणों का नाश होता है और परम सौभाग्य का उदय होता हैं। राज्य की विपुल वृद्धि होती है और राजा की नित्य ही विजय होती है। उसके कुल में पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है और बुद्धि धर्ममार्ग में प्रवृत्त भी होती है।

पुस्तकदानफलमाह —

अनेन विधिना राजा यः शिवज्ञान पुस्तकम् ॥ 73 ॥
दद्यात्तदभियुक्ताय विद्यादानफलं लभेत्।
योवान्यः पुरुषः कश्चित् श्रद्धावित्तसमन्वितः ॥ 74 ॥

---

5. तुल.— एवं कृते महाशान्तिर्देशस्य नगरस्य तु। जायते नात्रा सन्देहः सर्वबाधाः शमन्ति च॥ अनेन विधिना यस्तु विद्यादानं प्रयच्छति। स भवेत्सर्वलोकानां दर्शनादघनाशनः॥ देवीपुराण (91, 69-70)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

कुर्यात् पुस्तकदानं विद्यादानं फलं लभेत्।

इस विधि के अनुसार जो राजा शिवज्ञान की पुस्तक का दान करता है, वह इस दान से विद्यादान के दाता होने का फल प्राप्त करता है। वह और अन्य जो भी व्यक्ति श्रद्धा और सम्पत्ति से समर्थ हो, यदि पुस्तक का दान करता है तो विद्यादान का फल प्राप्त करता है।[6]

दरिद्रः स्वानुसारेण वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ 75॥
कृत्वा विधिमिमम्भक्त्या विद्यादानफलं लभेत्।
यस्य यावद्भवेद्वित्तं स तस्यैहानुसारितः॥ 76॥
अशाठ्येनाचरेत्पुण्यामध्यतुल्यफलं लभेत्।

दरिद्र व्यक्ति भी अपने सामर्थ्य के अनुसार यह दान करें। इसमें कंजूसी नहीं करें और इस विधि से भक्तिपूर्वक विद्यादान के फल का लाभ प्राप्त करें। जिसके पास जितने वित्त साधन हों, वह उनके अनुसार बिना कंजूसी किए विद्यादान का पुण्य करें और उसके अनुसार ही फल प्राप्त करें।

यावदक्षरसङ्ख्यानां शिवज्ञानस्य पुस्तके॥ 77॥
तावत्कालसहस्राणि तथा शिवपुरे वसेत्।
दश पूर्वान्समुद्धृत्य दश वंश्यांश्च पश्चिमाम्॥ 78॥
मातापितृन्धर्मपत्नीन् (सबान्धवा) शिवं व्रजेत्।
नान्तःपुरः परीवारः सर्वभृत्यसमन्वितः॥ 79॥

इस विधि से दान की जाने वाली शिवज्ञान की पुस्तक में अक्षरों की जितनी संख्या होती है, उतने ही हजार वर्षों तक वह दाता शिवलोक में निवास करता है। वह अपने कुल की दस पूर्व और बाद की दस पीढ़ियों का उद्धार करता है। वह अपने माता-पिता, धर्मपत्नी सहित बन्धु-बान्धवों को शिवलोक में ले जाता है। उसके साथ अपने अन्तःपुरवासी ही नहीं, अपितु परिवार के सभी सेवकगण भी होते हैं।

दिव्यं शिवपुरं गच्छेद्विद्यादान प्रभावतः।
विमान यानैः श्रीमद्भिः सर्वकामसमन्वितः॥ 80॥
मनोजवैरसङ्ख्यातैः क्रीडते कालमक्षयम्।
परमाष्टगुणैश्वर्यैरुपेतः सततं प्रभुः॥ 81॥

---

6. तुल.— चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ : हेमाद्रि (दान. पृष्ठ 559)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

विद्यादान के प्रभाव के फलस्वरूप वह दाता दिव्य शिवपुर को गमन करता है। वह श्रीमान् समस्त कामनाओं को पूरा करने वाले विमान यान पर सवार होता है और असंख्य कामदेवों के साथ क्रीड़ा में अक्षयकाल तक विद्यमान रहता है। वह परम अष्टगुणों और ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और सतत उनका स्वामी बना रहता है।

सर्वज्ञः परिपूर्णात्मा द्वितीय इव शङ्करः।
यथामराणां सर्वेषां परमः परमेश्वरः॥ 82॥
तथैव सर्वदानानां विद्यादानं परं स्मृतम्।
अनेनैव विधानेन यः शिवज्ञानपुस्तकम्॥ 83॥

वह सर्वज्ञ परिपूर्णात्मा होकर दूसरे शंकर के समान होता है और देवताओं की तरह सभी लोगों का परम परमेश्वर होकर रहता है। इसलिए सभी दानों में विद्यादान को परम कहा गया है और इसी विधान से शिवज्ञान पुस्तक का दान करना चाहिए।

पुस्तकपूजनफलमाह —

कुसुमागारकं स्थाप्यं पूजयेत् शिवाश्रमे।
आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु दीपामाल्यावबोधनैः॥ 84॥
वैशाख्यां चापि सम्पूज्य विद्यादानफलं लभेत्।

किसी शिवाश्रम में पुष्पों के भण्डार में स्थापित पुस्तक का पूजन करना चाहिए। यह पूजन आषाढ़ी पूर्णिमा (गुरु पूनम), दीपावली, अवबोधन अथवा वैशाख में किया जाए तो पूजनकर्ता को विद्यादान का फल मिलता है।

नवलेख्यपुस्तकनिवेदनफलमाह —

यः श्रीमत्पुस्तकवरं नवलेख्यं निवेदयेत्॥ 85॥
शिवज्ञानाभियुक्ताय तस्य पुण्यफलं शृणु।
यावत्तत्पत्रसङ्ख्यानां सञ्चयेऽतीव शोभते॥ 86॥
तावद्युग सहस्राणि रुद्रलोके महीयते।

जो श्रीमान् बृहद् पुस्तक को नवीनरूप से लिखवाता है और यदि वह पुस्तक शिवज्ञान से युक्त हो तो उसका पुण्यफल सुनियेगा। ऐसा करने वाला व्यक्ति उस पुस्तक में जितने पत्रों की संख्या अतीव शोभा के साथ संचित रहती है, उतने ही हजार वर्षों तक रुद्रलोक में निवास करता है।

लेखनोपस्कारादीनां दानफलमाह —

यः पत्रयन्त्रसूत्राद्यैः मषिभाजन लेखने॥ 87॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शरयन्त्रासनाद्यङ्गं शय्यां तद्भक्त वेतनम्।
इत्येवमादि यच्चान्यत्तदर्थमुपयुज्यते॥ 88॥
यद्वा तद्वा महत्सूक्ष्मं विना येन न भवेत्।
तदेकमपि विद्याङ्गं श्रद्धावित्तानुसारतः॥ 89॥
निवेद्य स महाभागैः शिवलोके महीयते।

जो व्यक्ति लिखने के लिए पत्र-कागज, रखने के लिए यन्त्र, सूत्र-डोरी आदि सहित स्याही, दवात, बरु की लेखनी, लेखनी को रखने का यन्त्र, आसनादि अंग और शय्या देता है तथा लिखने के पारिश्रमिक सहित अन्य उपयोगी वस्तुएँ प्रदान करता है और भी जो कुछ भी छोटी-बड़ी वस्तु जिसके बिना काम नहीं चल सकता हो, उस एक का भी श्रद्धा और वित्त सामर्थ्य से प्रबन्ध करता है, वह महाभाग शिवलोक में निवास करता है।

पुस्तकास्तरणादीनां दानफलमाह —

पुस्तकास्तरणं दत्वा तद्यन्त्रं वा प्रमाणतः॥ 90॥
तदासनं वितानम्वा शिवलोके महीयते।[7]
यावत्तद्वस्त्रतन्तूनां परिसङ्ख्या समन्ततः॥ 91॥
तावद्युगसहस्राणि महाभोगानवाप्नुयात्।[8]

पुस्तकास्तरण अर्थात् दान की जाने वाली पुस्तक पर चढ़ाए जाने वाले अस्तरण अथवा उसके बराबर के यन्त्र, उसके आसन अथवा वितान के लिए वस्त्र का दान करने वाला शिवलोक को जाता है। उस वस्त्र में चारों ही ओर जितनी संख्या में तार-तन्तु होते हैं, उतने हजार युग वर्षों तक दानकर्ता महाभोगों का लाभ प्राप्त करता है।

छाद्यदानफलमाह —

शिवज्ञानाभियुक्ताय भक्त्याच्छाद्यं ददाति यः॥ 92॥
आसमाप्तेरविच्छिन्नं विद्यादानं फलं लभेत्।

जो व्यक्ति शिवज्ञानी को भक्तिपूर्वक छाता का दान करता है, वह अक्षय और अविच्छिन्न विद्यादान का फल प्राप्त करता है।

---

7. तुल.— स्कन्दपुराणमतेन : पुस्तकास्तरणं दत्वा सहस्रं तत्प्रमाणतः॥ तदासनं वितानम्वा शिवलोके महीयते। हेमाद्रि दानखण्डे अध्या. 7, (पृष्ठ 559)
8. नन्दिपुराणे : यावत्तद्वस्त्र तन्तूनां परिमाणं विधीयते। तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥ हेमाद्रि दानखण्डे अध्या. 13, (पृष्ठ 907) तथा दान. (पृष्ठ 559)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उपानादीनां दानफलमाह —

उपानच्छत्र कौपीन शय्या प्रावरणासनम्॥ 93॥
पादपूजाञ्जनाऽभ्यङ्ग स्नान भोजन भेषजम्॥ 94॥
यति मात्रोपकरणं मठसम्मार्जनादिकम्।
दीपाग्नितोयपुष्पाद्यं शिवपुस्तक वाचिनाम्॥ 95॥
यः कुर्यादेतमखिलं शिवज्ञानरतात्मनाम्।
पञ्चानां पञ्चवर्षाणि विद्यादानं फलं लभेत्॥ 96॥

उपान (खड़ाऊ), छत्र, कौपीन (लंगोट), शय्या, रजाई, आसन (बाजोट, चौकी) के साथ-साथ पादपूजा, अंजन, अभ्यंग (उबटन), स्नान के लिए आवश्यक सामग्री, भोजन, औषध जैसे यतियों के लिए उपकरण, मठ में मार्जन-बुहारने के लिए झाड़ू, दीप, अग्नि (दीयासलाई), जलपात्र और वाचक के लिए शिवपुस्तक— इतनी सब सामग्री जो शिवज्ञानरत पाँच जनों के लिए पाँच वर्षों के हेतु देता है, वह विद्यादान का फल प्राप्त करता है।

त्रिसप्तकुलमुत्तार्य[21] स्थापयेद्वैष्णवेपुरे।
तत्र तद्विपुलैर्भोगैः क्रीडत्याचन्द्रतारकम्॥ 97॥
कलत्रभृत्यसद्भृत्यैः युक्तः शिवपुरे नरः।
अक्षयं मोदते कालं विमानै सार्वकामिकैः॥ 98॥

वह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है और विष्णुपुर में प्रतिष्ठित होता है। वहाँ पर विपुल भोगों को भोगता है और चन्द्रमा-तारों के स्थायित्व काल तक क्रीड़ा करता है। वह व्यक्ति अपनी पत्नी, नौकरों, विशेष सेवकों सहित शिवपुर में रहता है और अक्षय काल तक आनन्द उठाता है। वह इच्छाओं को पूर्ण करने वाले विमान में आता-जाता है।

वाचनपूर्वे विद्यामण्डलकं विधानमाह —

विद्यामण्डलकं वृत्तं यदि वा चतुरश्रकम्।
द्विहस्तमधिकं वापि कृत्वा गोमयवारिणा॥ 99॥
सितरक्तादिभिः चूर्णैः समन्तादुपशोभितम्।
सितपद्मयुतं मध्ये तद्वितान विभूषितम्॥ 100॥
विचित्रकुसुमाकीर्णं प्रदीपाऽक्षत संयुतम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पुस्तक वाचन स्थल पर विद्यामण्डल की रचना गोलाकार अथवा चौकोर रूप में करनी चाहिए। उसको दो हाथ से अधिक प्रमाण बनाना चाहिए। पहले उस स्थान की गोबर में जल मिलाकर लिपाई करनी चाहिए। बाद में सफेद व लाल रंग के (खड़िया व गेरू) चूर्ण का प्रयोग करते हुए उसको चारों ही ओर से शोभायमान करना चाहिए। उसको सफेद कमल के समान बनाए गए वितान (चँदोवा) से सजाना चाहिए। चारों ओर रंग-बिरंगे पुष्पों की रचनाकर दीयों और अक्षत से सजाना चाहिए।

वाचनविधानमाह —

सम्पूज्यैवं शिवज्ञानं श्रद्धया वाचयेत्ततः॥ 101॥
आद्यं ततः क्रमात्सर्वमेकरूपं शनैश्शनैः।
सर्वलोकोपकारार्थमात्मनः पुण्यवृद्धये॥ 102॥

इस प्रकार वहाँ शिवज्ञान की पुस्तक का श्रद्धापूर्वक पूजन करना चाहिए और फिर वाचन करना चाहिए। क्रम से उसका प्रारम्भ करें और शनै-शनै एकीकृत रूप में पूरा करें ताकि सर्वलोकोपकार हो और अपने पुण्यों की अभिवृद्धि हो।

तत्समाप्तौ शिवं विद्यामाचार्यं च प्रपूजयेत्।
कल्पयेद्भोजनं पश्चात्सर्वेषां शिवयोगिनाम्॥ 103॥
य एवं भक्तितः कुर्याच्छिवज्ञानस्य वाचकम्।
मूल्येन कारयेद्वापि विद्यादान फलं लभेत्॥ 104॥

जब शिवज्ञान का पाठ पूरा हो जाए, तब विद्याचार्य का पूजन करना चाहिए। तदनन्तर उनके और फिर समस्त शिवयोगियों के भोजन का प्रबन्ध करना चाहिए। इस तरह जो व्यक्ति शिवज्ञान का वाचन करता है अथवा पारिश्रमिक देकर अन्य किसी से करवाता है, वह विद्यादान का फल प्राप्त करता है।

पठनपाठनफलमाह —

अपि श्लोकं तदर्धं वा शिवज्ञानस्य यः पठेत्।
वाचयेच्चिन्तयेद्वापि लिखेद्वालेखयेत् वा॥ 105॥
शृणु यादेकचित्तश्च तदर्थं च विचारयेत्।
जनेभ्यः श्रावयेद्यश्च तस्य पुण्यफलं शृणु॥ 106॥

जो कोई व्यक्ति शिवज्ञान का एक श्लोक अथवा आधा श्लोक भी पढ़ता है, वाचन करके पढ़वाता है अथवा चिन्तन करता है, लिखता अथवा लिखवाता है,

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

एकचित्त होकर सुनता है और उसके अर्थ पर विचार करता है तथा लोगों को सुनाता है, उसके पुण्यफल को सुनियेगा।

त्रिः प्रादाय महीं पूर्णां सर्वयत्नैस्तु यत्फलम्।
श्लोकार्धमीश्वरज्ञानाद्यत्फलं तदवाप्नुयात्॥ 107॥

भगवान् वामन को तीन पद के बराबर समस्त भूमि दान करके जो फल राजा बलि को प्राप्त हुआ था, वह फल सब प्रकार के यत्न से ईश्वरीय ज्ञान के आधे श्लोक के भी पढ़ने से प्राप्त हो जाता है।

श्रीपर्णपुटकं फलकश्च दानफलमाह —

यः श्रीपर्णसमुद्भूतं निम्नखातं सुसञ्चयम्।
दद्यात्सम्पुटकं भक्त्या चर्म्मणा वापि निर्मितम्॥ 108॥
शिवज्ञानाभियुक्ताय तदध्ययनहेतुना।
सुश्लक्ष्णं फलकं वापि विद्यादानफलं लभेत्[9]॥ 109॥

पुस्तक के पत्रों को सुसंचित-संगृहीत रखने के लिए श्रीपर्ण (गम्भीरी) काष्ठ से बनाया गया गहराई वाला अथवा चमड़े से बनाया गया सम्पुटक जो भक्तिपूर्वक देता है और जो शिवज्ञानी को अध्ययन के लिए मुलायम आधार वाला फलक देता है— वह विद्यादान का फल प्राप्त करता है।

महाविमानैः श्रीमद्भिः सर्वकामसमन्वितैः।
क्रीडते परमं कालं रुद्रलोके व्यवस्थितः॥ 110॥
ततः कालात्क्षितिं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः।
स्वरूपात्सद्विजो वापि सर्वविद्यार्थपारगः॥ 111॥

ऐसा दानदाता श्रीमानों के साथ महाविमान में आरूढ़ होता है और मनोकामनाओं को पूरी करता हुआ परमकाल तक रुद्रलोक में रहता है। तदोपरान्त कालक्रम से वह पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करता है और धार्मिक राजा होता है अथवा सुन्दर रूप धारण किए सद्विप्र होकर समस्त विद्याओं के अर्थों का जानकार होता है।

सपिधानमञ्जूषाविद्याकोशं वर्णनम् —

यः सौवर्णं सुसम्पूर्णं सर्वरत्नोपशोभितम्।
सपिधानसुमञ्जूषं विद्याकोशसमाश्रयम्॥ 112॥

---

9. तुल.— स्कन्दपुराणमतेन। चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ : हेमाद्रि दान. (पृष्ठ 560)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

कारयेद्वापि रौप्येण ताम्रेण चतुरस्त्रकम्।
कांस्यारकूटलोहं वा दारुवंशादिनिर्मितम्।
सुकषायातिरक्तेन वर्म्मणभिनवेन च।[10]

पूर्ण सुवर्ण से सभी प्रकार के रत्नों से जड़े हुए ढक्कन सहित सन्दूक को बनवाया जाए उसका उपयोग विद्याकोश के रूप में किया जाए। विद्याकोश के लिए सन्दूकें चाँदी अथवा ताँबे से भी चौकोर बनवाई जा सकती है। इसी प्रकार काँसा, आरकूट (पीतल) अथवा लोहा या फिर काष्ठ या बाँस से भी बनवाई जा सकती है। ऐसी बनाने पर उसको अच्छी तरह कषाय और बहुत लाल रंग से रंगा जाना चाहिए।

मठान्तर्गतविद्यादानगृहविधानम् —

अन्तर्बहिश्च मठयेत् विद्यादाननवं गृहम्॥ 114॥
सुदृढं कटकोपेतं दृढस्तम्भनिवेदनम्।

मठ के अन्दर और बाहर नवीनतम विद्यादान गृह बनाना चाहिए। उसको सुदृढ़ कटक (किंवाड़ या मेखला) सहित और दृढ़ स्तम्भों वाला बनाएँ।

विद्यारत्नकरण्डकमाह —

कुर्य्यात्तालकसंयुक्तं विद्यारत्नकरण्डकम्॥ 115॥
एवं वित्तानुसारेण कारयित्वा सुरूपतः।
प्रक्षाल्य गन्धतोयेन विद्यावंशगृहं वरम्॥ 116॥

एक ताल प्रमाण के बराबर विद्यारत्न-करण्डक (पुस्तक रखने योग्य टोकरी) का निर्माण करना चाहिए। उसको अपने अर्थ सामर्थ्य के अनुसार सुन्दर बनाना चाहिए। बाँस के बने विद्यागृह को सुगन्धित जल से प्रक्षालित करना चाहिए।

पुष्पगृहान्वितविद्यासिंहासनपूजनम् —

कृत्वा च सद्गृहं दिव्यमन्त पुष्पगृहान्वितम्।
विद्यासिंहासनं तत्र विधिवत्पूजयेत्ततः॥ 117॥
तस्मिन् पुण्याहशब्देन विद्याकोशगृहं न्यसेत्।
ततः चन्दनकर्पूरकङ्कुमाद्यैः प्रलेपयेत्॥ 118॥

एक सुन्दर गृह को दिव्य पुष्पों के कुंज से सजाना चाहिए। वहाँ

---

10. तुल.— स्कन्दपुराणमतेन। चतुर्व्वर्ग्गचिन्तामणौ : हेमाद्रि दान. (पृष्ठ 560)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

विद्यासिंहासन की रचना करके उसका विधिवत पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् वहाँ पुण्याह शब्दोच्चार करते हुए विद्याकोशगृह को विराजित करना चाहिए। बाद में उस पर चन्दन, कर्पूर, कुंकुम आदि का लेपन करना चाहिए।

अन्तर्यन्त्रयुतं धूप्य सपुष्पैरपि पूजयेत्।
ततो वादित्रनिर्घोषैः विद्याकोशं प्रपूजयेत्॥ 119॥
तत सम्पूजयेद्विद्यां यथाविभवविस्तरैः।
कृत्वा प्रदक्षिणं चान्ते नमेत्सर्वाङ्गिकं नरः॥ 120॥

इसके बीच-बीच में मन्त्रों के साथ धूप देते हुए पुष्पों से भी पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् वाद्यवादन के दौरान विद्याकोश का पूजन करना चाहिए और शिवविद्या का यथा वित्त सामर्थ्य पूजन करना चाहिए। पूजन के बाद प्रदक्षिणा करनी चाहिए और अन्त में व्यक्ति को साष्टांग प्रणाम करना चाहिए।

विद्यायतनविधानम् —

विद्याकोशगृहस्यापि विद्यायतनमुत्तमम्।
भवेत्सुशोभनं रम्यमष्टहस्तप्रमाणतः॥ 121॥
तेष्टकामृण्मयं वा सद्दारुकृतमेव वा।
कवाटाऽट्टालसंयुक्तं प्राकारारामशोभितम्॥ 122॥

उक्त विद्याकोशगृह के साथ ही अच्छे विद्यायतन का निर्माण करना चाहिए। उसको सुशोभाजनक, रम्य तथा आठ हाथ के प्रमाण का बनाएँ। ईंटों और मिट्टी अथवा अच्छी लकड़ी से भी उसका निर्माण किया जा सकता है। उसको किंवाड़, अट्टालक से युक्त करें। उसके परकोटे में सुन्दर बगीचे की रचना करनी चाहिए।

वितानध्वजसंयुक्तं सद्वितानविभूषितम्।
घण्टाचामरसंयुक्तं किङ्किणीरवकान्वितम्॥ 123॥
चन्दनागरुगन्धाद्यैरनुलिप्तं समन्ततः।
नित्यं सुगन्धकर्पूरैः पुष्पैश्चाप्यधिवासयेत्॥ 124॥
तत्र सूत्र सुघोषेण मङ्गलैर्विविधैरपि।

उसको चन्दोवा और ध्वज से सजाएँ और उन्नत वितानों से विभूषित करें। उसको घण्टा-चामर से युक्त करें और लघु घण्टियों की ध्वनि से गूंजायमान करें। उसको चारों ही ओर से चन्दन, अगरु जैसी सुगन्धों से लिप्त करें। वहाँ नित्यप्रति कर्पूर

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

की सुगन्ध करते रहने चाहिए और पुष्पों का अधिवासन करना चाहिए। वहाँ पर सूत्र वचनों का अच्छा घोष और विविध मंगलगान होना चाहिए।

आनीय स्थापयेद्भक्त्या विद्यारत्नकरण्डकम्॥ 125॥
ततः सुगन्धपुष्पाद्यैः शिववत्प्रतिपूजयेत्।
शिवविद्यां सदाकालं त्रिसन्ध्यमुपचारतः॥ 126॥

इस विधि के साथ वहाँ भक्तिपूर्वक विद्यारत्नकरण्डक (विद्याशास्त्र की टोकरी) की स्थापना करनी चाहिए। उसकी सुगन्धित पुष्पों से शिव के समान ही पूजा करनी चाहिए। शिवविद्या को सदैव त्रिकाल संध्या से उपचारित करते रहना चाहिए।

ततः समागतान्सर्वान् भोजयेच्छिवयोगिनः।
दीनान्धकृपणादींश्च तर्पयित्वा क्षमापयेत्॥ 127॥

इसके बाद वहाँ जमा हुए सभी अभ्यागतों, शिवयोगियों को भोजन करवाना चाहिए। इसी प्रकार दीनों, चक्षुहीनों, कृपणों को तृप्त करके क्षमायाचना करनी चाहिए।

एवं यः शिवविद्यायाः कुर्यादायतनं शुभम्।
स मुक्तः पातकैः सर्वैः विद्यादानफलं लभेत्॥ 128॥

इस प्रकार से जो शिवविद्या के लिए शुभ गृह का निर्माण करवाता है, वह समस्त पापों से विमुक्त होकर विद्यादान का फल प्राप्त करता है।

कुलैकविंशमुत्तार्य सद्धृत्य परिवारितः।
प्राप्याष्टगुणमैश्वर्यं शिवलोके महीयते॥ 129॥

वह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है और सपरिवार आठ गुणा ऐश्वर्य के साथ शिवलोक की महिमा बढ़ाता है।

यस्तत्र ज्ञानमासाद्य विषयान्विषवत्त्यजेत्।
स प्राप्नोति परं मुक्तिं भोगी भोगानवाप्नुयात्॥ 130॥

वह व्यक्ति वहाँ पर ज्ञान का आस्वादन करके विषयों को विष के समान समझ कर छोड़ देता है। वह परम मुक्ति प्राप्त कर विविध भोगों का भोगी होकर दिव्य भोगों को प्राप्त करता है।

सृष्ट्यन्तरे पुनः प्राप्ते पृथिव्यमेकराड्भवेत्।
सर्वैश्वर्यगुणोपेतः सर्वज्ञानस्य पारगः॥ 131॥

यही नहीं, सृष्टिक्रम के अनुसार पुनः जब पृथ्वीलोक को प्राप्त होता है तो

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

एकराट् राजा होता है और समस्त ऐश्वर्यों से युक्त होकर सभी गुणों का धारक और समस्त ज्ञान का विशारद होता है।

महारम्यवेदीनिर्माणविधानम् —

यः कारयेन्महद्रम्यं सुवेदिसंस्थितं पुरम्।
पञ्चभौमन्त्रिभौमं वा शिवज्ञानरतात्मनाम्[11] ॥ 132 ॥

शिवज्ञान में लीन रहने वालों के लिए नगर में जो बृहद् रम्य, सुन्दर वेदी का निर्माण करना चाहे, वे उसको तीन अथवा पाँच भूमिका (मंजिल) वाली बनाएँ।

गुह्यापवरकैर्युक्तः मन्त्रस्थानसमन्वितम्।
वास्तुविद्याविभक्तं च प्राकार परिवारितम् ॥ 133 ॥

इसके लिए वास्तुविद्या के निर्देश के अनुसार वास्तुचक्रानुसार पदपंक्ति का विभाजन करें और उसको गुप्त कक्षयुक्त और परामर्श के स्थान के सहित बनाएँ। उसको परकोटे से घिरी हुई बनानी चाहिए।

तस्य वेदी द्विहस्तोच्चा पर्यन्तस्तम्भसंयुता।
पक्वेष्टिका परिच्छिन्ना तत्सुरम्यं समन्ततः ॥ 134 ॥

वह वेदी (परकोटा) दो हाथ ऊँचाई लिए चारों ओर स्तम्भों से युक्त हों। उसका निर्माण पकी हुई ईंटों से किया जाए और वह चारों ओर से सुरम्य होनी चाहिए।

सुवीथ्याः पुरतः कुर्याद्देश्याग्नेयां महानसम्।
धूमनिर्गमनोपेतं पूर्व्वतः सत्रमण्डपम् ॥ 135 ॥

उसमें आगे की ओर वीथियों की सुन्दर आयोजना हो और आग्नेय कोण में रसोई की रचना की जाए। पूर्व की ओर यज्ञमण्डप हो और वहाँ धुएँ की निकासी के लिए उचित प्रावधान हो।

गन्धपुष्पगृहं कार्यमैशान्या मठसंयुतम्।
भाण्डागारञ्च कौबेर्यां कोष्ठागारञ्च वायवे ॥ 136 ॥

ईशान कोण में गन्ध और पुष्पगृह हों जो मठ से संयुक्त होंगे। उत्तर दिशा में सामग्री का भण्डार और वायव्य कोण में कोष्ठागार (कोठार) रखना चाहिए।

उदकाश्रयं च वारुण्यां वातायन समन्वितम्।
समित्कुशेन्धनस्थानमायुधानाञ्च नैर्ऋते ॥ 137 ॥

---

11. तुल.— स्कन्दपुराणमतेन। चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ : हेमाद्रि दान. (पृष्ठ 668-670)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पश्चिम दिशा में उदकाश्रय (जलश्रय) झरोखों से युक्त होना चाहिए। समिधा, कुशा, इन्धन और आयुध का स्थान नैर्ऋत्यकोण में रखना चाहिए।

अभ्यागतालयं रम्यं शय्यासन समन्वितम्।
तोयाग्निदीपसम्भुतैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत्॥ 138॥

अतिथियों के सोने-बैठने के लिए अभ्यागतालय (अतिथिशाला) को शय्या और आसन सहित सुन्दर बनाएँ। उसमें जल, अग्नि, दीपक जैसी वस्तुओं का प्रबन्ध हो। यह योजना दक्षिण दिशा की ओर होगी।

गृहान्तराणि सर्वाणि सजलैः कदलीगृहैः।
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत्॥ 139॥

सभी गृहों के अन्तराल पर जल सहित कदलीगृहों की आयोजना की जानी चाहिए। उनको पाँच-पाँच प्रकार के पुष्पों को लगाकर शोभायमान रखना चाहिए।

प्राकारं तद्बहिः कुर्यात्पञ्चहस्त प्रमाणतः।
प्राकाराच्च बहिः कुर्यात् सर्वदिक्षु समन्ततः॥ 140॥

उसके बाहर की ओर पाँच हाथ ऊँचे प्रमाण वाला परकोटा बनाना चाहिए। बाहरी परकोटे को सभी दिशाओं को घेरते हुए बनाएँ।

शिवाश्रमारामशोभार्थे वृक्षादीनां परिकल्पनाह —

दिव्यं शिवाश्रमारामं नानापुष्पोपशोभितम्।
सर्व्वर्त्तुकगुणोपेतं बहुवृक्षजलान्वितम्॥ 141॥

दिव्य शिवाश्रम के उपवन को अनेक प्रकार के पुष्पों वाले पौधों से शोभायमान करना चाहिए। वह छहों ऋतुओं के गुणों को ग्रहण करने वाला तथा बहुत से वृक्षों और जलाशय वाला हो।

प्रियङ्गुशिखराशोकपत्रजीवकरिष्टकैः ।
पुन्नागनागबकुलैः पाटलाबिल्वचम्पकैः॥ 142॥
श्वेतमन्दारविजयैः जातीत्यगरुकुष्ठकैः।
सुवर्णश्वेतयूथीभिर्वर्णाम्लनकुरण्टकैः॥ 143॥
करवीरैः कर्णिकारैः नानावर्णैरनेकशः।
स्थानविन्यासरचितैः सन्मार्गाधारसंयुतैः॥ 144॥

उस उपवन में प्रियंगु, शिखर (लवंग), अशोक, पत्र (तमाल), जीवक

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

(एक दिव्य ओषधीय वृक्ष), अष्टक (अष्टा या अणु अश्मन्तक अथवा केतक), पुन्नाग, नाग (सुपाड़ी), बकुल, पाटला (पाडण, अमोघा), बिल्व, चम्पक, श्वेतार्क, विजय (भंग एक स्थावर विष ओषध), चमेली, अगरु, कुष्ठक (कूट), सुवर्ण (अर्जुन या कृतमाल), श्वेत यूथिका (जूही), वर्णाम्लन, कुरण्टक, करवीर (कणवीर), कर्णिकार (कनेर) इत्यादि अनेक वर्णों वाले पेड़-पौधों को लगाएँ। इस तरह स्थानों का सुन्दर विन्यास और अच्छे मार्गों की आयोजना की जानी चाहिए।

वृक्षैर्बहुविधैर्युक्तं दिग्विदिक्षु जलान्वितम्।
सितरक्ताब्जकुसुमैः नीलरक्तोत्पलैर्युतम्॥ 145॥
लतावितानगृहकैः विचित्रैश्च तदवस्थितैः।
कदलैः स्तम्भखण्डैश्च दाडिमाद्यैर्विराजितम्॥ 146॥
इति कृत्वा बहिस्तस्य प्राकारं कल्पयेन्महत्।
कवाटगोपुरोपेतं परिखावटसंयुतम्॥ 147॥

इसी प्रकार बहुत से वृक्षों को लगाकर दिशाओं-विदिशाओं में जलस्रोतों का प्रबन्ध करना चाहिए। जलस्रोतों में सफेद व लाल रंग के कमल के पुष्प हों। वे नीलकमल और रक्तोत्पल से भी युक्त हों। उस उपवन में लता-वितान के कुंज विचित्र प्रकार से बनाए गए हों। कदल के स्तम्भ-खण्ड हों तथा दाड़िम आदि के वृक्ष लगाए गए हों। इस प्रकार की रचना करते हुए उस बगीचे के बाहर बड़ा परकोटा बनाएँ। उसको गोपुर-द्वार और किंवाड़, परिखा एवं वटदल से युक्त करें।

तृतीयाश्च पुरादूर्ध्वं विद्याव्याख्यान मण्डपम्।
गवाक्षनिर्गमोपेतं विचित्रं परिकल्पियेत्॥ 148॥

आगे की ओर ऊपर की ओर तीसरा विद्या व्याख्यान मण्डप बनाएँ जिसमें गवाक्ष और निर्गम योग्य विचित्र द्वारों को बनाया जाना चाहिए।

पुराश्च पञ्चमं कार्य्यं शिवस्य वसतीगृहम्।
षट्हस्तमष्टहस्तं वा दारुपट्टविनिर्मितम्॥ 149॥

इसी प्रकार पुर में पाँचवाँ कार्य भगवान् शिव का वसतीगृह बनाने का है। उसमें छह से लेकर आठ (हाथ) तक लम्बे लकड़ी के पट्ट बनाए जाने चाहिए।

तत्र मृद्दारुशैलं वा स्थापयेद्विधिवच्छिवम्।
सर्व्वविद्याविधातारं सर्वज्ञं कुलमीश्वरम्॥ 150॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वहाँ पर मृत्तिका अथवा काष्ठ या पाषाण के शिवलिंग की विधिवत् स्थापना करनी चाहिए जो समस्त विद्या के विधाता और सर्वज्ञ कुल ईश्वर हैं।

वृतः शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याख्योनोद्यतपाणिकम्।
पद्मासनस्थं सुश्वेतं प्रसन्नवदनं गुरुम्॥ 151॥

वहाँ शिष्यों व प्रशिष्यों का समूह व्याख्यान सुनने के लिए हाथ जोड़े विनम्र हों और पद्मासन पर विराजित गुरुवर्य सुन्दर सफेद परिधान में प्रसन्नमुख हों।

एवं शिवाश्रमं कृत्वा भक्त्या वित्तानुसारतः।
तत्प्रतिष्ठां ततः कुर्यात्पूजालङ्कारलक्षणम्॥ 152॥
विद्यादानोक्तविभवैः शोभां कृत्वा मठाग्रतः।

इस प्रकार शिवाश्रम को अपनी भक्ति और वित्त सामर्थ्य के अनुसार बनाएँ और अलंकरण लक्षणों सहित उसकी प्रतिष्ठा करें। विद्यादान के प्रसंग में जैसा अर्थ-वैभव बताया गया है, उसके अनुसार मठ के आगे की ओर सौन्दर्यकरण करना चाहिए।

स्नानादीनां विधानमाह —

पञ्चभिः पञ्चगव्येस्तं स्थाप्यैशान्यान्दिशि क्रमात्॥ 153॥
स्नापयेद्गन्धतोयाद्यैः शिवशास्त्रपरिश्रुतैः।
तूर्यघोषैस्तमानीय स्थापयेत् पुष्पमण्डपे॥ 154॥
ततश्चन्दनपुष्पाद्यैः पूजयित्वाधिवासयेत्।
जप्त्वा पञ्चविधं स्तोत्रं शिव विज्ञापयेत्ततः॥ 155॥

ईशानादि कोण में पांच पंचगव्य की स्थापना क्रम से करें। बाद में गन्ध, जलादि से स्नान करवाएँ और शिवशास्त्र का श्रवण करें। तूर्यादि घोष वाद्यों को लाकर पुष्पमण्डप में स्थापित करें। तत्पश्चात् चन्दन, पुष्पादि से पूजा करें और अधिवासन करवाएँ और पंचविध स्तोत्र का जाप करें और शिव को यह निवेदन करें—

अद्याधिवासितं देव स्वः (श्वः) प्रतिष्ठा भवेत्तव।
भक्तानामनुकम्पार्थं सान्निध्यमुपकल्पयेत्॥ 156॥

"हे वर्तमान में अधिवासित देवेश! आप यहाँ प्रतिष्ठित होइये। हम भक्तगणों पर अनुकम्पा के लिए सान्निध्य प्रदान कीजिएगा।" ऐसा कहना चाहिए।

प्रातः संस्नाप्य देवेशं पूजयित्वा प्रवेशयेत्।
पवित्रै स्थापयेद्वेद्यां पादादारभ्य पञ्चभिः॥ 157॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पुनः देवता को प्रातःकाल स्नान करवाएँ और पूजा करके पवित्र वेदी पर स्थापित करें। पाँच बार पद-कमल में आराधना करनी चाहिए।

ततः सुगन्धगन्धाद्यैर्नित्यं शोध्यं शिवालयम्।
शिवञ्च पूजयेत्पुष्पैः स्नानवस्त्रयुगान्वितैः॥ 158॥

इसके बाद सुगन्ध-गन्ध आदि से नित्य शिवालय का शोधन करना चाहिए। वहाँ पर शिव का पूजन पुष्पादि से करना चाहिए और स्नान के बाद दो वस्त्र प्रदान करना चाहिए।

सशिष्यस्तं प्रणम्येशं गुरुर्व्याख्यां प्रवर्त्तययेत्।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापि पुण्याहार्थं शिवाग्रतः[12]॥ 158 अ॥

ईश्वर को शिष्यों सहित प्रणाम करके गुरुदेव को व्याख्यान का प्रवर्तन करना चाहिए। शिव के आगे की ओर पूर्वमुखी अथवा उत्तरमुखी होकर पुण्याह वाचन करना चाहिए।

ततः सम्पूजयेद्भक्त्या यजमानः स्वयं गुरुम्।
दक्षिणाभिर्विचित्राभिः भोजनाद्यैश्च पूजयेत्।
निवेदयेत्ततः स्थानं सर्वेषां शिवयोगिनाम्॥ 159॥
सर्वोपकरणोप्येतं प्रणिपत्य पुनः पुनः।

इसके बाद यजमान को स्वयं भक्तिपूर्वक गुरु का पूजन करना चाहिए और नाना प्रकार की दक्षिणाएँ निवेदित कर भोजनादि से सन्तुष्ट करना चाहिए। बाद में सभी शिवयोगियों को भी उस स्थापन पर न्यौतकर उनको आवश्यक वस्तुओं को प्रदान कर बार-बार प्रणाम करना चाहिए।

एवं विधं शिवपुरनिर्माणफलमाह —

एवं यः कारयेदाढ्यः श्रीमच्छिवपुरं महत्॥ 160॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते।
स्वगोत्रविंशकोपेतः सद्भृत्यपरिवारतः॥ 161॥
पुत्रमित्रादिसंयुक्तः सान्तःपुरपरिच्छदः।
सुविचित्रैर्महायानैरसङ्ख्यैः सर्वकामिकैः॥ 162॥

इस तरह जो श्रीमान् दिव्य और महत् शिवपुर की रचना करवाता है, वह

---

12. मातृकायां नोपलभ्यते। दानखण्डे अध्या. 8, पृष्ठ 670

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सभी पापों से छूटकर शिवलोक को प्राप्त होता है। वह अपने गोत्र की बीस पीढ़ियों के साथ सेवकों और परिचारकों, पुत्र, मित्रादि और अन्तःपुर के परिषदों के साथ असंख्यों विचित्र महायानों पर सवार होता है और अपने मनोरथ को पूर्ण करता है।

शिववत् क्रीडते भोगैरणिमादिगुणैर्युतः।
ततः कालेन महता विद्यादान प्रभावतः॥ 163॥
ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव प्रतिमुच्यते।

वहाँ वह भगवान् शिव की तरह क्रीड़ा करता है। वह अणिमादि गुणों से युक्त भोगों का लाभ लेता है। विद्यादान के प्रभाव से वहाँ दीर्घकाल तक रहता है और फिर ज्ञानयोग की साधना के फलस्वरूप मुक्त हो जाता है।

स्थपतिस्थापका वृक्षा वलीवर्द्दाश्च कर्म्मिणः॥ 164॥
यान्ति रुद्रपुरं सर्व्वे तदध्यक्षाश्च ये नराः।
ये चान्ये वृत्तिभृतकाः शिवायतनकर्म्मिणः॥ 165॥
तेऽपि यान्ति मृताः स्वर्गं शिवकर्म्मानुभावतः।

यही नहीं, इस शिवपुर की रचना करने वाले स्थपति, स्थापक, काम में आने वाले काष्ठ के वृक्ष, भारवाहक बैल और कारीगर जो भी सेवकगण और उनके अध्यक्ष हों, वे सभी व्यक्ति भी रुद्रलोक को जाते हैं। यही नहीं, वहाँ वेतन लेकर काम करने वाले सेवक और शिवालय के कर्मचारी भी हो, मरने के उपरान्त शिव के लिए कार्य के भाव से स्वर्ग में गमन करते हैं।

शिवदासत्वमापन्नाः नरनारी नपुंसकाः॥ 166॥
तेऽपि तन्नाम संयोगात् यान्ति रुद्रपुरं महत्।
दत्तां क्रीताः प्रविष्टाश्च दण्डोत्पन्नाबलोद्धृताः॥ 167॥
विज्ञेया रुद्रगणिका शिवायतनयोषितः।
या रुद्रगणिकोत्पन्ना [पुत्रपौत्रा]दि सन्ततिः॥ 168॥
सापि याति मृता स्वर्गं मातुरेवानुभावतः।

शिव की दासता प्राप्त करने वाले नर-नारी, नपुंसकगण भी उनकें नाम का लाभ लेकर महत रुद्रपुर को जाते हैं। दान में दी गई, खरीद कर भेंट की गई, स्वयं प्रवेश करने वाली, दण्ड प्राप्त, जबरन लाई गई और उद्धार की गई— सभी प्रकार की रुद्र गणिकाओं को शिवालय की ही नारियाँ समझें। और, जो रुद्रगणिकाओं से उत्पन्न होने वाले पुत्र-पौत्रादि सन्तानें हैं, वे भी अपने माता के अनुभाव के अनुसार मरने पर स्वर्ग को जाती हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शिवायतन पर्यन्ते म्रियन्ते येऽपि जन्तवः॥ 169॥
तेऽपि यान्ति शिवं लोकं किं पुनस्तमुपाश्रिताः।

शिवालय के आसपास के क्षेत्र में यदि कोई जन्तु भी मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह भी शिवलोक को जाता है, तो फिर उनके उपासकों की तो बात ही क्या है?

शिवाश्रमनिर्माणफलमाह —

अत्यल्पमपि यः कुर्यादतिरम्यं शिवाश्रमम्॥ 170॥
वितस्तिहस्तमात्रं वा सोऽपि यान्ति शिवं पुरम्।

बहुत छोटा ही सही, अति सुन्दर कोई शिवाश्रम बनवाता है, वह चाहे एक बालिश्त या हाथ प्रमाण का ही क्यों न हो, तो वह निर्माता भी शिवपुर को जाता है।

कृत्वा सकुट्टिमं भूमिमीश्वरायतनाग्रतः॥ 171॥
तत्र मण्डलकं कुर्यात् वृत्तं वा चतुरश्रकम्।
सूत्रेण सम्मितं कृत्वा नानावर्णकशोभितम्॥ 172॥
विचित्रकुसुमोत्कीर्णं मध्ये पङ्कज शोभितम्।

शिवालय के आगे की ओर की भूमि को कुट्टिम सहित पक्की बनवानी चाहिए। वहाँ पर गोलाकार अथवा चौकोर मण्डल बनवाएँ। उसको सूत के प्रयोग से सीधाकर नाना रंगों से शोभायमान करना चाहिए। उस पर चित्र-विचित्र फूलों को उत्कीर्ण करते हुए बीच में कमल बनाकर सुन्दरता करनी चाहिए।

प्रदीपाक्षतसंयुक्तमुदकं ग्राह्यपाणिना॥ 173॥
मूर्ध्ना प्रणम्य मेदिन्यां शिवाय विनिवेदयेत्।

वहाँ पर दीप जलाकर हाथ में अक्षत सहित जल लेकर अपना सिर पृथ्वी पर टिकाकर प्रणाम करते हुए यह सब शिव को निवेदित करना चाहिए।

यः कुर्यात्सकृदप्येवं शिवमण्डलकं नरः॥ 174॥
स सर्वकामैः संयुक्तः शिवलोके महीयते।
कालात्पुनरिहायातः श्रीमानर्थपतिर्भवेत्॥ 175॥
ज्ञानवान् रोगहीनश्च सुप्रियः सद्द्विजः सुखी।

इस प्रकार जो व्यक्ति सुन्दर भाव रचना शिवमण्डलक का विधान करता है, वह सभी कामनाओं को पूर्ण करता हुआ शिवलोक को प्राप्त होता है। समय बीतने पर वह पुनः इस पृथ्वी पर आकर श्रीमान् और धनपति होता है। वह ज्ञानवान, रोगहीन, सबको प्रिय, श्रेष्ठ ब्राह्मण और सुखी होता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

विद्याव्याख्यानमण्डपं फलमाह —

विद्यामण्डलकं कृत्वा विद्याव्याख्यानमण्डपे॥ 176॥
तत्राभ्यर्च्य शिवां विद्यां तद्व्याख्यां शृणुयात्ततः।[13]

विद्यामण्डल बनाकर विद्या व्याख्यान मण्डप बनाएँ। वहाँ पर शिव की पूजा करें और फिर विद्या की व्याख्या सुननी चाहिए।

शिवमण्डलकार्येन विधिनातीव शोभनम्॥ 177॥
गुरुमण्डलकं कृत्वा शिवलोके महीयते।

शिवमण्डल का कार्य विधि के अनुसार बहुत ही सुन्दरता से करना चाहिए। जो गुरुमण्डल का कार्य करता है, वह शिवलोक की शोभा बढ़ाता है।

शिवविद्यागुरूणां च कृत्वा मण्डलकत्रयम्॥ 178॥
यः शृणोति शिवज्ञानं तस्य विद्या प्रसीदति।
अनेन विधिना ज्ञानं यः शृणोति प्रवक्तिः च॥ 179॥
स सम्प्राप्य श्रियं सौख्यं देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात्।[14]

इस प्रकार शिव, विद्या और गुरु— इनके तीन मण्डल बनाने चाहिए। वहाँ पर जो शिवज्ञान का श्रवण करता है, उसको विद्या की सिद्धि होती है। इस विधि के अनुसार जो ज्ञान के श्रवण की प्रवृत्ति रखता है, वह अपने जीवन में कल्याण और सुख पाता है और अन्त में मुक्ति प्राप्त करता है।

अथारोग्यशालास्थापनफलमाह —

आरोग्य शालां यः कुर्यात् महावैद्यपुरस्कृताम्॥ 180॥
सर्वोपकरणोपेतां तस्य पुण्यफलं शृणु[15]**।**

जो व्यक्ति आरोग्यशाला (ओषधालय) का निर्माण कर उसमें महावैद्य की

---

13. तुल.— स्कन्दपुराणमतेन। चतुव्वर्ग्गचिन्तामणौ : हेमाद्रि दान. (पृष्ठ 560)
14. तुल.— स्कन्दपुराणमतेन। चतुव्वर्ग्गचिन्तामणौ : हेमाद्रि दानः (पृष्ठ 560)
15. तुल.— स्कन्दपुराणमतेन। चतुव्वर्ग्गचिन्तामणौ : हेमाद्रि दान. (पृष्ठ 894-895); नन्दिपुराणे— धर्मा-र्थ-काम-मोक्षाणां आरोग्यं साधनैर्युतः। अतस्त्वारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदा॥ आरोग्यशालां कुरुते महौषधपरिछदाम्। विदग्धवैद्यसंयुक्ता भृत्यांवसथसंयुताम्। वैद्यसतु शास्त्रवित् प्राज्ञो दृष्टौषधपराक्रमः। औषधीमूलवर्णज्ञः समुद्धरण कालवित्॥ रसवीर्यविपाकज्ञः शालिमांसोधीगणे। योगविद्देहिनां देहं यो धिया प्रविशेद्बुध॥ धातुपथ्यमयज्ञश्च निदानविदतन्द्रितः। व्याधीनां पूर्वलिङ्गज्ञस्तदुत्तरविधानवित्॥ देशकालविधानज्ञश्चिकित्साशास्त्रवित्तथा। अष्टाङ्ग आयुर्वेदवेत्ता मुष्टियोगविधानवित्॥ दानखण्डे अध्या. 13, (पृष्ठ 893)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

नियुक्ति करता है और उसके लिए आवश्यक उपकरणों को जुटाता है, उसके फल को सुनियेगा।

धर्मा-र्थ-काम-मोक्षाणामारोग्यं साधनं यतः ॥ 181 ॥
तस्मादारोग्य दानेन तद्दत्तं स्यात्तच्चतुष्टयम्।
अथैकमार्त्तं विद्वांसं स्वस्थीकृत्व प्रयत्नतः ॥ 182 ॥
प्राप्नोति सुमहत्पुण्यमनन्तं क्षयवर्जितम्।

आरोग्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन कहा गया है। इसलिए आरोग्यदान करना उक्त चारों ही फलों का दान करना होता है, ऐसा समझना चाहिए। विद्वानों को प्रयत्नपूर्वक स्वस्थ करके ऐसा दानदाता अनन्त महापुण्य को प्राप्त करता है। ऐसे पुण्य का कभी क्षय नहीं होता है।

ज्ञानयोगरतं शान्तं रोगार्त्तं शिवयोगिनम् ॥ 183 ॥
यः स्वस्थं कुरुते सोपि सर्व्वदानफलं लभेत्।

ज्ञानयोग के मार्ग पर आरूढ़ शान्त किन्तु रोगग्रस्त शिवयोगियों को जो स्वास्थ लाभ देता है, वह सभी दानों का फल प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मा विष्णुः सुराः सर्व्वे व्याधयः स्वजना नृपाः ॥ 184 ॥
योगस्यैते महाविघ्नाः व्याधयस्तेन योगिनाम्।
ब्रह्म-क्षत्रिय-विट्-शूद्रान् रोगार्त्तान् परिपाल्य च ॥ 185 ॥

ब्रह्मा, विष्णु जैसे सभी देवता, स्वजन और राजा भी व्याधि ग्रस्त होते हैं। योग साधन में महाविघ्न होते है, योगियों को भी व्याधियाँ होती है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजन भी रोगी होते हैं, उनका वहाँ पर परिपालन करना चाहिए।

यत्पुण्यं महदाप्नोति न तत्सर्वैर्महामखैः।
आकाशस्य यथा नान्तः सुरैरप्युपलभ्यते ॥ 186 ॥
तद्वदारोग्यदानस्य नान्तो वै विद्यते क्वचित्।
पुण्येनानेन महता गत्वा शिवपुरं नरः ॥ 187 ॥
मोदते विविधैर्भोगैः विमानैः सार्वकामिकैः।
एकविंशत् कुलोपेतः सभृत्यः परिपालितः ॥ 188 ॥

इस उपचारचर्या से वह पुण्य लाभ होता है जो समस्त यज्ञों के सम्पादन से होता है। जिस तरह आकाश का अन्त नहीं होता है, वैसे ही देवताओं को भी जो दुर्लभ है, वह पुण्य आरोग्यदान से होता है, उसको कहा नहीं जा सकता है। इस महान् पुण्य

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

के फलस्वरूप आरोग्यदाता शिवपुर को जाता है और वहाँ विविध भोगों का उपभोग करता है। वह मनोरथपूर्ण करने वाले विमान पर आरूढ़ रहता है। उसके साथ इक्कीस कुलों और नौकर-चाकर आदि को भी लाभ मिलता है।

आस्ते शिवपुरे तावद्यावदाहूतसम्प्लवम्।
ततः स्वधर्म्मशेषेण सम्प्राप्तः प्रयतः सदा॥ 189॥
ज्ञानमुत्पद्यते तस्य रुद्रेभ्यः परिचारकः।

जब तक प्रलयकाल नहीं आता, तब तक वह सपरिवार शिवपुर में रहता है। बाद में वहाँ अपना समय-धर्म पूरा होने पर वह इस लोक को प्राप्त होता है। यहाँ उनको ज्ञान उत्पन्न होता है और वे रुद्र के परिचारक होते हैं।

ज्ञानाद्विमुक्तः संसाराच्छिवध्यानमुपाश्रितः॥ 190॥
स्वदेहं तृणवत्त्यक्त्वा सर्व्वदुःखान्तमाप्नुयात्।
समस्तदुःखनिर्मुक्तं शुद्धः स्वात्मव्यवस्थितः॥ 191॥

ज्ञान से विमुक्त होकर वह इस संसार में शिव के ध्यान में आश्रित होते हैं। अपने देह को तृण की तरह त्यागकर सभी दुःखों का अन्त करते हैं। सभी दुःख व शोक से मुक्त होकर वे शुद्ध रूप से अपने आत्मा में व्यवस्थित हो जाते हैं।

सर्व्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्त इत्यभिधीयते।
तस्माद्भोगापवर्गार्थं रोगार्त्तं समुपाचरेत्॥ 192॥
विशेषेण तु योगीन्द्रं शरीरेण धनेन च।
रोगीणो रोगं त्यजेत्प्राज्ञस्तन्मूलानां च सर्वतः॥ 193॥
सम्पश्येद्गुरुवन्नित्यमेवं धर्मः प्रवर्तते।

ऐसी अवस्था को सर्वज्ञ लोग परिपूर्ण और मुक्त इस नाम से कहते हैं। इसलिए भोग और स्वर्ग के लाभ के हेतु रोगियों की सेवा करनी चाहिए। विशेषकर योगीन्द्रों की अपनी काया और माया दोनों से सेवा करनी चाहिए। प्राज्ञजन सदैव रोगियों के रोग का मूल सहित निवारण करें और उनको गुरु की तरह देखकर नित्य धर्म की प्रवृत्ति करें।

योनुगृहीतमात्मानं मन्यमानो दिने दिने॥ 194॥
उपसर्पेत रोगार्त्तंस्तीर्णस्तेन भवार्णवः।

जो कोई इस तरह से अपने आपको अनुगृहीत करता है और दिन-दिन यही मानकर रोगियों के दुःख को मिटाता है, वह स्वयं को इस भवसागर से तारता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विद्यादानं समाचरेत्॥ 195॥
एवमेनद्बहुविधं विद्यादानं प्रकीर्तितम्।
सर्वेषामेव वर्णानां विधिनानेन तद्भवेत्॥ 196॥

इसलिए सर्वस्तरीय प्रयास करके विद्यादान करना चाहिए। इस प्रकार बहुविध विद्यादान कहा गया है। यह सभी प्रकार के वर्णों के लिए इसी विधि से सम्भव होता है।

इति श्रीशिवधर्मोत्तरशास्त्रे विद्यादानफलं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ 2॥

इस तरह शिवधर्मोत्तरपुराण में विद्यादान फल नामक द्वितीय अध्याय पूरा हुआ।

*****

अथ पञ्चमहायज्ञगुणाऽध्याय नामकं तृतीयोऽध्यायः॥ 3॥

स्कन्दोवाच—

अथ ये सततं भक्त्या भजन्ति शिवयोगिनः।
ते विदन्ति महाभोगानन्ते योगं च शाङ्करम्॥ 1॥
भोगार्थिभिर्नरैस्तस्मात्सम्पूज्याः शिवयोगिनः।
प्रतिश्रयान्नपानाद्यैः शय्यावस्त्रासनादिभिः[1]॥ 2॥

शिवकुमार स्कन्द बोले— अब उन लोगों के बारे में कहता हूँ जो सतत शिवयोगियों की भक्ति में रहते हैं। ऐसे लोग महान भोगों को प्राप्त करके अन्त में शांकरयोग को प्राप्त करते हैं। अतएव भोगादि सुखाभिलाषियों को चाहिए कि वे शिवयोगियों का पूजन करें। धर्मशाला और वहाँ पर अन्न, जल, शय्या, वस्त्र, आसनादि का प्रबन्ध करके उनकी सहायता करें।

यन्नाम गात्र शुश्रूषा प्रकुर्याच्छिवयोगिनाम्।
दरिद्रः सततं भक्तस्तस्य पुण्यफलं शृणु॥ 3॥

जो नाम और देह से शिवयोगियों की सेवा-शूश्रुषा करते हैं और जो दरिद्र होने पर भी सतत भक्त होते हैं, उनके पुण्यफल का सुनिये।

---

1. तुल.— शिव. (वायवीय. उत्तर. 39, 39-41)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सूर्यतेजः प्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः।
मृतः शिवपुरं गच्छेत् त्रिसप्त$_{21}$कुलसंयुतः॥ 4॥

वे अपने इक्कीस कुलों के साथ सूर्य के तेज के समान सभी कामनाओं को पूरा करने वाले विमान पर आरूढ़ होकर शिवपुर को जाते हैं।

तत्र दिव्यैर्महाभोगैस्त्रिसहस्त्रैर्मनोरमैः।
कल्पकोटिशतं दिव्यं सेव्यमानः स तिष्ठति॥ 5॥

वहाँ पर दिव्य महाभोगों को तीन हजार वर्षों तक मनोरम रूप से भोगते हैं। दिव्य करोड़ कल्पों तक वहाँ सेवित होकर रहते हैं।

तदन्ते विष्णुभवने तावत्कालं वसेत्पुनः।
वैष्णवैर्विविधैर्भोगैस्त्रिसहस्त्रैः समन्वितः॥ 6॥
विष्णुलोकाच्युतो ब्राह्म्यां सम्प्राप्यं वसेत्पुनः।
भोगैस्तु विविधैः सूक्ष्मैः तावत्कालमनुत्तमैः॥ 7॥

तदुपरान्त वह विष्णुलोक में उतने ही काल तक पुनः निवास करते हैं और वैष्णव होकर विविध भोगों को तीन हजार कल्प तक भोगते हैं। विष्णुलोक से च्युत होकर वे ब्रह्मलोक में जाते हैं। वहाँ पर विविध सूक्ष्म भोगों को उतने ही उत्तम काल तक भोगते है।

प्राजापत्येन्द्रगान्धर्व यक्षलोकेष्वनुक्रमात्।
भोगान्नानाविधान्भुक्त्वा पृथिव्यां जायते क्रमात्॥ 8॥

इसी तरह क्रमशः प्रजापतिलोक, इन्द्रलोक, गान्धर्वलोक और यक्षलोक में जाते हैं और नाना प्रकार के भोगों को भोगकर पुनः क्रम से पृथ्वीलोक में जन्म लेते हैं।

कुले महति विप्राणां प्रज्ञाशीलगुणान्वितः।
ततः सम्पूर्णभावेन योगीन्द्रं पर्युपासति॥ 9॥

पृथ्वीलोक में वे महान प्रज्ञाशील गुणों के आगार विप्रों के घर में जन्म ग्रहण करते हैं और सम्पूर्ण भावनाओं के साथ योगीन्द्र शिव की उपासना करते हैं।

तत्सम्पर्काच्छिवज्ञानं प्राप्य योगं निषेवते।
यो विरक्तः संसारात्प्राप्नोति परमं पदम्॥ 10॥

वहाँ पूर्वज्ञान के सम्पर्क से शिवज्ञान को प्राप्त करते हैं और योग का अभ्यास करते हैं और संसार से विरक्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इति यः कुरुते भक्तिं सततं शिवयोगिनाम्।
स द्वितीये तृतीये वा देहे योगमवाप्नुयात्॥ 11॥

इसी प्रकार जो निरन्तर शिवयोगियों की भक्ति करते हैं, वे दूसरी या तीसरी देह मिलते ही योग को प्राप्त कर लेते हैं।

अथ कर्मध्यानज्ञानश्च त्रिविधयज्ञवर्णनम् —

अथ पूजाग्निकार्याद्यै भेदैर्बहुविधैस्ततः।
कर्मयज्ञः समाख्यातः तपश्चान्द्रायणादिकम्[2]॥ 12॥

अब पूजाकार्य, अग्निकार्य इत्यादि जो बहुत प्रकार की विधियों से किए जाते हैं, वे कर्मयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं। चान्द्रायण जैसे व्रत को तप कहा गया है।

स्वाध्यायश्च जपः प्रोक्तः शिवमन्त्रस्य तत्त्रिधा।
ध्यानयज्ञः समाख्यातः शिवचिन्ता मुहुर्मुहुः[3]॥ 13॥

स्वाध्याय और शिवमन्त्र के जप तीन प्रकार के (शिव स्मरण, चिन्तन, मनन) कहे गए हैं। ध्यानयज्ञ के नाम से बारम्बार शिव का चिन्तन करना कहा गया है।

अध्यापनं$_1$ हि तद्ध्यानं$_2$ व्याख्या$_3$ श्रवण$_4$ चिन्तनम्$_5$।
इति पञ्चप्रकारोयं ज्ञानयज्ञः प्रकीर्तितः॥ 14॥
उत्तरोत्तर तः श्रेष्ठं सर्वेषां परिकीर्तितम्।
पञ्चानामपि यज्ञानां ज्ञानयज्ञो विमुक्तिदः॥ 15॥

1. अध्यापन करना, 2. ध्यान 3. व्याख्या, 4. श्रवण और 5. चिन्तन करना— इन पाँच प्रकार से ज्ञानयज्ञ कहे जाते हैं। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, ऐसा सभी को कहा गया है। पाँचों यज्ञों में ज्ञानयज्ञ को मुक्तिदाता बताया गया है।

ज्ञानयज्ञमाहात्म्यम् —

नास्ति ज्ञानं विना ध्यानं नास्ति ज्ञानमयोगिनाम्।
ज्ञानं ध्यानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः[4]॥ 16॥

ज्ञान बिना ध्यान नहीं मिल पाता है, योगियों के बिना ज्ञान सम्भव नहीं हो

---

2. तुल.— तपः कर्म जपो ध्यानं चेति समासतः। कर्म लिङ्गार्चननाद्यं च तपश्चान्द्रायणादिकम्॥ शिव. वायवीय. उत्तर, 7, 37
3. तुल.— जपस्त्रिधा शिवाभ्यासश्चिन्ता ध्यानं शिवस्य तु। शिवागमोक्तं यज्ज्ञानं तदत्र ज्ञानमुच्यते॥ तत्रैव 7, 38
4. शिव. वायवीय. उत्तर. 39, 22

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पाता है। जिस साधक के पास ज्ञान और ध्यान दोनों होते हैं, उसने तो मानों भवसागर को पार ही कर लिया।

ज्ञानं प्रसन्नमेकाग्रमशेषोपाधिवर्जितम्।
योगाभ्यासेन सततं विरक्तस्योपजायते[5] ॥ 17 ॥

प्रसन्न, एकाग्रचित्त और समस्त सांसारिक उपाधियों से रहित होने का नाम ज्ञान कहा गया है। योगाभ्यास और निरन्तर विरक्ति के भाव से रहने से ही यह प्राप्त हो सकता है।

श्रुतिचिन्तामयज्ञानं विकल्पबहुशं यतः।
तस्मात्तदप्रसन्नत्वात् चञ्चलं न विमुक्तिदम् ॥ 18 ॥

सुने हुए चिन्तनयुक्त ज्ञान से जहाँ बहुत से विकल्प होते हैं। इसलिए उस अप्रसन्नता से चंचलता होती है जो मुक्ति प्रदाता नहीं है।

श्रुत्वापि वर्धयेज्ज्ञानं प्राज्ञास्तच्चिन्तयेत्पुनः।
विमलं तत्प्रसन्नं च चिन्त्यमानं भवेच्छनैः ॥ 19 ॥

तथापि, सुनने से ज्ञान बढ़ता है और प्राज्ञपुरुष उसका पुनः चिन्तन करते हैं। इससे वे धीरे-धीरे उस चिन्तन से चिन्त्यमान होते हैं और विमल होकर प्रसन्न होते हैं।

आरम्भकाले श्रवणं क्रियाकाले विचिन्तनम्।
निश्चयाद्भावनं तस्य निष्ठाकाले प्रसन्नतः ॥ 20 ॥

आरम्भ काल में श्रवण करना और क्रियाकाल में चिन्तन— ऐसी निश्चय भावना जिसकी होती है, उसको निष्ठाकाल में प्रसन्नता होती है।

ज्ञानं विकल्पबहुशं रागाद्यैः कलुषीकृतम्।
अज्ञानमलशुध्यर्थं कलुषोदकवद्भवेत् ॥ 21 ॥

ज्ञान के रागादि बहुत से विकल्प हैं जो कलुषित करने वाले हैं अतएव अज्ञान रूपी मल की शुद्धि के लिए ये कलुष जल की तरह हैं।

निस्सारमतिकष्टं च भवं भावयतः शनैः।
अम्भोवच्च शरत्काले तत्प्रसन्नं क्रमाद्भवेत् ॥ 22 ॥

इन कलुषों से निस्सार और अति कष्टदायी इस भव में धीरे-धीरे समझ का भाव आता है जिससे शरत्काल में स्वच्छ बादल की तरह उसमें क्रम से प्रसन्नता होने लगती है।

---

5. पाठान्तर : योगाभ्यासेन युक्तस्य योगिनस्त्वेव सिद्ध्यति। शिव. तत्रैव 39, 23

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यदा प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिमोदधि संस्थितम्।
तदाज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानमितरत् पुनः॥ 23॥

जब प्रसन्नता की एकाग्र स्थिति में आनन्द-सागर में स्थिति हो जाती है, तब उसे ज्ञान हुआ— ऐसा कहा जाता है और इतर सब अज्ञान है।

इति प्रसन्नं यज्ज्ञानं भावनामयमुत्तमम्।
रागाद्यैरपरामृष्टं तद्विज्ञेयं विमुक्तिदम्॥ 24॥

इस तरह जो ज्ञान से प्रसन्न है और उत्तम भावनामय है और जिसने रागादि को नष्ट कर दिया है, उसे ही मुक्तिदाता समझना चाहिए।

अज्ञानपाशबन्धत्वादमुक्तः पुरुषः स्मृतः।
तस्माज्ज्ञानेन मुक्तिः स्यादज्ञानस्य परिक्षयात्॥ 25॥

अज्ञानरूपी पाश से बन्धे होने से पुरुष को अमुक्त कहा जाता है। इसलिए ज्ञान से ही मुक्ति होती है जो अज्ञान के क्षय होने के बाद सम्भव है।

संसारबन्धमज्ञानं संसार्यज्ञः पुमां स्मृतः।
ज्ञानात्तस्य निवृत्तिः स्यात् प्रकाशात्तमसो यथा॥ 26॥

अज्ञान संसार का बन्धन है जिसे पुरुष यज्ञ स्वीकारता है परन्तु इस धारणा की निवृत्ति ज्ञान रूपी प्रकाश से वैसे ही होती है जैसे अंधकार की निवृत्ति उजाले से हो जाती है।

अज्ञानेननिरागाद्या धर्माधर्मौ च तद्वशः।
धर्माधर्मवशात् पुंसां शरीमुपजायते॥ 27॥

अज्ञान से रागादि और धर्माधर्म के वश में हो जाना पड़ता है और धर्माधर्म के वशीभूत होने से पुरुषों के शरीर में जन्म लेना पड़ता है।

शरीरे सति संक्लेशैः सर्वैः सा युज्यते यतः।
ततः क्लेश प्रहारार्थं पुनर्देहं न कामयेत्॥ 28॥

शरीर के होने पर उससे सभी प्रकार के क्लेश जुड़ते जाते हैं। अतएव क्लेश को मिटाने के लिए पुनः देह की कामना नहीं करना चाहिए।

जगतस्तत्त्व सम्बोधादज्ञानं विनिवर्तते।
अज्ञान विनिवृत्तौ च रागादीनामसम्भवः॥ 29॥

इस जगत के तत्त्व का सम्बोध होते ही अज्ञान मिट जाता है और अज्ञान के विनिवृत्त होने से रागादि दोष भी असम्भव हो जाते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

रागाद्युपशमात्पुंसां पुण्यपापपरिक्षयः।
तत्क्षयाच्च शरीरेण न पुनः सम्प्रयुज्यते॥ 30॥
अशरीरश्च संक्लेशैः सर्वदैव न बाध्यते।
क्लेशमुक्तः प्रसन्नात्मा मुक्त इत्यभिधीयते॥ 31॥

राग से उपशम होकर पुरुष अपने पुण्य और पाप का भी क्षय कर लेता है। इस क्षय से शरीर द्वारा वह पुनः नहीं जुड़ता है और अशरीरी को संक्लेश के नाम पर कोई भी देव बाधा नहीं पहुँचा सकता है। अतएव क्लेश से मुक्त होकर जो प्रसन्नात्मा होकर रहता है, उसे मुक्त कहा जाता है।

तस्माद्ऽज्ञानमूलानि सर्वदुःखानि देहिनाम्।
ज्ञाने सहितदज्ञानं निवर्तेत सत्कर्मभिः॥ 32॥

इसलिए यह समझ लेना चाहिए कि देहियों के सभी दुखों का मूल अज्ञान ही है। अतः सद्कर्मों से ज्ञानवान होकर अज्ञान से निवृत्त हो जाना चाहिए।

नास्ति ज्ञानाते पुंसा पुण्यपापपरिक्षयः।
मोक्षार्थी पुरुषस्तस्मात् ज्ञानमेव सदाभ्यसेत्॥ 33॥

ज्ञान को धारण किए बिना पुरुषों के पुण्य-पाप चक्र का क्षय नहीं होता है। इसलिए मोक्षार्थी पुरुष को सदैव सद्ज्ञान का ही अभ्यास करते रहना चाहिए।

मार्ज्यमाणस्सदा यद्वद्दर्पणो निर्मलो भवेत्।
ज्ञानाभ्यासात्तदा पुंसां बुद्धिर्भवति निर्मलः॥ 34॥

जिस प्रकार नित्य माँजते रहने से दर्पण निर्मल हो जाता है, उसी तरह ज्ञान के नित्य अभ्यास से पुरुष की बुद्धि निर्मल होती है।

ज्ञानामृतरसो येन सकृदास्वादितो भवेत्।
सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्तिस्स परिधावति॥ 35॥

जिसने इस ज्ञानामृत के रस का शीघ्र स्वाद ले लिया, उसके सभी कार्य सिद्ध होकर उसकी ओर दौड़े चले आते हैं।

ज्ञानामृत रसप्रायेस्तेन नास्वादितो भवेत्।
योवान्यत्रैव रमते तद्विहाय सुदुर्मति॥ 36॥

प्रायः जिसने ज्ञानामृत का रसास्वादन कर लिया हो, यदि वह उसे छोड़कर अन्यत्र भटकता रहता है, तो वह दुर्बुद्धि ही कहा जाता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।
नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्॥ 37॥

ज्ञानामृत से तृप्त और कृतकृत्य हुए योगी के लिए कोई भी कर्तव्य नहीं रह जाता है और यदि कोई कर्त्तव्य रह जाता है तो वह तत्त्ववेत्ता नहीं हो सकता है।

लोकद्वयेऽपि कर्तव्यं किञ्चिदस्य न विद्यते।
इहैव स विमुक्तः स्यात् सम्पूर्णः समदर्शनः[6]॥ 38॥

उसके लिए दोनों ही लोकों में कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता है। वह पूर्णकाम और समदर्शी होने से इसी लोक में मुक्त होता है।

नास्ति ज्ञानात्परं किञ्चित् पवित्रं पापनाशनम्।
तत् सदाभ्यासयोगेन शनैरात्मनि विन्दति॥ 39॥

ज्ञान के समान पवित्र कोई भी पापों का विनाश करने वाला नहीं है। उसको सदा अभ्यास योग से धीरे-धीरे अपने आप ही पाया जाता है।

व्रतानि दानानि तपांसि यज्ञाः सन्यासतीर्थाश्रमधर्मयोगाः।
स्वर्गीयमेतत्सुखमधुवचं च ज्ञानं ध्रुवं शान्तिकरं महार्थम्॥ 40॥

व्रत, दान, तप, यज्ञ, सन्यास, तीर्थ, आश्रम, धर्म और योग ये सभी स्वर्गीय है, सुख देने वाले हैं और मधुर वचन, ज्ञान निश्चित ही शान्तिकारक और महान् अर्थ के बोधक हैं।

यज्ञैर्देवत्वमाप्नोति तपोभिर्ब्रह्मणः पदम्।
दानेन विविधान्भोगान् ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्[7]॥ 41॥

यज्ञ से देवत्व प्राप्त होता है और तप से ब्राह्मण का पद मिलता है। दान के फलस्वरूप विविध भोग मिलते हैं और ज्ञान से मोक्ष की सिद्धि होती है।

धर्मरज्वा व्रजेदूर्ध्वं पापरज्वा व्रजेद्दधः।
द्वयं ज्ञानासिना छित्वा विदेहः शान्तिमृच्छति॥ 42॥

धर्म रूपी रस्सी से बन्धकर ऊपर उठते हैं अर्थात् उत्थान होता है और पाप रूपी रस्सी से बन्धकर नीचे गिरते हैं अर्थात् पतन होता है। इन दोनों रज्जुओं को ज्ञान रूपी तलवार से काटकर विदेह होकर शान्ति को प्राप्त हो जाना चाहिए।

---

6. श्वेताश्वतरोपनिषदशाङ्करभाष्ये (गीताप्रेस संस्करण) प्रथमोऽध्यायः, पृष्ठ 1124
7. तुल.— यज्ञैर्देवत्वमापन्ना गीर्वाणा वासवादयः। यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च तेभ्योऽप्याधिक्यमस्ति मे॥ (स्कन्द काशी. 58, 168)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ज्ञानिनां यद्यधर्मेण भवेद्बन्धः शुभेन वा।
ध्रुवमुक्तिः कथं तेषां निबद्धानां शुभाशुभैः॥ 43॥

ज्ञानियों के लिए यदि अधर्म से बन्धन शुभ भी हों तो ध्रुवमुक्ति उन लोगों की कैसे हो जो शुभाशुभों से बन्धे हुए हैं।

नहि देहभृता शक्यं कर्म त्यक्तुं शुभाशुभम्।
गच्छ तस्तिष्ठतो वाऽपि तदवश्यं भवेद्यतः॥ 44॥

किसी भी देहधारी का शुभाशुभ कर्म त्याग कर सकना सम्भव नहीं है। चलते हुए और ठहरे हुए भी वह कर्म अवश्य होता है।

अधर्मविनिवृत्यैव भवेत्पुण्यमकुर्वतः।
धर्मत्यागादधर्मश्च न तेषां निश्चिलः कथम्॥ 45॥

पुण्यकर्म करने से अधर्म की विनिवृत्ति होती है और धर्म को त्यागने से अधर्म होता है, इससे निश्चल कैसे हो सकते हैं।

ज्ञानीनां स्थितिवर्णनम् —

तस्माज्ज्ञानसिना तूर्णमशेषं कर्मबन्धनम्।
कामाकामकृतं छित्त्वा शुद्धश्चात्मनि तिष्ठति॥ 46॥

ऐसे में व्यक्ति तुरन्त ही सकाम या निष्काम भाव से किए हुए समस्त कर्मबन्धनों को ज्ञानरूप तलवार से काटकर शुद्ध हो अपने ही आत्मा में स्थित हो जाता है।

यथा वह्निर्महान्दीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत्।
तथा शुभाशुभं कर्म ज्ञानाग्निर्दहते क्षणात्॥ 47॥

जिस तरह बहुत तेजी से जलती अग्नि क्या सूखे और क्या गीले सभी प्रकार के ईंधन को जला डालती है, उसी प्रकार ज्ञानाग्नि क्षणभर में समस्त शुभाशुभ कर्मों को भस्मीभूत कर देती है।

पद्मपत्रं तथा तोयैः स्वस्थैरपि न लिप्यते।
शब्दादिविषयाम्भोभिस्तद्वज्ज्ञानी न लिप्यते॥ 48॥

जिस प्रकार कमल का पत्र अपने ऊपर पड़े हुए जल से भी लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानी प्रारब्धवश अपने को प्राप्त हुए शब्दादि विषय रूपी पानी से कभी लिप्त नहीं होता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यद्वन्मन्त्रबलोपेतः क्रीडन्सर्पैर्न दंश्यते।
क्रीडन्नपि न लिप्येत तद्वदिन्द्रियपन्नगैः॥ 49॥

जैसे मन्त्रबलसिद्ध व्यक्ति साँपों के साथ खेलते रहने पर भी उनके द्वारा डँसा नहीं जाता, उसी तरह ज्ञानी इन्द्रिय रूप साँपों के साथ क्रीड़ा करते रहने पर भी उनसे कभी लिप्त नहीं होता है।

मन्त्रौषधिबलैर्यद्वज्जीर्यते भक्षितं विषम्।
तद्वत्सर्वाणि पापानि जीर्यन्ते ज्ञानिनः क्षणात्[8]॥ 50॥

जैसे खाया हुआ विष यथेष्ट उपाय, औषधि के प्रयोग से निष्प्रभावी होकर पच जाता है, वैसे ही ज्ञानी के सारे पाप एक ही क्षण में नष्टभूत हो जाते हैं।

नास्ति ज्ञानसमं तीर्थं नास्ति ज्ञानसमं तपः।
नास्ति ज्ञानसमो यज्ञः तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत्[9]॥ 51॥

ज्ञान के बराबर अन्य कोई तीर्थ नहीं हैं, ज्ञान के बराबर कोई तप नहीं है और ज्ञान के समान कोई यज्ञ नहीं है। अतएव साधकों को सदा ही ज्ञान का अभ्यास रखना चाहिए।

ज्ञानध्यानश्च वर्णनम् —

यथाज्ञानं तथा ध्यानं ज्ञानध्यानं समं स्मृतम्।
ज्ञानध्यानरतः सौख्यं मुनिर्मोक्षं च विन्दति॥ 52॥

जैसा ज्ञान है, वैसा ही ध्यान है। ज्ञान और ध्यान को समान कहा गया है। ज्ञान व ध्यान में रत रहने से सुख होता है और मुनि मोक्ष भी इनसे प्राप्त करते हैं।

ज्ञानादैश्वर्यमतुलमैश्वर्यात् सर्वषामुत्तमम्।
ज्ञानेन तत्परित्यज्य तनु मुक्तिमेववाप्नुयात्॥ 53॥

ज्ञान से अतुलनीय ऐश्वर्य मिलता है। ऐश्वर्य से (इहलोक में) सब सर्वोत्तम होता है। ज्ञान के फलस्वरूप उसको छोड़कर काया मुक्ति ही प्राप्त करती है।

ध्यानादैश्वर्यमतुलमैश्वर्यात् सुखमुत्तमम्।
ज्ञानेन तत्परित्यज्य विदेहो मुक्तिमाप्नुयात्[10]॥ 53॥

---

8. श्लोक 46-50 श्वेताश्वतरोपनिषदे शाङ्करभाष्ये प्रथमोऽध्याये (पृष्ठ 1126-1127) उद्धृतम्।
9. पाठान्तरे— नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः। नास्ति ध्यानसमो यज्ञस्तताद्ध्यानं समाचरेत्॥ शिव. तत्रैव 39, 28
10. श्वेताश्वतरोपनिषदे प्रथमोऽध्यायः, पूर्ववत्, पृष्ठ 1204

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ध्यान से भी अतुलित ऐश्वर्य मिलता है और ऐश्वर्य से उत्कृष्ट सुख मिलता है। ज्ञान से उनका त्याग करके देहाभिमान से रहित होकर मोक्ष प्राप्त करे।

सर्वेषामेव यज्ञानां ज्ञानध्यानं परं स्मृतम्।
नित्यः शुद्धः प्रसन्नश्च सर्वदोष विवर्जितम्॥ 54॥

सभी यज्ञों में ज्ञान-ध्यान परम माने गए हैं। इससे व्यक्ति नित्य शुद्ध व प्रसन्न तथा समस्त दोषों से रहित होता है।

शुक्लकृष्णः वरः सूक्ष्मः सुविशुद्धः समाधिजः।
ज्ञानयज्ञः परोयज्ञः स्थूलो शुद्धश्च कर्मणाम्॥ 55॥

शुक्ल और कृष्ण, बहुत ही सूक्ष्म और अन्त्यन्त शुद्ध समाधि से उत्पन्न जो ज्ञान यज्ञ है, वह परम यज्ञ है जो शुद्ध स्थूल कर्मों के कारण होता है।

विशुद्धैः साधनैः सूक्ष्मैर्ध्यान यज्ञः प्रसाध्यते।
यस्मात्तस्माद्विशुद्धोयमपर्ग फलप्रदः॥ 56॥

विशुद्ध और सूक्ष्म साधनों से ही ध्यान यज्ञ साधा जाता है। इसलिए ही यह शुद्ध, विशुद्ध ही अपवर्ग के फल का दाता कहा गया है।

अन्तर्यागोपचारेण यः पूजयति शङ्करम्।
ध्यानं ज्ञानं सततं स याति परमां गतिम्॥ 57॥

जो व्यक्ति अन्तर के गुप्त उपचारों से शिव को पूजता है और ध्यान तथा ज्ञान साधना में निरन्तर लगा रहता है, वह परमगति को प्राप्त करता है।

पुष्पैछन्दैः सनियमैरात्मैकादशभिः परैः।
दशदिक्षु तथा मध्ये यजेत परमेश्वरम्॥ 58॥

पुष्पों और छन्दों से अर्थात् श्रद्धा से पुष्पार्पित करके या शास्त्रीय ज्ञान या पाठादि से और नियमपूर्वक अपने को एकादश (रुद्र) से परे दसों दिशाओं के बीच परमेश्वर का यजन करना चाहिए।

कर्म वा तपो यतो विशिष्ठो दशभिर्गुणैः।
जपयज्ञस्तपोयज्ञः ज्ञेयः शतगुणाधिकः॥ 59॥

ऐसा करने से वह कर्मयोग से अथवा तप से दस गुणा विशिष्ट हो जाता है। जपयज्ञ और तपोयज्ञ को सौ गुणा अधिक समझना चाहिए।

ज्ञानध्यानात्मकः सूक्ष्मः शिवयोग महामखः।
वरिष्ठः सर्वयज्ञानामसङ्ख्यातैर्महागुणैः॥ 60॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ज्ञान ध्यानात्मक सूक्ष्म शिवयोग महान यज्ञ है। यह सभी यज्ञों में ज्येष्ठ और असंख्य महागुणों से युक्त होता है।

पूजया विपुलं राज्यमग्निकार्येण सम्पदः।
जपेन पाप संशुद्धिर्ज्ञानध्यानेन मुच्यते॥ 61॥

पूजा से विपुल राज्य मिलता है। अग्निकार्य अथवा यज्ञकर्म से सम्पदा, जप से पापशुद्धि और ज्ञान-ध्यान से मुक्ति होती है।

जपाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत्।
जपध्यानाभियुक्तस्य क्षिप्रं योगः प्रसिध्यति[11]॥ 62॥

जब जप करते-करते थकान हो जाए तो ध्यान करना चाहिए और ध्यान से थकान हो जाए तो जप करना चाहिए। जप और ध्यान से युक्त पुरुष को योगमार्ग में शीघ्र सिद्धि मिल जाती है।

प्रक्षीणाशेषदोषस्य ज्ञानध्याने भवेन्मतिः।
पापोपहतबुद्धीनां तद्वार्तापि सुदुर्लभा[12]॥ 63॥

(अभ्यास से) शेष दोषों के क्षीण हो जाने से ज्ञान और ध्यान में बुद्धि स्थिर हो जाती है। जिनकी बुद्धि पाप से मारी गई हो, उनके प्रति तो इस विषय की बात करना भी दुर्लभ समझना चाहिए।

धनुषां कोटिभिर्योगः समन्तात् परिरक्ष्यते।
सहस्त्रैष्षष्टिभिर्गङ्गां धर्मक्षेत्रं तदर्धतः॥ 64॥

करोड़ों धनुषों से योग को पूरी तरह परिरक्षित करना चाहिए। हजार इष्टियों से गंगा और अन्य धर्मक्षेत्र को उसके आधे से सुरक्षित करना चाहिए।

तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान् पाषाणमृण्मयान्।
योगिनो न प्रपद्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारिणः[13]॥ 65॥

योगी पुरुष अपने आत्म विश्वास के कारण कभी जलपूर्ण तीर्थों की यात्रा नहीं करते, वे पाषाण और मृत्तिका से बनी देवताओं की मूर्तियों की शरण भी नहीं लेते।

आत्मस्थं यः शिवं त्यक्त्वा बहिष्ठं यजते शिवम्।
हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य विहेत्कोर्परात्मात्मनः॥ 66॥

---

11. शिव. वाय. उत्तर. 37, 59
12. 'प्रक्षीणाशेषपापानां' इति शिव. वाय. उत्तर. 37, 59 पाठः।
13. शिव. वायवीय. उत्तर. 39, 29

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जो अपने आत्मस्थ शिव को त्यागकर बाहर के शिव का यजन-पूजन करते हैं, वे एक प्रकार से अपने हाथ के लड्डू को छोड़कर हाथ को कूर्पर या याचना का ठीकरा बना देते हैं।

सर्वत्रावस्थितं शान्तं न प्रपश्यन्ति शङ्करम्।
ज्ञानचक्षुर्विहीनत्वादन्धः सूर्यं यथोदितम्॥ 67॥

ऐसा व्यक्ति सर्वत्र विद्यमान शान्त शंकर का दर्शन नहीं कर सकता है क्योंकि ज्ञानचक्षु रहित होने से वह अन्धे के समान है जो उदित होते सूर्य को नहीं देख पाता है।

यः पश्यत्सर्वगं शान्तं तस्यात्मस्थः शिवः सदा।
आत्मस्थं येन पश्यन्ति तीर्थे मार्गन्ति ते शिवम्॥ 68॥

जो व्यक्ति सर्वत्र गमन करने वाले ईश्वर को शान्तचित्त से देख पाता है, उसके लिए तो शिव सदा ही आत्मस्थ है। जो आत्मस्थ शिव को देख पाता है, वह शिव के तीर्थमार्ग पर ही गमन करता है।

आत्मस्थं तीर्थमुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत्।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गतः।
ज्ञानध्यानरतैः शान्तैः यद्यत्तोयं निषेवितम्॥ 69॥
पाप शुदध्यर्थमज्ञानां तत्तीर्थं न तु योगिनाम्।

जो अपने आत्मा में स्थित तीर्थ को छोड़कर बाहर के तीर्थों में भटकता है, वह एक तरह से अपने हाथ आए रत्न को त्यागकर काँच को पाने के लिए विचरता है। ज्ञान, ध्यान में शान्तिपूर्वक लगे रहने के दौरान यदि तीर्थ के जल का सेवन करता है तो ऐसा तीर्थ अज्ञानियों के पापों को शुद्ध करने के लिए होता है, योगियों के लिए नहीं, यह समझना चाहिए।

दिवसं दिवसार्धं वा यत्र तिष्ठन्ति योगिनः॥ 70॥
तन्माङ्गल्यं पवित्रं च तत्तीर्थं तत्तपोवनम्।

एक दिवस के लिए अथवा आधे दिवस के लिए भी जहाँ पर योगीजन ठहरते हैं, वहाँ पर मांगल्य और पवित्रता होती है और वह तीर्थ भी तपोवन हो जाता है।

जिज्ञासुरपि योगस्य यां गतिं लभते मुनिः॥ 71॥
न तां गतिमवाप्नोति सर्वैरपि महामखैः[14]।
सत्यामागमवार्तायां प्रत्यक्षे च तत्फले॥ 72॥

---

14. शिव. वायवीय. उत्तर. 39, 35

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शिवयोग को जानने की इच्छा रखने वाला मुनि जिस गति का लाभ प्राप्त करता है, उस गति को समस्त विधि से महायज्ञ करने वाला भी नहीं पा सकता है। सत्य और आगम वार्ता का वहाँ पर प्रत्यक्ष फल मिलता है।

अध्येयमीश्वर ज्ञानमल्पक्लेशं महाफलम्।
यदि क्लेशेन महता भवेत्पुण्यं महत् फलम्॥ 73॥

ईश्वरीय ज्ञान के अध्ययन में थोड़ा कष्ट अवश्य है किन्तु महान फल है। यदि क्लेश से महता मिलती है तो वह पुण्य महान फल वाला जानना चाहिए।

स्यान्महारत्नवाहिभ्यः फलं पाषाणवाहिनाम्।
पाषाणशतसाहस्त्रं यः स्कन्धे वोढुमिच्छति॥ 74॥
श्रममेति विनाशं वा सो बुद्धिस्तद्विहन्निव।

महान रत्नों को वहन करने वालों को पाषाण उठाने वालों की अपेक्षा अधिक फल मिलता है। जो अपने कन्धों पर सैकड़ों-हजारों पत्थरों का बोझ उठाना चाहते हों, वे इस प्रकार के श्रम से केवल विनाश को ही प्राप्त होते हैं। मानो उनकी अपनी बुद्धि मारी गई हो।

अङ्गुष्ठोदरमात्रं तु विशिष्टः पद्मराट्मणिः॥ 75॥
प्राप्तस्तु सुखसंवाह्यो महतोर्थस्य नायकः।

इसके विपरीत अँगूठे के बराबर उदर वाली विशिष्ट पद्मरागमणि को पाकर जो सुख का संवाह करता है, वही महान नायक कहा जाता है।

एवं हि कर्माणि तपांसि यज्ज्ञान्
क्लेशात्मकानल्प फलप्रदांश्च।
सन्त्यज्य सर्वान् शिवयोगमेकं
ध्यायेत्परं मुक्तिकरं प्रशान्तम्॥ 76॥

इसी प्रकार कर्मों का तप और ज्ञान व आत्मक्लेश का अल्प फल कहा गया है। अतएव सभी को छोड़कर केवल एक शिवयोग का ध्यान करें जो परम मुक्ति का कारक और प्रशान्त करने वाला है।

ज्ञानयोग प्रधानत्वादन्तरङ्गो विमुक्तिदः।
बहिरङ्गो प्रधानत्वाद्यज्ञाद्यं भोगसाधनम्॥ 77॥

ज्ञानयोग की प्रधानता से अन्तरंग मुक्ति मिलती है और बहिरंगों की प्रधानता से यज्ञादि भोग साधन सुलभ होते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यथेहान्तश्चरा राज्ञः प्रियाः स्युर्न बहिश्चराः।
तथान्तर्ध्यान निरताः प्रियाः शम्भोर्न कर्मिणः[15] ॥ 78 ॥

जिस प्रकार राजागणों को अन्तःपुर के सेवक प्रिय होते हैं, न कि बाहर वाले सेवक, वैसे ही अन्तःध्यान में लगे रहने वाले भक्त शिव के प्रियात्म होते हैं न कि बाहरी ध्यान करने वाले।

बहिष्कर्मकरा यद्वा नातीव फलभोगिनः।
दृष्ट्वा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रापि कर्मिणः॥ 79 ॥

कारण ये है कि जैसे राजप्रासादों में बाहरी कर्मचारीगण अधिक लाभ के भागी नहीं होते, वैसे ही यहां के सेवकगणों की स्थिति भी होती है।

यथान्तरुपचारेण नरस्त्रीषु प्रसीदति।
तथान्तध्यानविधिना प्रसीदति महेश्वरः॥ 80 ॥

जिस प्रकार के उपचार से अर्थात् आन्तरिक व्यवहार से नर स्त्रियों से प्रसन्न रहते हैं, उसी तरह अन्तःध्यान विधि से महेश्वर भी प्रसन्न होते हैं।

यथान्तर्दन्तिनो दन्ताः सुखिनो न बहिस्स्थिताः।
तथान्तध्याननिरताः स फलानि न बहिस्थिताः॥ 81 ॥

जैसे अन्दर की ओर रहने वाले दांतों से दांतधारक (हाथी) सुखी रहते हैं वैसे बाहर की ओर निकले हुए दांतों वाले (हाथी) सुखी नहीं होते है। इसी तरह अन्तःध्यान में निरत लोग सफल होते हैं, बाह्यवृत्ति वाले नहीं होते।

अत्यल्पोपि यथा दीपः समहं नाशयं तमः।
योगाभ्यासस्तथाल्पोपि महापापं विनाशयेत्॥ 82 ॥

बहुत छोटा दीपक भी जिस प्रकार गहन अन्धकार को मिटाने में सक्षम होता है, उसी तरह अति अल्प योगाभ्यास भी महापाप का विनाश करने में सक्षम होता है।

अर्धयामं मुहूर्तं वा ध्यायतः परमेश्वरम्।
यद्भवेत् सुमहत् पुण्यमन्तस्तस्य न विद्यते॥ 83 ॥

आधी घड़ी तक अथवा पूरे एक मुहूर्त तक परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए। इससे महान पुण्य होता है। इस पुण्य का कोई अन्त नहीं पाया जाता है।

यद्यन्तरा विपद्येत ज्ञानयोगार्थमुद्यतः।
श्रद्धया गुरुभक्त्या च रुद्रलोकं स गच्छति॥ 84 ॥

---

15. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर., 39, 31

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अनुभूय सुखं तत्र कुले जायते योगिनाम्।
ज्ञानयोगं ततः प्राप्य संसारमतिवर्तते[16] ॥ 85 ॥

यदि ज्ञानयोग के लिए तत्पर भक्त निधन को प्राप्त हो जाते हैं तो वे उसके प्रति श्रद्धा रखने और गुरुभक्ति में निरत रहने से रुद्रलोक को जाते हैं। वहाँ पर वह सुखों का उपभोग करके योगियों के कुल में जन्म लेता है और वहाँ ज्ञानयोग को प्राप्त करके संसार से मुक्त हो जाता है।

मृदुर्मध्योत्तमा चैव श्रद्धा पुंसां त्रिधास्मृताः।
जन्मत्रिधा ध्रुवं ज्ञानमन्तःश्रद्धोऽपि विन्दति ॥ 86 ॥

मृदु (लघु), मध्यम और उत्तम— इन तीन प्रकारों की श्रद्धा मनुष्यों में पाई जाती है। जन्मकाल से इन तीनों द्वारा निश्चित ज्ञान इस प्रकार की अन्तःश्रद्धा से भी हो जाता है।

तस्मात्स्वर्गं समुत्सृज्य कर्मयोगमशाश्वतम्।
ध्याये नित्यं विशुद्धं च ज्ञानयोगमत्युत्तमम् ॥ 87 ॥

इसलिए स्वर्ग को छोड़कर और अशाश्वत कर्मयोग को भी त्यागकर नित्य विशुद्ध ज्ञानयोग जो अत्युत्तम है, उसका ही ध्यान करना चाहिए।

इत्येवं ज्ञानयोगस्य महाभाग्यमुदाहृतम्।
तदाभ्यासरतानां च मुनीनां शान्त चेतसाम् ॥ 88 ॥

इस तरह से ज्ञानयोग के महाभाग्य को कहा गया है। उसके अभ्यास करने वाले मुनियों का चित्त शान्त हो जाता है।

इति श्रीशिवधर्मोत्तरे पञ्चमहायज्ञगुणाऽध्यायो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ 3 ॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तर में पंचमहायज्ञगुणाध्याय नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ।

*****

---

16. शिव. वायवीय. उत्तर, 39, 33-34

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सत्पात्रगुणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ 4 ॥

स्कन्दोवाच —

अथैकभविकं दानं कर्मयोगरतात्मनाम्।
शतजन्मभवं दानं तपोनिष्ठे प्रतिष्ठितम्॥ 1 ॥

स्कन्द बोले— कर्मयोग में रत लोगों का दान एक जन्म तक ही रहता है और तपोनिष्ठ लोगों का दान सैकड़ों जन्मों तक अपनी प्रतिष्ठा में रहता है।

जपयज्ञाभियुक्तेभ्यः सहस्त्रभविकं स्मृतम्।
आभूत सम्पदस्थायी प्रदानं शिवयोगिनाम्॥ 2 ॥

जपयज्ञ से युक्त लोगों के तो हजारों भव कहे गए हैं और शिवयोगियों की अभूतपूर्व सम्पदा स्थायी रहती है।

अत्यल्पमपि यो दत्तं शिवज्ञानार्थयोगिनाम्।
तन्महाप्रलयं यावदनुभोगाय कल्पते॥ 3 ॥

जो व्यक्ति शिवज्ञान के लिए उद्यत योगियों के प्रति थोड़ा सा भी दान देते हैं, उससे उनको महाप्रलयकाल तक अनुभोग मिलते रहते हैं।

सदामल्पं बहुवा किञ्चिदस्ति विजानतः।
देशकालवित्तश्राद्ध पात्रयुक्तं तदक्षयम्॥ 4 ॥

ऐसा दान जो थोड़ा हो अथवा बहुत हो और जानते हुए कितना भी हो, जो देश, काल और सामर्थ्य व श्रद्धा से पात्र के हस्तगत हो, वह अक्षय होता है।

देशकाले च पात्रे च विधिना श्रद्धया च यत्।
दत्तं कृतं हुतं चेदत्तदनन्तफलं भवेत्॥ 5 ॥

इस तरह देशानुसार, कालानुसम्मत, श्रद्धापूरित होकर पात्र के प्रति विधिपूर्वक दिए गए दान और किए गए हवन का फल अनन्त होता है।

लीलार्थमात्रकेनापि यत्प्रमाणेन दीयते।
तत्पात्रे श्रद्धया किञ्चित्तद्भवेत्सार्वकालिकः॥ 6 ॥

जो कोई केवल खेल-खेल में ही किसी को जिस प्रमाण से दान करता है, उस पात्र में उसकी कुछ श्रद्धा सर्वकालिक हो जाती है।

यद्दत्तं ज्ञानसलिलैः शीलभस्म प्रमार्जितम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तत्पात्रं सर्वपात्राणामुत्तमं सर्वकामिकम्॥ 7॥

जो दान ज्ञानरूपी जल से और शीलरूपी भस्म से परिमार्जित कर दिया जाता है, ऐसा पात्र सभी पात्रों में उत्तम और सभी कामनाओं को पूरा करने वाला होता है।

ज्ञानोडुपेन यः पुंसां त्राति संसार सागरात्।
अज्ञानपतनात्त्राणात् पात्रं तत्परमं स्मृतम्॥ 8॥

ज्ञान प्राप्त करके वह पुरुषों को संसार सागर से तारता है और उन्हें अज्ञान में गिरने से त्राण देता है, वह पात्र परम कहा गया है।

ज्ञानप्लव बलोपेतं पात्रं पापमहार्णवात्।
नाज्ञानवितारयेदज्ञं किं शिलां तारयेच्छिला॥ 9॥

ज्ञान के फलस्वरूप वह पात्र इस महान पाप रूपी सागर से तो तर जाता है किन्तु अज्ञानी को नहीं तार सकता है, जैसे कोई शिला अन्य किसी शिला को नहीं तैरा सकती है।

शिवयोगिनां दानफलम् —

द्विजानां वेदविदुषां [1]कोटि सम्बोध्य यत्फलम्।
भिक्षामात्रप्रदानेन तत्फलं शिवयोगिने॥ 10॥

वेदों को जानने वाले करोड़ ब्राह्मणों को बोधित (पूजित) करने से जो फल मिलता है, वही फल शिवयोगी को भिक्षा मात्र प्रदान करने से होता है।

शिवयोगीगृहे यस्याद्भिक्षागृह्णाति सत्कृतम्।
कुलमुत्तार येत्तस्य नरकार्णव संस्थितम्॥ 11॥

जिसके घर से कोई शिवयोगी सत्कार के साथ भिक्षा ग्रहण करता है तो वह गृहस्थ अपने नरक समुद्र में पड़े हुए कुल को भी तार देता है।

यज्ञाग्निहोत्रतीर्थेषु यत्फलं परिकीर्तितम्।
योगिनामन्नदानेन तत्समस्तफलं लभेत्[2]॥ 12॥

यज्ञ, अग्नि, होत्र, तीर्थाटन करने के जो फल कहे गए हैं, वे सभी फल शिवयोगी को अन्नदान करने से प्राप्त होता है।

ज्ञानिने शान्तचित्ताय शिवध्यानरताय च।

---

1. '०कोटि सम्पूज्य यत्फलम्।' इति पाठः। शिव. वायवीय. उत्तर. 39, 36
2. तुल. — शिव. तत्रैव 39, 37

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

श्रद्धयान्नं सकृद्दत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ 13॥

ज्ञानियों, शान्तचित्त वालों और शिवध्यान में संलग्न रहने वालों को जो श्रद्धापूर्वक और अविलम्ब अन्नदान करता है, वह सब पापों से विनिमुक्त हो जाता है।

एवं मुनिवरं शान्तमीश्वरार्पित मानसम्।
भोजयित्वा सकृद्भक्त्या सर्वकामान वाप्नुयात्॥ 14॥

इसी प्रकार से मुनिवरों और शान्त ईश्वरार्पित मानस वालों को भोजन कराकर भक्तिपूर्वक सत्कार करके भी अपनी सभी कामनाओं को पूरी कर पाते हैं।

ध्यायमानः शिवं योगी भुङ्क्तेन्नं सततं यतः।
ततः साक्षाच्छिवेनैव तद्भुक्तमशनं भवेत्॥ 15॥

ध्यानरत शिवयोगी को जो नियमित भोजन करवाते हैं, वे मानो साक्षात् शिव को ही उस भोजन को करवा रहे हैं।

त्रायनुद्दिश्य यः श्राद्धे भोजयेच्छिव योगिनम्।
स गच्छेदैश्वरं स्थानमेकविंशत्, कुलान्वितः॥ 16॥

त्राण करने का उद्देश्य लेकर जो श्रद्धापूर्वक शिवयोगी को भोजन करवाते हैं, वे ईश्वर के स्थान में अपने इक्कीस कुलों के साथ जाते हैं।

शिवाय सर्वपापानि प्रनिवेद्याग्नौ च होमयेत्।
कल्येच्च गुरोर्भोगमित्ययं सततं विधिः॥ 17॥
शिवाग्निगुरुविप्रेभ्यः सर्वपाकाग्रमन्वहम्।
यो निवेद्य स्वयं भुङ्क्ते स रुद्रो नात्र संशयः॥ 18॥

जो अपने समस्त पापों को भगवान् शिव को अर्पण करके अग्नि में होम कर देते हैं और लगातार विधिपूर्वक गुरु के भोग की चिन्ता करते करते हैं; शिवाग्नि, गुरु, विप्रों के प्रति जो पकवानों का प्रबन्ध करते हैं और उनको निवेदित करने के उपरान्त ही स्वयं आहार लेते हैं, वे स्वयं रुद्र हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है।

अनिवेद्य च यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते किल्बिषं नरः।
कृषिवार्धुष्य वाणिज्य क्रोधा सत्योर्जनादिभिः॥ 19॥

और, जो इनको निवेदन नहीं करके स्वयं आहार ग्रहण करता है, वह मनुष्य स्वयं अपने पापों का ही भोग करता है। वे पाप प्रायः कृषिकार्य से, ब्याज वसूलने, व्यापार करने, क्रोध और असत्य व्यवहार से होते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkata and IKS-MOE

पुंसां पापानि वर्धन्ते सूना दोषैश्च पञ्चभिः।
सम्मार्जनाज्जनं तोयमग्निकण्डनिपेषणम्[3] ॥ 20 ॥

ये पाँच सूना अर्थात् पांच पाप के स्थान है जो पुरुषों के पापों को बढ़ाते हैं— 1. सम्मार्जन उपकरण (झाड़ू), 2. जलस्थान (पानेरा), 3. अग्निस्थान (चूल्हा) 4. कण्डनी (ओखली, मुसल) और 5. पेषण (चक्की, जांता)।

सूनाः पञ्च गृहस्थानां नित्य पापाभिवृद्धये।
शिवाग्नि गुरुपूजाभिः नित्यं पापैः न लिप्यते ॥ 21 ॥

ये पंच सूना स्थान नित्य ही गृहस्थजनों के पापों की अभिवृद्धि करते हैं। ऐसे गृहस्थ नियमित शिवाग्नि और गुरुपूजा के फलस्वरूप पापों से लिप्त नहीं होते हैं।

अन्नैश्च पापकैर्घोरैस्तस्मात्सं पूजयेत्त्रयम्।
शिवाग्निगुरुनैवेद्यं यावत्सिद्धानि सङ्ख्यया ॥ 22 ॥
तावद्वर्ष सहस्त्राणि तदा शिवपुरे वसेत्।

इसलिए इन तीनों, शिव को, अग्नि को और गुरु को अन्नदान करके घोर पापों से निवृत्त हो जाए। शिवाग्नि, गुरु के प्रति नैवेद्य के फलस्वरूप व्यक्ति जितने सिद्धों की संख्या है, उतने हजार वर्षों तक शिवपुर में निवास करता है।

नैवेद्यस्वरूपानुसारेणफलवर्णनम् —

घृताप्लुतयुतैस्सिद्धैः पुण्यं दशगुणोत्तरम् ॥ 23 ॥
उपदंशयुतैर्ज्ञेयं पुण्यं शतगुणाधिकम्।
षष्टिकोदन नैवेद्यैः सहस्त्रगुणितं फलम् ॥ 24 ॥
सुगन्धिशालिनैवेद्यै विज्ञेयमयुताधिकम्।

सामान्य आहार की अपेक्षा घृत से तर-सिद्ध भोजन करवाने से दस गुना अधिक पुण्य मिलता है। उपदंश (चटनी, अचार) सहित भोजन से सौ गुना अधिक पुण्य होता है। साठी चावलों के नैवेद्य से उससे हजार गुना फल होता है। सुगन्धित शालि-चावल निवेदित करने से दस हजार गुना अधिक फल जानना चाहिए।

---

3. तथा च मनुमतेन— पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः। कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥ मन्वर्थमुक्तावल्ये— पशुवधस्थानं सूना। सूना इव सूना हिंसास्थानगुणयोगाच्चुल्ल्यादयः पञ्चगृहस्थस्य हिंसाबीजानि हिंसास्थानानि। चुल्ली-उद्वाहनी, पेषणी-दृषदुपलात्मिका, उपस्करः-गृहोपकरणकुण्ड-संमार्जन्यादिः, कण्डनी- उलूखलमुसले, उदकुम्भः-जलाधारकलशः। याः स्वकार्ये योजयन्पापेन सम्बध्यते। (मनुस्मृति 3, 68)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

मातुलुङ्गकदल्याम्रपनसाद्यैः शुभैर्नवैः ॥ 25 ॥
कलमाशालि नैवेद्यैर्भवेल्लक्षाधिकं फलम्।
एवं शालिविशेषेण फलं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ 26 ॥

मातुलुंग (बीजोरा नींबू), केला, आम, पनस जैसे फलों और शुभ एवं नवीन कलमादि नामों वाले शालि धान्य के नैवेद्य से लक्षाधिक फल होता है। इसी प्रकार विशेष प्रकार के शालिधान्यों के नैवेद्य से उत्तरोत्तर फल का लाभ होता है।

सव्यञ्जनयुतं भूयस्तत् पुण्यमभिवर्धते।
व्यञ्जनानि विचित्राणि स्वादूनि सुरभीणि च ॥ 27 ॥
कोटिकोटिफलान्याहुः स्निग्धानि मधुराणि च।
क्षीरधु नैवेद्यैः भुङ्क्ते दशगुणाधिकं फलम् ॥ 28 ॥

मिठाइयों के साथ नैवेद्य से पुण्य की और अभिवृद्धि होती है। विविध प्रकार के व्यंजन, भोजन के स्वादों और सुगन्धों के प्रयोग से कोटि-कोटि फल होता है। स्निग्ध, मधुर खीर, दूध के नैवेद्य से भोजन कराने से दस गुना अधिक फल होता है।

दधिशर्करयायुक्तं तत्पुण्यं स्याद्दशाधिकम्। -
रसालां सुघनां शीतां कर्पूर सुरभिकृताम् ॥ 29 ॥
निवेद्यपुण्यमाप्नोति कोटिं शतगुणाधिकम्।
पानकानां सुगन्धानां फलं तुल्यं रसालयोः ॥ 30 ॥
तथा फलविशेषैश्च स्वादुभिः सदशभिः सदृशं फलम्।

दही और शक्कर से युक्त भोजन करवाने का पुण्य दस गुनाधिक फल होता है। सुघन और शीतल कपूर की सुगन्धि युक्त आमरस बनाकर निवेदित करने से करोड़ों गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है। सुगन्धमिश्रित अन्य पानक (फलों का बना हुआ पणा) निवेदित करने का फल आमरस के समान ही जानना चाहिए और स्वादिष्ट फल विशेष का फल भी दस के समान ही जानें।

गुडखण्डकृतैश्चापि घृतेन परिपाचितैः ॥ 31 ॥
कोटिसाहस्त्रगुणितं ज्ञेयं पुण्यं सुगन्धिभिः।
नाना प्रकारैर्विविधैः घृतेन परिपाचितैः ॥ 32 ॥
कोटिकोटिगुणं पुण्यं शिवाग्निगुरुकल्पितैः।

गुड़, खाण्ड और घी में तैयार किया गया सुगन्धित भोजन करवाने से हजार कोटि पुण्य का लाभ समझना चाहिए। नाना प्रकार के व्यंजन जो घी में पकाए गए हों,

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkata and IKS-MOE

यदि वे शिवाग्नि और गुरु के प्रति निवेदित किए जाते हैं तो कोटि-कोटि गुना पुण्य मिलता है।

घृताशनेन विज्ञेयं माषतुल्यफलं बुधैः॥ 33॥
शर्कराखण्डयुक्तेन माषादप्यधिकं फलम्।

घी के साथ पकाए गए भोजन का फल ज्ञानियों ने माशे के बराबर माना है और वही यदि शक्कर तथा खाण्ड के साथ तैयार मिष्ठान्न आहार हो तो उसका फल माशे से अधिक स्वीकारा है।

यथा यथा हि स्वादूनि स्निग्धानि सुरभीणि च॥ 34॥
भिक्षान्नपानशोष्याणि तत्फलानि यथा तथा।

जिस-जिस प्रकार से स्वाद में, स्निग्धता में और सुगन्ध में भिक्षा का अन्न-पान और शोष्य आदि होते हैं, उनका फल भी उसी के अनुसार होता है।

यद्वा तद्वा शिवायान्नं लिङ्गीने गुरुमूर्तये॥ 35॥
भक्त्या नैवेद्य भुञ्जानः फलमक्षयमाप्नुयात्।

जब कभी शिव के प्रति अन्न का लिंगियों और गुरुमूर्तियों को भक्तिपूर्वक नैवेद्य भोग दिया जाता है, उसका फल अक्षय प्राप्त होता है।

शिवयोगिनार्थ श्राद्धकर्म फलम् —

एवं यः कुरुते श्राद्धं भक्तितः शिवयोगिनाम्॥ 36॥
स पित्रान् सर्वपापैभ्यः समुद्धृत्ययं शिवं नयेत्।

इस तरह से जो शिवयोगी के प्रति श्राद्ध का भक्तिपूर्वक सम्पादन करता है, वह अपने पितरों को सभी पापों से तारकर शिवलोक में पहुँचाता है।

शिवयोगीदर्शनं फलम —

गङ्गास्नानसमं पुण्यं दर्शनं शिवयोगिनाम्॥ 37॥
सर्वतीर्थाभिषेकाच्च तत्सम्भाषणमुत्तमम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः प्रणम्य शिवयोगिनम्॥ 38॥

शिवयोगी के दर्शनों का फल गंगास्नान के समान होता है। सभी तीर्थों में अभिषेक-स्नान करने से भी उत्तम उन शिवयोगियों से संवाद करना है। शिवयोगियों को प्रणाम करने मात्र से सब पापों से मुक्ति मिल जाती है।

शूश्रूषयुक्त्या तं भक्त्या शिवलोके महीयते।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

युगपत्पूजितास्ते ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ॥ 39 ॥

उन शिवयोगियों की सेवा सहित भक्ति करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है। उनकी पूजा से ब्रह्मा, विष्णु ओर महेश्वर की एक साथ पूजा हो जाती है।

मातरः सर्वदेवाश्च योर्चयेच्छिवयोगिनम्।
तुष्यन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टेरिव कर्षकः ॥ 40 ॥

जो व्यक्ति शिवयोगियों की पूजा करते हैं, वे समस्त देवताओं, देवी-माताओं और अपने पितरों को उसी तरह सन्तुष्ट करते हैं जैसे अच्छी वर्षा होने से किसान प्रसन्न हो जाते हैं।

श्राद्धकाले शिवयोगीप्रतिभोजनफलम् —

यः श्राद्धे भोजयेद्भक्त्या विशेषाच्छिवयोगिनः।
आप्राप्तः सकुले कश्चित् जनयेत् पुत्रमीदृशम् ॥ 41 ॥

जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर शिवयोगी को न्यौतकर विशेष भक्ति के साथ भोजन करवाते हैं, वे किसी उच्चकुल को प्राप्त करते हैं और उनके ही समान सत्पुत्र को जन्म देते हैं।

यः सम्पूज्य शिवं श्राद्धे भोजयेच्छिवयोगिनम्।
नृत्यन्ति पितरस्तुष्टा गायन्ति च पितामहाः ॥ 42 ॥

जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर शिव की पूजा कर शिवयोगियों को भोजन करवाता है, उसके पितरगण सन्तुष्ट होकर नाचने लगते हैं और पितामह गाने लगते हैं।

अद्यनः पुत्रपात्रो वा योगीन्द्रं भोजयिष्यति।
शिवयोगिनमायान्तं दृष्टैव गृहसंस्थिताः ॥ 43 ॥
क्रीडन्त्योषधयः सर्वाः यास्यामः स्वर्गमक्षयम्।

वे कहते हैं कि आज हमारा पुत्र सुपात्र हुआ है जो योगीन्द्रों को भोजन करवा रहा है और शिवयोगी को आया जानकर वह उन्हें अपने घर में ठहरा रहा है। सभी औषधियाँ, भोजन सामग्री भी क्रीड़ा करती लगती हैं और मानती हैं कि हमें भी अक्षय सुख सुलभ होगा।

अथातिथिप्रशंसाह —

अनुग्रहाय लोकानां श्रद्धायाश्च परीक्षये ॥ 44 ॥
चरन्त्यतिथिरूपेण देवा योगाच्च भूतले।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत् कृताञ्जलिः[4] ॥ 45 ॥

लोक पर अनुग्रह करने के लिए और श्रद्धा की परीक्षा के लिए शिवयोगी अतिथि के रूप में विचरण करते रहते हैं। इस भूतल पर वे योग के देवता अर्थात् योगी हैं। इसलिए उनको अतिथि के रूप में देखकर आदरपूर्वक न्यौतने को हाथ जोड़कर सामने जाना चाहिए।

स्वागतासनपाद्यार्घ्यस्नानान्नशयनादिभिः ।
कृपान्वितं विरूपं हि मलिनं मलिनाम्बरम् ॥ 46 ॥
योगीन्द्राशङ्कया नित्यमतिथीनविचारयेत् ।
शिवयोगिशरीरेषु नित्यं सन्निहितः शिवः ॥ 47 ॥
योगीन्द्रं पूजयेत्तस्मात् साक्षात् सम्पूजयेः शिवः ।

उनका स्वागत करना चाहिए। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अन्नादि देकर शयनादि प्रदान करना चाहिए। कृपा करने वाले शिवयोगी विरूप अथवा मलीन भी हो, मैले वस्त्र धारण किए हुए हों तो भी उन योगीन्द्रों को शंका से नहीं देखना चाहिए। उनको नित्य ही अतिथि ही समझना चाहिए। उनके देह में सदैव शिव सन्निहित रहते हैं। इसलिए शिवयोगियों को साक्षात् शिव के रूप में ही स्वीकार करके पूजन करना चाहिए।

ये योगीन्द्रं द्विषन्त्यज्ञातः सर्वपापेष्वनुक्रमात् ॥ 48 ॥
अधोमुखोर्ध्वपादास्ते पच्यन्ते नरकाग्निषु ।
कृमिभिर्भिन्नवदना तप्यमानाच्च वह्निना ॥ 49 ॥

जो इन योगियों से द्वेष करते हैं, वे अपने अज्ञान के फलस्वरूप सभी पापों के कारण अनुक्रम से अधोमुख और ऊपर पाँव किए नरक की अग्नि में पकाए जाते हैं। तदनन्तर उनके कीड़े उनके शरीर को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। उन विदीर्ण शरीर को आग में तपाया जाता है।

प्रपीड्यन्ते महाघोरैः यावदार्कचन्द्रतारकम् ।
ये शिवज्ञान निरतं प्रद्विषन्ति मनागपि ॥ 50 ॥

---

4. तुल.—चतुर्व्वर्गचिन्तामणि परिशेषखण्डे अध्या. 6, पृष्ठ 430, 434-435; तत्रैव वायुपुराणेऽपि—तस्मादतिथि मायान्तमभिगच्छेत् कृताञ्जलिः। पूजयेच्चार्घ्यपाद्येन पादाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ पिपासिताय श्रान्ताय संस्नाताय बुभुक्षिने। तस्मै सत्कृत्य दातव्यं यज्ञस्य फलमिच्छता ॥ न वक्तव्यं सदा विप्रे क्षुधिते नास्ति किञ्चन। तस्मै सत्कृत्य योदद्यादपूर्वोयज्ञ उच्यते ॥ पृष्ठ 435

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पश्चाद्बाहुकबन्धास्ते नीयन्ते यमसदनम्।
तत्राग्नि तप्त सन्दंशैः प्रवीदोरपि पादयोः॥ 51॥
तेषामुत्पाट्यते जिह्वा शतशोथसहस्त्रशः।

यही नहीं, वे सूर्य, चन्द्रमा और तारागणों के रहने तक वहाँ महाघोर पीड़ा से पीड़ित होते हैं। जो शिवज्ञान में निरत रहने वालों से मन से भी द्वेष करते हैं, उनके पीठ के पीछे हाथ बाँधकर यमपुर में लाया जाता है। वहाँ पर उन्हें अग्नि में तपाई हुई संडासियों से जकड़ा जाता है, हजारों बार उनकी जीभ निकाली जाती है।

विकथ्यन्ते महात्मानं ये मूढाः शिवयोगिनम्॥ 52॥
ते यान्ति श्रोत्रिभिस्सार्धं नरकं नैव संशयः।

जो महात्मा होकर भी मूढ़तावश शिवयोगियों के बारे में निन्दनीय कथन करते हैं, वे निन्दा करने वाले और निन्दा को सुनने वाले नरक में जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

ये चापवादं कुर्वन्ति विमूढा; शिवयोगिनः॥ 53॥
ते विशेषेण वध्यन्ते नरकेष्वामहिक्षयात्[5]।

जो मूढ़ लोग शिवयोगियों की निन्दा करते हैं, उनसे विवाद करते है, उनका विशेष रूप से वध होता है और पृथ्वी के क्षय होने (प्रलयकाल) तक नरक में निवास करते हैं।

सति श्रोतरि वक्ता स्यादपमानस्य योगिनः॥ 54॥
तस्माच्छ्रोता च पापीयान्दण्ड्य सुमहतामतः[6]।

जो व्यक्ति श्रोता होकर किसी वक्ता से योगियों के प्रति अपमान भरे वचनों को सुनता है, वह पापी श्रोता महानजनों से दण्डनीय होता है।

वक्ता श्रोतानुमन्ता च प्रयोक्ता दूषणस्य च॥ 55॥
एतेषां यस्तु सम्पर्के पञ्चैते नरका स्मृताः।
इति योगीन्द्र पात्रस्य महाभाग्यमुदाहृतम्॥ 56॥

शिव के विरोध में बोलने वाला, सुनने वाला, उस विषय पर अपनी सहमती देने वाला और ऐसे दुष्प्रचारकर्ता सहित इनके सम्पर्क में रहने वाले— ये पाँचों ही

---

5. पाठान्तर : श्रोतृभिस्ते प्रपद्यन्ते नरकेष्वामहिक्षयात्। शिव. तत्रैव 39, 38
6. तुल.— शिव. तत्रैव, 39, 39

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

नरकगामी जानने चाहिए। इस प्रकार यहाँ महाभाग योगीन्द्र के पात्र के सम्बन्ध में कहा गया। (अतः पात्र होने के लिए इन दुर्गुणों से बचना चाहिए)।

अथ विषमपात्रलक्षणम् —

पूज्यापवाद विषमस्य पात्र शृणुताधुना।
अज्ञानपङ्कनिर्मग्नमात्मा त्राण विवर्जितः॥ 57॥

अब उन विषमपात्रों के सम्मान के अपवाद को सुनो जो अज्ञानरूपी कीचड़ में अपने आपको निमग्न किए हुए हैं और जिनको त्राण होना कठिन है।

अपुण्यगिरिणाकान्तमपात्रं गुणवर्जितम्।
आमपात्रे रसो यद्वा नश्यते सहभाजनम्॥ 58॥

ऐसे अपात्र लोग पाप के पहाड़ रूप होते हैं। ये अपात्र गुणरहित होने से वैसे ही हैं जैसे आम के पात्र में आम का रस उचित पात्र नहीं होने से नष्ट हो जाता है।

दानदुग्धे यथा स्वस्तं सहपात्रेण नश्यति।
सद्बीजमूषके यब्दादुस्तन्निखिलतां व्रजेत्॥ 59॥
दानदद्वदपात्रेषु विन्यस्तं निष्फलं भवेत्।
तस्मिन्निवहुतं हव्यं यथा होतस्सु निष्फलम्॥ 60॥

जैसे दान का दूध अपने पात्र में नष्ट हो जाता है अथवा जैसे अच्छे बीज भी चूहे के कुतर जाने से अंकुरित नहीं हो सकते, वैसे ही अपात्र को दिया हुआ दान नष्ट होकर निष्फल हो जाता है। ऐसे ही हवन किया गया हव्य भी जैसा हवनकर्ता होता है, वैसा ही फल देता है अर्थात् भाव के अभाव में निष्फल हो जाता है।

ज्ञानाग्निरहितो विप्रो विद्यादानं निरर्थकम्।
यथा षण्डोनरस्त्रीषु पुंगवेनविना च गौः॥ 61॥

ज्ञान की अग्नि से रहित विप्र का विद्यादान उसी तहर निरर्थक होता है, जैसे नपुंसक स्त्री-पुरुषों में और गोधन में बधियाकृत बैल होता है।

ब्राह्मणस्य तथा जन्म ज्ञानहीनस्य निष्फलम्।
लोभोडुपेन प्रचरं निमज्जत्युदके यथा॥ 62॥
तथा दाता ग्रहीता च पतत्यन्धे तमस्यधः।
कामनापूर्व सर्वभूतेभ्यः श्रद्धया यत्प्रदीयते॥ 63॥
दानं तदपि विज्ञेयं सर्वकामिकमुत्तमम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इसलिए ज्ञान से रहित ब्राह्मण का जन्म निष्फल होता है। जैसे लोभ से उड़ने वाले जीव व्यर्थ ही जल में निमज्जन करते हैं वैसे ही कामनापूर्वक सभी प्राणियों को दिए गए दान का दाता और ग्रहिता नीचे के अन्धतम लोक में गिरते हैं किन्तु जो दान श्रद्धापूर्वक दिया जाता है, उसी दान को सर्वकामिक उत्तम दान समझना चाहिए।

दीनान्धकृपणानाथ बालवृद्धकृशातुराः ॥ 64 ॥
एतेनुकमप्याः सततं नार्थं गृह्णीत निस्पृहः।

दीनों, अन्धों, कृपणों, अनाथों, बालकों, वृद्धों, कमजोर लोगों और आतुरजनों— इतने जनों पर सतत अनुकम्पा करके दान करना चाहिए, उनसे कोई धनापेक्षा नहीं करनी चाहिए।

अर्हत्यज्ञानिनः पात्रमस्पृहत्वान्न तेर्थिनः ॥ 65 ॥
अल्पिका विहिता पूजा पर्याप्तं कर्मिणः फलम्।
नहि स्वार्थं समुद्दिश्य पुत्रं हन्ति हि साधवः ॥ 66 ॥

अर्हत और ज्ञानी पात्र के प्रति अस्पृहत्व और अनर्थित भाव से दान करना चाहिए। इस प्रकार अल्पविहित पूजा भी पूजक को पर्याप्त फल देती है। इसमें स्वार्थ का उद्देश्य नहीं रखना चाहिए क्योंकि इससे सज्जन पुत्र का हनन होता है।

दातुरेवोपरकाराय गृह्णन्ति मुनयोमनात्।
दरिद्रः साधुभिर्यत्नात् प्रार्थनीयानुकम्पया ॥ 67 ॥
आदानादन्य दारिद्र्य दानादैश्वर्यमाप्नुयात्।
दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थितदस्य मे ॥ 68 ॥

ऐसा दाता परोपकार के लिए मुनियों का सत्कार करता है। दरिद्र साधु को भी यत्नपूर्वक अनुकम्पा करते हुए प्रार्थना करनी चाहिए। अन्य दरिद्रों को दान देने से भी दान का ऐश्वर्य सिद्ध होता है। ऐसा दाता केवल उपकार के लिए प्राप्तकर्ता को कहता है।

यस्माद्दाता व्रजेदूर्ध्वमयन्तिष्ठेत् प्रतिग्रही।
देहीत्येवं ब्रुवत्यर्थी जनं बाधयतीव न सः ॥ 69 ॥

वह दाता ऊर्ध्वलोक को जाता है जब ग्रहणकर्ता श्रेष्ठ हो और यह कहता हो कि मुझे दे ही दीजिएगा। ऐसे में वह जन का दाता ऊर्ध्वलोक में जाने से बाधक नहीं बनता।

यदिदं कष्टमर्थित्वं प्रागदानफलं महत्।
बोधयन्ति न याचन्ते देहीति कृपणाजनाः ॥ 70 ॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS MOE

इस प्रकार के याचक के कष्ट को दूर करने हेतु पहले दान का महान फल होता है। इस बात को कृपण लोग नहीं समझ सकते जो माँगने वाले को 'मुझे दे ही दीजिए' कहने पर भी नहीं देते हैं।

अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि।
कल्याणमित्रमायान्तमर्थिनं को न पूजयेत्॥ 71॥

कभी ब्राह्मण को अदान करने की अवस्था नहीं होने दें। कल्याण के लिए मित्र बनकर आए हुए याचक को कौन नहीं पूजता है!

दानात्स्वर्गमवाप्नोति कोन्यो बन्धोरिवार्थिनः।
इहमन्त्रफलैः सोऽपि दातारमनुयो व्रजेत्॥ 72॥

दान करने से तो स्वर्ग प्राप्त होता है। इसलिए ऐसे याचक जैसा बन्धु कौन हो सकता है। यहाँ मन्त्रफल से दाता को इसी तरह वहाँ ले जाता है।

दाताग्रहिताश्च व्यवहारमाह —

अत्याग्रहं दातुः कस्तं न हि प्रतिपूजयेत्।
नार्थिनः स्युः कथं पूजा याचमाना दिने दिने॥ 73॥

अति आग्रह के होने पर दाता कैसे उसकी पूजा नहीं करें और याचकों की भी कैसे दिन-दिन पूजा नहीं करें अर्थात् यह स्वाभाविक है।

ये बलादस्य निश्चितं योजयन्ति नरं श्रिया।
अहन्तहनिर्मार्जन्तं को स नमन्येद्गुरुं यथा॥ 74॥

जो अपने बल से दानदाता को निश्चित रूप से श्रेय से जोड़ते हैं और दिन-दिन उसका मार्जन करते हैं— ऐसा अन्य कौन है, जैसा कि गुरु होता है।

मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिने दिने।
करमुक्तानकं कृत्वा दानं गृह्णाति यो द्विजः॥ 75॥
दानादूर्ध्वं गतिं तस्य दातुर्दर्शयतीव सः।
एकेन तिष्ठतास्तादन्योन्यं परितिष्ठिता॥ 76॥
दातृयाचकयोर्भेदः कराभ्यामेव नोचितः।

जो व्यक्ति दर्पण का प्रतिदिन मार्जन करता है और अपने खुले हाथों जो द्विज दान ग्रहण करता है, वह उस दान से दाता की ऊर्ध्वगति को देखता है। एक की ऊर्ध्वगति प्रतिष्ठित हो जाने पर अन्त में अन्योन्य की भी परितिष्ठता हो जाती है। दाता और याचक के भेद कराने वाले उचित नहीं है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

दानपात्रविचारमाह —

यः पात्रमर्थिनं दीनं त्यक्त्वा पात्रमुपेक्षति॥ 77॥
स वणिस्थुर्मुक्तत्वानां दाता परमार्थिनः।
यद्यर्थिनोनरा नस्युः दातुर्दम कथं भवेत्॥ 78॥
नत्वर्थिषु भवेद्दानं न च दानेन च तत्फलम्।
यदि लब्ध्वा शठादीना नस्युरप्रियवादिनः॥ 79॥

जो व्यक्ति दान के पात्र, याचक, दीन को छोड़कर पात्र की उपेक्षा करता है, वह मुक्ततत्त्वों का वणिक है और परमार्थिकों का दाता है। जो नर अर्थी-याचक के लिए ऐसे नहीं हो तो दाता का दान कैसे हो सकता है! न तो याचक के अभाव में दान होता है और न ही दान का अपेक्षित फल हो सकता है। यदि धूर्त दीनों को लाभ पहुँचाया जाए अथवा प्रियवादियों को लाभ पहुँचाया जाए तो वह दान नहीं कहा जा सकता है।

क्षात्रं दानं तथा क्षान्त भार्या तेनाधुभिन्नधा।
यदि नामनि देयं स्यात् सम्प्राप्तायार्थिने गृहम्॥ 80॥

क्षात्र के दान और क्षमाशील व भार्या के दान भिन्न विधि वाले हैं। याचक के घर आए होने के बावजूद यदि नाम मात्र के लिए दान दिया जाए (उसकी श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता का विचार करना चाहिए)।

किं वाक्यस्य विनष्टानि प्रियाण्यनुगतानि च।
अभ्युत्थानाभिगमनं स्वागतं चासनं प्रियम्॥ 81॥
पादोदकमनुव्रज्य स्वर्गसोपान सप्तकम्।

इस अवसर पर कैसे वचन कहे जाएँ? यदि प्रिय पात्र आये तो दाता को उठकर सामने जाना चाहिए और स्वागत करते हुए अच्छा आसन देना चाहिए। उसके चरण पखारते हुए अर्घ्य देना चाहिए— ऐसा करने सात स्वर्ग की सीढ़ियाँ चढ़ी जाती है।

वित्तं चित्तानुसारेण कदा कस्या भविष्यति॥ 82॥
ग्रासादर्धमपि ग्रासं दातुं युक्तं सदार्थिने।
दानं प्रियविनिर्मुक्तं नष्टमाहुर्विपश्चितः॥ 83॥
तस्मात्सत्कृत्य दातव्यं नरेण फलमिच्छता।
प्रत्याभ्यासमपि श्रेयः प्रियासु नयुपेशलम्॥ 84॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इस अवसर पर इच्छानुसार वित्त दिए जाने से जैसा चाहिए, वैसा फल होता है। यदि किसी याचक को एक निवाले का आधा भी दिया जाए तो उस दान से प्रिय मुक्त हो जाता है किन्तु (सत्कार के अभाव में) बुद्धिमान उसे नष्ट हुआ कहते हैं। इसलिए जो नर फल की इच्छा रखते हों उनको सत्कार करके दान करना चाहिए। इसका प्रत्याभ्यास भी श्रेयकारी है। प्रियों में यह किसी तरह कम नहीं है।

स तु दानमसत्कार पारुष्यं परुषीकृतम्।
वरं न दत्तमर्थिभ्यः संक्रुद्धे नान्तरात्मना॥ 85॥

जो दान अपमान के साथ दिया जाता है और कठोरता से दिया जाता है, वह परुषीकृत कहा जाता है। उससे अच्छा है कि उसे किसी याचक को नहीं दिया जाए क्योंकि ऐसा करने से उस याचक की अन्तरात्मा क्रुद्ध होती है।

दत्तश्च न च प्रीति स(न) धर्मप्रियवर्जितः।
दानं व्रतादिनियमः यज्ञं ध्यानं हुतं तपः॥ 86॥
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधिनस्तद्वृथा भवेत्।

दान में जिसकी प्रीति नहीं है, वह धर्मप्रिय नहीं हो सकता है। उसके किए गए सभी दान, व्रतादि नियम, यज्ञ, ध्यान, हवन और तप चाहे वे सभी प्रयत्नपूर्वक भी किए गए हों तो भी वे सब क्रोध के द्वारा व्यर्थ हो जाते हैं।

यः श्रद्धया स्थितं दद्यात् प्रतिगृह्णाति वार्थिनः॥ 87॥
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तद्विपर्यये।
उदार्यात्सगतिः कामैश्चनुकम्पा महत्सरा॥ 88॥

अश्रद्धा के वशीभूत होकर दिया गया दान और ऐसा दान लेने वाला याचक दोनों ही स्वर्ग के विपरीत नरक को जाते हैं। क्रुद्ध होने और कामना से ऐसी गति होती है, कृपा की ऐसा नहीं बल्कि महत होती है।

दानोपयोगी स्मरणीयस्थानमाह —

गुणं स लभते पञ्च दातुर्दानं महत्फलम्।
वाराणसी कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्कराणि च॥ 89॥
गङ्गासमुद्रतीरं च नैमिषारण्यमष्टमम्।
श्रीपर्वतं महापुण्यं गोकर्णं वेदपर्वतम्॥ 90॥
इत्यादि कीर्तिता देशाः स्युरसिद्ध निषेविताः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इन पाँच स्थानों पर दान करने से दाता को महान फलों का गुण लाभ होता है— वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर और गंगासागर तीर। इनको मिलाकर आठ महापुण्य प्रदायक क्षेत्र हो जाते हैं जिनमें नैमिषारण्य, श्रीपर्वत, गोकर्ण और वेदपर्वत भी हैं। ये सभी सिद्धगणों से निषेवित देश कहे गए हैं।

सर्वे शिवाश्रमाः पुण्याः सर्वनद्याः सपर्वताः॥ 91॥
शिवायतन संस्थाने यदल्पमपि दीयते॥ 92॥
तदनन्तफलं ज्ञेयं शिवक्षेत्रानुभावितः।

ये सभी शिवाश्रम वाले पुण्यमय हैं। सभी नदियों और और पर्वतीय हैं। यहाँ के शिव मन्दिरों में यदि थोड़ा सा भी दान किया जाए तो वह अनन्त फल देता है, वे क्षेत्र शिव से अनुभावित हैं, ऐसा समझना चाहिए।

तत्र दानकालादीनां —

ग्रहणं चन्द्रसूर्याभ्यामुत्तरायण दक्षिणम्॥ 93॥
विषुवं सव्यतिपातं षडशीतिमुखं तथा।
दिनच्छिद्राणिनाक्रान्ते ज्ञेयं विष्णुपदं तथा॥ 94॥
इति कालाः समाख्याता पुंसां पुण्यविवर्धिताः।

दान के लिए चन्द्र और सूर्य ग्रहण काल, उत्तरायण (मकर संक्रान्ति), दक्षिणायन (कर्क संक्रान्ति), विषुव (मेष और तुला राशि की संक्रान्ति), व्यतिपात (सत्ताईस योगों में अन्यतम योग, श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा में चन्द्र और रविवार में अमावस्या होने से बनने वाला योग) सहित षडशीतिमुख संक्रान्ति, दिनच्छिद्र, आक्रान्त और विष्णुपद संक्रान्ति— ये सभी काल पुरुषों के पुण्यों को बढ़ाने वाले के रूप में प्रसिद्ध है।

भक्तिर्भावः पराप्रीतिः शिवधर्मैकताङ्गता॥ 95॥
प्रतिपत्तिरिति ज्ञेया श्रद्धाहर्याय वञ्चकम्।
श्रद्धा मातेव जननी ज्ञानस्य कृतस्य च॥ 96॥
तस्माच्छ्रद्धां समुत्पाद्य देयमक्षयमिच्छता।
यद्दानं श्रद्धया पात्रे विधिवत् प्रतिपादितम्।
तदन्तफलं ज्ञेयमपि बालाग्र मात्रकम्॥ 97॥

अतएव भक्तिभाव और पराप्रीति से शिवधर्म से एकाङ्गता स्थापित करें। इसको श्रद्धा और अवंचकता के साथ समझें। श्रद्धा ज्ञान के कृत्य की माता की तरह हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इसलिए श्रद्धा बढ़ाकर अक्षय की इच्छा से दान करना चाहिए। जो दान श्रद्धा से किसी पात्र को विधिवत किया जाता है, उसको अनन्त फल देने वाला समझना चाहिए। चाहे वह बाल की नोक के बराबर ही सूक्ष्म क्यों न हो।

तीर्थेषु दीनेषु गुणान्वितेषु यच्छ्रद्धया स्वल्पमपि प्रदत्तम्।
तत्सर्वकामान् समुपैति लोके श्रद्धेव दानं प्रवदन्ति तज्ञाः ॥ 98 ॥

तीर्थभूमि में स्थित होकर दीनों में और गुणान्वितों में जो कुछ श्रद्धा से थोड़ा भी दान किया जाता है, वह सभी कामनाओं को पूरी करता है और जानकार लोगों द्वारा ऐसा दान इस लोक में श्रद्धापूर्वक दिया गया कहा जाता है।

श्रद्धा प्रधानं विज्ञेयं सत्पात्राणि चतुष्टयम्।
श्रद्धा ते कीर्तिता तस्मान्नाश्रद्धातः फलं लभेत् ॥ 99 ॥

श्रद्धा सद्पात्र चतुष्टय में प्रधान कही गई है। श्रद्धा से कीर्ति बढ़ती है। इसलिए अश्रद्धा का कोई फल लाभ नहीं होता है।

इति शिवधर्मोत्तरे सत्पात्र गुणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ 4 ॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तरपुराण में सत्पात्र गुण नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ।

*****

अथ शिवसङ्गत्य पञ्चमोऽध्यायः ॥ 5 ॥

अथ स्कन्दोवाच —

अथ धर्माः शिवेनोक्ता शिवधर्मागमोत्तमे।
ज्ञेया बहुविधास्ते च कर्मयोग प्रभेदते ॥ 1 ॥

स्कन्द बोले — अब भगवान् शिव के कहे गए शिवधर्म विषयक उत्तम आगमों में प्रतिपादित धर्म और बहुविध कर्मयोग के भेदों को जानना चाहिए।

हंसा दोषविनिर्मुक्ताः क्लेशाध्यान विवर्जिताः।
सर्वभूतहिताः शुद्धाः सुसूक्ष्माः सुमहत्फलाः ॥ 2 ॥

'हंस' दोष रहित हैं और किसी प्रकार के क्लेशादि से भी रहित हैं। सर्वभूत मात्र के हितकारी हैं, शुद्ध हैं, अतिसूक्ष्म हैं और महान् फल देने वाले हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अनन्तशाखा कविताः शिवमूलैकसंश्रिताः।
सर्वे सर्वगुणोपेताः शिवधर्माः सनातनाः॥ 3॥

कवियों-ज्ञानियों की अनेक शाखाएँ अनन्त रूप से भगवान् शिव के मूल में संस्थित हैं। ये सभी समस्त प्रकार के गुणों से युक्त हैं और ऐसे शिवधर्म में सनातन काल से चली आ रही हैं।

याजयन्ति शिवं यस्मात् ध्यायन्ते शिवभावितैः।
शिवधर्माः स्मृतास्तस्मात् संसारार्णव तारणाः॥ 4॥

जिनसे शिव का यजन हो और शिवभाव से ध्यान सम्पादन होता हो, उनको शिवधर्मा कहा जाता है, वे संसारार्णव अर्थात् भवसागर से तारने वाले होते हैं।

दशविधधर्मलक्षणमाह —

अहिंसा दया सत्यं ह्रिं श्रद्धेन्द्रियनिग्रहः।
दानमिज्याजपो ध्यानं दशकं धर्मलक्षणम्॥ 5॥

1. अहिंसा, 2. दया, 3. सत्य, 4. लज्जा, 5. श्रद्धा, 6. इन्द्रियों का निग्रह, 7. दान, 8. यजन, 9. जप और 10. ध्यान— ये दस धर्म के लक्षण हैं।

अथव्यस्तैः समस्तैर्वा शिवधर्मैरनुष्ठितैः।
शिवेकस्थान सम्प्राप्तिः गतिरेकैव कीर्तिता॥ 6॥

इन समस्त धर्मों में लगे रहकर और शिवधर्म में अनुष्ठित होने से भगवान् शिव के धाम की प्राप्ति होती है। यह एक ही गति कही गई है।

यथा भूस्सर्वभूतानां स्थानं साधारणं स्मृतम्।
तथा तच्छिवभक्तानां भोगान्नातिशयाः स्मृताः॥ 7॥

जिस प्रकार यह भूमि समस्त प्राणियों के लिए साधारण स्थान है, उसी प्रकार शिवभक्तों के भोग और अन्न की अतिशयता-बहुलता कही गई है।

नानापुण्य विशेषेण भोगाः शिवपुरे (त)था।
शुभाशुभफलं चात्र भुञ्जन्ते सर्वदेहिनः॥ 8॥
शिवधर्मस्य चैकस्य फलं तत्रोपभुज्यते।
यस्य यावद्भवेत् पुण्यं श्रद्धापात्र विशेषतः॥ 9॥

विविध प्रकार के विशेष पुण्यफलों को शिवलोक में भोगकर जो शुभाशुभ फल यहाँ पर सभी प्रकार की देहों में रहकर भोगते हैं, वे वहाँ पर शिवधर्म का मात्र

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

एक ही फल भोगते हैं। श्रद्धा और पात्रानुसार जिसका जितना पुण्यफल का अर्जन होता है, तद्नुसार ही लब्ध होता है।

भोगान्तादृग्विधां तत्र ज्ञेयाः सातिशयास्तथा।
स्थानप्राप्तिपरातुल्या भोगाः सातिशया स्थिताः॥ 10॥

वहाँ पर भोगों के अन्त में अतिशय विधियाँ देखने में आती हैं जो परम स्थान प्राप्ति के बराबर होती हैं और वे अतिशय भोगों में विद्यमान होती हैं।

कुर्यात् पुण्यं महत्तस्मान्महापुण्य जिगीषया।
सर्वाधिपत्यमेकैकं तत्र नास्ति पुरोत्तमे॥ 11॥
आत्मभोगाधिपत्यं स्याच्छिवः सर्वजगत्पतिः।

इसलिए महान् पुण्य करके महत्तम पुण्य को जीत लेने की इच्छा से एक-एक का सर्वाधिपत्य उस उत्तम पुर में नहीं होता है बल्कि अपने ही भोग का आधिपत्य होता है क्योंकि शिव ही सारे जगत के अधिपति हैं।

केचित्तत्रैव मुच्यते ज्ञानयोगरता नराः॥ 12॥
अवर्तन्ते पुनश्चान्ये संसारे भोगतत्पराः।
तस्मात्परोक्षमन्विच्छन् भोगान्सक्तिं विवर्जयेत्॥ 13॥

कोई-कोई ज्ञान में निरत हुए पुरुष यहाँ भी मुक्त हो जाते हैं और अन्य प्रकार के लोग पुनः इस संसार में जन्म लेकर भोगों में तत्पर हो जाते हैं। इसलिए जो परोक्ष की इच्छा रखने वाले हैं, उन्हें भोगों में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

नानाक्रमेण रुद्रार्चनफलमाह —

विरक्तः शान्तचित्तात्मा शिवज्ञानमवाप्नुयात्।
ये चान्ये सक्त हृदया यजन्ती सप्रसङ्गतः॥ 14॥

ऐसे विरक्त शान्तचित्तात्मा शिवज्ञान को प्राप्त करते हैं और जो अन्य आसक्त हृदय वाले हैं, वे तो भगवान् शिव का केवल प्रसंगानुसार ही यजन करते हैं।

तेषामपि ददातीशस्थानमात्मानुरूपतः।
तन्नार्चयन्ति ये रुद्रं सकृदुच्छिद्दिष्ट कल्मषम्॥ 15॥
तेषां पिशाचलोकेषु भोगान् स प्रयच्छिति।

उनको भी अपने ध्येय के अनुरूप स्थान भगवान् शिव प्रदान करते हैं और जो भगवान् रुद्र का अर्चन-पूजन नहीं करते हैं, वे शीघ्र ही पाप के फलोद्देश्य को पाते हैं। उनको वे पिशाचलोक में भोग देते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

द्विषदयन्ति ये रुद्रं क्रूराः संक्रुद्धलोचनाः॥ 16॥
रक्षोलोके शिवस्तेषां महीभोगान् प्रयच्छति।

जो रुद्र से द्वेष रखते हैं और क्रूर एवं क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखते हैं, उनको भगवान् शिव राक्षसों के लोक में बड़े भोगों को दिलाते हैं।

त्रिरर्चयन्ति ये रुद्रं मद्यमांसातुरा नराः॥ 17॥
यक्षोलोके शिवस्तेषां भोगान् दिव्यान् प्रयच्छति।

जो रुद्रदेव का तीन बार अर्चन करते हैं और मद्य-माँस में अनुरक्त रहने वाले लोग हैं, भगवान् शिव उनको यक्षलोक में दिव्य भोग दिलाते हैं।

येन तु सङ्गीतं कुर्वन्ति त्रिचतुर्वा यदृच्छया॥ 18॥
शिवाग्रतस्तं ते यान्ति गान्धर्वभुवनं नराः।

जो भगवान् शिव के आगे तीन-चार बार अपनी इच्छानुसार संगीत के आयोजन करते हैं, वे लोग गन्धर्वलोक को जाते हैं।

लोकाख्यातिं समुद्दिश्य पञ्चार्चयति यः शिवम्॥ 19॥
त रुद्रभवने रुद्रः कामान्दिव्यान् प्रयच्छति।

जो लोग लोक में ख्याति प्राप्त करने के लिए भगवान् शिव की पाँच बार अर्चना करते हैं, रुद्रदेव उनकी सभी कामनाओं को अपने रुद्रभवन में पूरी करते हैं।

कामासक्तेन चित्तेन षडर्चयति यः शिवम्॥ 20॥
सोमलोके शिवस्तस्य कामान् दिव्यान् यच्छति।

जो लोग केवल कामना के आसक्त होकर अपने चित्त से शिव का छह बार अर्चन-पूजन करते हैं, भगवान् शिव उनकी सोमलोक में दिव्य कामनाएँ पूरी करते हैं।

सप्तार्चयन्ति ये रुद्रं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥ 21॥
प्राजापत्ये शिवस्तस्य लोके भोगान् प्रयच्छति।

जो लोग गन्ध-पुष्पादि के क्रम से सात बार शिव का पूजन-अर्चन करते हैं, भगवान् शिव उनको प्रजापति के लोक में भोग प्रदान करते हैं।

अष्टार्चयन्ति गायत्र्या शिवं ये वेदतत्पराः॥ 22॥
सद्भावतः शिवस्तेषां ब्रह्मलोकं प्रयच्छति।

जो वेदतत्पर श्रद्धालु गायत्री मन्त्र से शिव की अर्चना करते हैं, उनको भगवान् शिव सद्भावपूर्वक ब्रह्मलोक प्रदान करते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ये वार्चयन्ति ये रुद्रमेकत्वं समुपाश्रिताः॥ 23॥
ते यान्ति विष्णुभवनं दिव्यैर्भोगैः समन्विताः।

जो एकत्वभाव में आश्रित होकर रुद्र की उपासना करते हैं, वे दिव्यभोगों से समन्वित विष्णुलोक को जाते हैं।

विष्णुपुरादूर्ध्वं शिवपुरवर्णनम् —

ज्ञेयं विष्णुपुरादूर्ध्वं दिव्यं शिवपुरं महत्॥ 24॥
तद्भोगस्थानमतुलं कर्मयोग रतात्मान्।
अप्रमेयगुणैर्दिव्यैः विमानैः सार्वगामिकैः॥ 25॥
असङ्ख्यैस्तत्पुरव्याप्तं सर्वप्राण्युपकारकैः।
सहस्त्रभौमविस्तीर्णैः सूर्यकोटि समप्रभैः॥ 26॥
रुद्रलोकमिव प्रोक्तमशेषगुणसंयुतम्।
सर्वेषां शिवभक्तानां तत्पुरं परिकीर्तितम्॥ 27॥

उक्त विष्णुलोक के ऊपर दिव्य और महान् शिवपुर है, यह जानना चाहिए। वह अतुलनीय भोगों का स्थान है और कर्मयोग में लगे रहने वालों के लिए विहित है। वहाँ असीमित गुण-क्षमताओं वाले दिव्य विमान हैं जो सर्वत्र गमन करने में समर्थ हैं। वे सभी प्राणियों के लिए उपकार करने वाले हैं और असंख्य रूप से व्याप्त हैं। वह स्थान हजारों तलों में विस्तार लिए और करोड़ों सूर्यों की प्रभा लिए है। इस तरह का रुद्रलोक अशेष गुणों से युक्त है— ऐसी सभी शिवभक्तों ने उस पुर की कीर्ति गायी है।

रुद्रक्षेत्रे मृतानां च जङ्गमस्थावरात्मनाम्।
अप्येकदेव सभक्त्या यः पूजयति शङ्करम्॥ 28॥
सोऽपि याति परं स्थानं (रुद्रपूजनऽ)र्चनात्।

रुद्रक्षेत्र में मरने वाले और जंगम स्थानों में कर भी अपने को भक्ति में लगाकर जो एक बार शिव की पूजा करते हैं, वे भी उस रुद्रपूजा-अर्चना के फलस्वरूप परमधाम को प्राप्त होते हैं।

तस्मादीशे सदाभक्तिं भावयेदात्मनात्मनि॥ 29॥
तस्मादात्मविचारेण भवदोष विरागतः।
एवं शिवानुभावेन निकृष्टेनापि कर्मणी॥ 30॥
नरैः स्थानान्यवाप्यन्ते कर्मभावानुरूपतः।
इत्ये तत्परमं प्रोक्तं श्रीमच्छिवपुरं महत्॥ 31॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

देहीनां कर्मनिष्ठानां पुनरावर्तनं स्मृतम्।

इसलिए सदैव भक्ति करते हुए शिव में अपनी भावना रखें, आत्म विचार करें और संसारलोक के दोषों को जानकर वैराग्य रखें। शिव के अनुभाव में रहते हुए निकृष्टकर्म करने वाला व्यक्ति भी अपने कर्मभाव के अनुसार अनन्य स्थान प्राप्त कर सकता है। इसलिए श्रीमान् शिव के लोक को परम कहा गया है। जो कर्मनिष्ठ देहधारी होते हैं, उनका कभी पुनरावर्त्तन (संसार में आना) नहीं जानना चाहिए।

ऊर्ध्वं शिवपुराज्ञेयं स्थानात्त्रयमनुत्तमम्॥ 32॥
नित्यं परं विशुद्धं च स्कन्दोमाशङ्करात्मकम्।

शिवलोक से भी ऊपर की ओर तीन उत्तम स्थान जानने चाहिए जो नित्य और परमशुद्ध है और वहाँ पर स्कन्द, उमादेवी और स्वयं शंकर विराजमान हैं।

स्कन्दस्वरूपवर्णनम् —

स्कन्दं शक्तिधरं शान्तं षण्मुखं शिखिवाहनम्॥ 33॥
तप्तचामीकरप्रख्यं त्रिशिखं बालरूपिणम्।
प्रभाभिर्भासितं देवं सर्वलोकानुकम्पकम्॥ 34॥
ध्यायेन्सदा प्रसन्नात्मा गुहस्थानमवाप्नुयात्।

वहाँ पर शिवकुमार षण्मुख कार्तिकेय अपने हाथ में शक्ति (भाला) लिए हुए शान्तभाव में मोर पर आरूढ़ हैं। वे तप्त सूर्य के समान, तीन शिखाओं सहित बालरूप में अपनी आभा लिए हैं, ऐसे स्कन्ददेव सभी लोकों पर अनुकम्पा करने वाले हैं। ऐसे स्कन्द का जो प्रसन्नात्म ध्यान करते हैं, वे गुहस्थान (कार्तिकेय के लोक) को प्राप्त होते हैं।

उमास्वरूपवर्णनम् —

कन्यारूपामुमां शान्तां सूर्यकोटि समप्रभाम्॥ 35॥
ध्यायमानः सदा भक्त्या देव्यास्थानमवाप्नुयात्।

वहीं पर कन्या के रूप में उमादेवी हैं जो शान्ताकार और करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान हैं। उनका सदा भक्तिपूर्वक ध्यान करने वाला देवी के लोक को प्राप्त होता है।

शिवस्वरूपवर्णनम् —

शुद्धस्फटिकसङ्काशं जटामुकुट शोभितम्॥ 36॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

त्र्यक्षं चतुर्भुजं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
वरदाभयहस्तं च त्रिशूलासक्त पाणिनम्॥ 37॥
ध्यायमानः शिवं नित्यं तत्सायुज्यमाप्नुयात्।

वहाँ पर विराजित शिव शुद्ध स्फटिक के समान गौरवर्ण हैं। वे जटाओं के मुकुट से सुशोभित हैं। तीन आँखों वाले शान्त स्वरूप भगवान् हर चार हाथों वाले हैं। हाथों में वह क्रमशः अक्षमाला, वरद और अभयमुद्रा सहित त्रिशूल धारण करते हैं। ऐसे शिव का जो नित्य ध्यान करते हैं, वे भगवान् शिव का सायुज्य प्राप्त करते हैं।

ज्ञानयोगसिद्धस्थितिमाह —

ये सम्प्राप्ताः परं स्थानं ज्ञानयोगरता नराः॥ 38॥
न तेषां पुनरावृत्तिः घोर संसारसागरे।
सर्वज्ञाः सर्वगाः शुद्धा परिपूर्णा महेश्वराः॥ 39॥
शिवतुल्य बलोपेताः परं शिवपुरं गताः।

जो ज्ञानयोग की साधना में लगे हुए रहते हैं, वे परमस्थान को प्राप्त करते हैं। वे पुनः इस घोर संसार सागर में पुनः नहीं आते हैं। वे माहेश्वर सर्वज्ञ हो जाते हैं, सर्वत्र आ-जा सकते हैं। वे शुद्ध होते हैं और परिपूर्ण होते हैं। वे शिव के समान ही बल के धारक होते हैं अन्ततः परम शिवपुर को जाते हैं।

इत्यमनन्तर योगवर्णनम् —

योगं प्रबोधयिष्यामि पृथगध्याय(सं)स्थितम्॥ 40॥
उपरिष्टाच्च लोकानां स्वरूपं चाप्यनुक्रमात्।
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं पार्थिवं पिशिताशिनाम्॥ 41॥

अब मैं पृथक् ध्यान में स्थित होकर योग के बारे में समझाता हूँ। ऊपर इष्ट लोकों के स्वरूप को भी अनुक्रम से कहता हूँ। वहाँ पर मांसाहारी राजाओं से आठ गुणा ऐश्वर्य सुलभ हैं।

तत्सायुज्यगतानां च नराणां तत्समं स्मृतम्।
राक्षसं षोडशगुणं पार्थिवं चापि तद्विधा॥ 42॥

उनसे सायुज्य प्राप्त किए हुए लोगों को भी उनके ही समान कहा गया है। सोलह गुणा राक्षस राजाओं को भी उनके ही समान समझें।

एता नरविशेषं हि यक्षेष्वन्यस्य तैजसम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

गन्धर्वाणां च वायव्यं यक्षाणां सकलं स्मृतम्॥ 43॥

इतने विशेष लोग ही यक्षों में अन्य के तेज वाले हैं। गन्धर्वों और वायवीय देव योनियों में सभी को यक्ष के समान समझना चाहिए।

पाञ्चभौतिकमिन्द्रस्य चत्वारिंशद्गुणं महत्।
सोमपानरसं दिव्यं यच्चादं पाञ्चभौतिकम्॥ 44॥

पाँच भौतिक इन्द्र के भी चालीस महागुण कहे गए हैं। सोमपान जैसे जो दिव्य रस हैं, वे पाँच भौतिक हैं।

सौम्यात् प्रजापतिं नाम अहङ्कारगुणाधिकम्।
चतुषष्टिगुणं ब्राह्मय साध्यमैश्वर्यमुत्तमम्॥ 45॥
विष्णोः प्रदानि(ज्ञान) सूक्ष्ममैश्वरं ब्रह्मणः परम्।

सौम्य से ही प्रजापति नामक अहंकार अधिक गुण वाला है। इससे भी चौंसठ गुणा उत्तम ब्राह्म साध्य ऐश्वर्य है। विष्णु ने ईश्वर को ब्रह्मा से भी परम सूक्ष्म ज्ञान प्रदान किया है।

शिवपुरस्यैश्वर्यमाह —

श्रीमच्छिवपुरं दिव्यमैश्वरं सर्वकामिकम्॥ 46॥
अनन्तगुणमैश्वर्यं शिवस्यात्मगतं महत्।
आदिमध्यान्तरहितं विशुद्धं तत्त्व लक्षणम्॥ 47॥

श्रीमत् शिवपुर के स्वामी दिव्य हैं और समस्त कामनाओं को पूरी करने वाले हैं। शिव का आत्मगत महत ऐश्वर्य अनन्त गुणा हैं। वह आदि, मध्य और अन्त रहित और विशुद्ध तत्त्व जैसे लक्षण लिए हैं।

सर्वाभिभावकं सूक्ष्ममनौपम्यमनामयम्।
सुसम्पूर्णं जगद्धे तु पशुपाश विलक्षणम्॥ 48॥

वह समस्त प्राणियों के अभिभावक या सर्वभाव रखने वाले, सूक्ष्म, अनौपम्य और अनामय है तथा जगत के हित के लिए सम्पूर्णता वाले हैं। उनके पशुपाश विलक्षण कहे गए हैं।

एतत्स्थानमनुप्रोक्तं तस्य भोगास्तदात्मकाः।
ऐश्वर्यं तत्समानं च भवेदीश प्रसादतः॥ 49॥

उक्त स्थान पर उस ईश्वर के जैसे ही भोगों को भी कहा गया है। उसके समान ही वहाँ के ऐश्वर्य हैं— ये ईश्वर की कृपा से ही होते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तारारूपा विमानानां दृश्यन्ते सप्तकोटयः।
अष्टाविंशति[28]रेवोर्ध्वं सन्दीप्ताः सुकृतात्मनाम्॥ 50॥

आकाश में सात करोड़ की गणना में तारा रूप में विमान दिखाई देते हैं। इनके ऊपर अट्ठाईस करोड़ सुकृतात्माओं की दीप्तिमय स्थिति हैं।

ये कुर्वन्ति नमस्कारमीश्वराय क्वचित्क्वचित्।
सम्पर्कात् कौतुकाल्लोभात्तद्विमानं वहन्ति ते॥ 51॥

जो ईश्वर को यदा-कदा नमस्कार करते हैं, वे इधर-उधर सम्पर्क के कौतुक करने के लोभ विमानों को चलाते हैं।

नाम सङ्कीर्तन वापि प्रसङ्गेन शिवस्य च।
कुर्याद्वा तं नमस्कारं न तस्य विफलं भवेत्॥ 52॥

भगवान् शिव के नाम का संकीर्तन करने अथवा शिव प्रसंग का गान या फिर नमस्कार करने का पुण्य कभी विफल नहीं होता है।

इत्येवं गतयः प्रोक्ता महत्यः शिवकर्मणाम्।
अत्यल्पाल्पतरेणाऽपि पुंसामाशानुभावतः॥ 53॥

शिवकर्मियों की महत गतियों को इतना कहा गया है। इनके अत्यल्प और अल्पतर भी पुरुष की आशा अनुभावित होती है।

इति शिवधर्मोत्तरे शिवसङ्गत्यः पञ्चमोऽध्यायः॥ 5॥

इति श्रीशिवधर्मोत्तरपुराण में शिव संगत्य नामक पंचम अध्याय पूरा हुआ।

*****

अथ पापभेदं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ 6॥

अथाधः पतनात् पुंसामधर्मः परिकीर्तितः।
नरकाब्धौ महाघोरे पतनात्पापमुच्यते॥ 1॥

अब अधःपतन के कारणभूत पुरुषों के अधर्मों को कहा जाता है, जिनको ध्यान में रखकर व्यक्ति महाघोर नरकसमुद्र में गिरने के दोष मुक्ति पा सकता है।

अधर्मभेदा विज्ञेयाश्चित्तवृत्ति प्रभेदतः।
स्थूलसूक्ष्मा सुसूक्ष्माश्च कोटिभेदैरनेकधा॥ 2॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

चित्तवृत्ति के प्रभेद से अधर्म के भी कई भेद हैं, जो स्थूल, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म रूप में करोड़ों भेद वाले और अनेक प्रकार के हैं।

तत्र ते पापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः।
ते समासेन कथ्यन्ते पापः मनःकायसाधनम्॥ 3॥

यह जानना चाहिए कि वहाँ वे पापों के संग्रह स्थूल हुए नरक के हेतु होते हैं। उन पापों को संक्षिप्त रूप से यहाँ कहा जा रहा है, वे सारे ही मन और काया के साधन हो सकते हैं।

मानसिकवाचिककायिककर्मञ्च —

परस्त्रीद्रव्यसङ्कल्पश्चेतसाऽनिष्ट चिन्तनम्।
अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्धा कर्म मानसम्॥ 4॥

मन से 1. परायी स्त्री, 2. पराये धन को लेने की इच्छा करना, 3. दूसरा का अनिष्ट विचार करना और 4. नीच कार्यों के प्रति झुकाव होना— ये चार मानसिक पापकर्म होते हैं।

अविबद्धप्रलापत्वमसत्यं चाप्रियं च यत्।
परोक्षतश्च पैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम्॥ 5॥

इसी प्रकार 1. असंगत प्रलाप करना, 2. असत्य बोलना, 3. अप्रिय वचन कहना और 4. पीठ पीछे चुगली करना— ये चार वाचिक पापकर्म हैं।

अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्याकार्य्यनिवेशनम्।
परस्वानामुपादानं चतुर्धा कर्म कायिकम्॥ 6॥

इसी क्रम में 1. न खाने योग्य वस्तु का आहार करना, 2. हिंसा करना, 3. अनुचित कार्य के प्रति आग्रह और 4. दूसरे के धन का हरण करना— ये चार शारीरिक पापकर्म हैं।

इत्येतद्द्वादशविधं कर्म प्रोक्तं त्रिसाधनम्।[1]
अस्य भेदान्पुनर्वक्ष्ये येषां फलमनन्तकम्॥ 7॥

इस प्रकार ये मानसिक, वाचिक और शारीरिक बारह प्रकार के कर्म कहे गए हैं। पुनः इनके भेदों को कहता हूँ जिनके अनन्त फल बताए गए हैं।

ये द्विषन्ति महादेवं संसारार्णवतारकम्।

---

1. 'इत्येतद् त्रिविधं प्रोक्तं कर्म त्रिसाधनम्' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सुमहत्पातकोपेतास्ते यान्ति नरकान्तिकम्॥ 8॥

जो कोई संसार-सागर से तारने वाले महादेव के प्रति वैर-वैमनस्य रखते हैं, वे अन्त में नरक में जाने वाले होते हैं और उनको महापाप लगता है।

दूषयन्तः शिवज्ञानं ये सर्वार्थ प्रसाधनम्।
सुमहत्पातकं तेषां निरयार्णवगामिनाम्॥ 9॥

जो सबके प्रसाधन करने वाले इस शिवज्ञान को दूषित करते हैं, उनका यह कर्म महान पाप हैं जो नरक के सागर में ले जाने का उपाय होता है।

ये शिवज्ञानवक्तारं निन्दन्ति च गुरुं नराः।
गुरून् पितृनथोन्मत्तांस्ते[2] यान्ति निरयार्णवम्॥ 10॥

जो लोग शिवज्ञान का व्याख्यान करने वालों और गुरु की निन्दा करते हैं तथा गुरु ही नहीं, माता-पिता के प्रति अनुचित कहते हैं, वे उन्मत्त लोग नरकगामी होते हैं।

षट्महापापानि —

शिवनिन्दा गुरोर्निन्दा शिवज्ञानस्य दूषणम्।
देवद्रव्यापहारिणं गुरुद्रव्य[3]विनाशनम्॥ 11॥
हरन्ति ये च सम्मूढाः शिवज्ञानस्य पुस्तकम्।
सुमहत्पातकोपेताऽनन्तानिफलदानि षट्॥ 12॥

1. शिव की निन्दा करना, 2. अपने गुरु की निन्दा, 3. शिवज्ञान को दूषित करना, 4. देवताओं के द्रव्य का अपहरण करना, 5. गुरु की सम्पदा को विनष्ट करना और 5. मूढ़मति होकर शिवज्ञान की पुस्तक को चुराना— ये छह पाप बहुत बड़े बताए गए हैं और ये पापियों को अनन्तकाल तक परिणाम देते हैं।

नाभिनन्दन्ति ये दृष्ट्वा शिवपूजां प्रकल्पिताम्।
न नमन्त्यर्चितं दृष्ट्वा पूजितं न स्तुवन्ति च॥ 13॥

(वे मतिमूढ़ हैं) जो शिव की पूजा देखकर प्रसन्न नहीं होते हैं, न उस पूजा को देखकर अर्चना करते हैं और न ही स्तुति करते हैं।

यथेष्टचेष्टा निःशङ्काः सन्तिष्ठन्ति रमन्ति च।
उपचारविनिर्मुक्ताः शिवाग्रे गुरुसन्निधौ॥ 14॥

---

2. 'सुमहत् पातकोपेस्तास्ते' इति पाठः।
3. 'विप्रद्रव्य' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जो निःशंक होकर अपनी पूर्ववत् चेष्टाएँ करते रहते हैं और उनका ही आनन्द उठाया करते हैं तथा शिव के आगे तथा गुरु की सेवा में उपचार से विनिर्मुक्त रहते हैं (उनकी वे कियाएँ अनुचित होती हैं)।

स्थानसंस्कार पुण्यञ्च ये न कुर्वन्ति [4]पर्वसु।
शिवविद्यागुरूणां च कर्मयोगेप्यवस्थिताः॥ 15॥
ये त्यजन्ति शिवाचारं शिवभक्तान्द्विषन्ति च।
शिवनिन्दा समाह्येते महान्तः पातकोत्तमाः॥ 16॥

जो व्यक्ति कर्मयोग में स्थित होकर भी पर्व के दिनों (14, 8, 15, 30 एवं संक्रान्ति) में विधिवत स्थान, संस्कार और पवित्रता के साथ शिवविद्या और गुरु की पूजा नहीं करता है, जो शैवाचार को त्याग देता है, शिव के भक्तों से वैर-वैमनस्य रखता है, भगवान् शिव की निन्दा करता है, वह बड़े से बड़ा पापी होता है।

असम्पूज्य शिवज्ञानं येऽधीयते लिखन्ति च।
अन्यायतः प्रयच्छन्ति शृण्वन्त्युच्चारयन्ति च॥ 17॥
विक्रीडन्ति च लोभेन कुज्ञाननियमेन च।
असंस्कृतप्रदेशेषु यथेष्टं स्वापयन्ति च॥ 18॥
शिवज्ञानकथाऽऽक्षेपं यः कृत्वान्यत्प्रभाषते।

इसी प्रकार जो शिवज्ञान की पूजा किए बिना ही ग्रहण करते हों अथवा लिखते हों, न्याय के विपरीत दान करते हों और सुनते या उच्चारित करते हों और लोभ के वशीभूत होकर या नियम विपरीत कथा सुनाने के बहाने से खेला करते हों, अशुद्ध स्थल में जो अपनी इच्छा से इष्ट को सुलाते हों और शिव की कथा में आक्षेप लगाते हों और अन्य किसी बात को लागू करते हों (तो पापाचरण करते हैं)।

साधीयन्ते समर्थः सन् यः प्रमादं करोति च॥ 19॥
अचिन्ताश्चाशुचिस्थाने यः शृणोति प्रवर्ति च[5]।
इति सर्वं समासेन ज्ञाननिन्दा समं स्मृतम्॥ 20॥

जो समर्थ होते हुए भी अध्ययन नहीं करते और प्रमाद करते हों और बिना विचारे ही अपवित्र स्थान में ज्ञान सुनने की प्रवृत्ति रखते हों— ये सभी संक्षेप में ज्ञाननिन्दा करने के समान ही कहे जा सकते हैं।

---

4. विष्णुपुराणे—चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्यमावस्या च पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसङ्क्रान्तिरेव च॥
5. 'अशुचिर्वाऽशुचिस्थाने यः प्रवक्ति शृणोति च' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

गुरुनिन्दासमं पापमाह —

गुरुपूजामकृत्यैव यः शास्त्रं श्रोतुमिच्छति।
न करोति च शूश्रूषामाज्ञां भक्तिं च भावतः॥ 21॥
नाभिनन्दन्ति तद्वाक्यमुत्तरं च प्रयच्छति।
गुरुकर्मण्यसाध्यं च यत्तदुपेक्षां करोति च॥ 22॥
गुरुमार्त्तमशक्तं वा विदेशं प्रस्थितं तथा।
वैरिभिः परिभूतं वा यः सन्त्यजति पापकृत्॥ 23॥
तद्भार्यापुत्रमित्रेषु यश्चावज्ञां करोति च।
इत्येतत्पातकं ज्ञेयं गुरुनिन्दासमं भवेत्॥ 24॥

जो गुरु की पूजा किए बिना ही शिव-शास्त्र को सुनने की इच्छा रखता है, जो भक्ति और भाव से गुरु की न सेवा करता है न ही उनकी आज्ञा को मानता है, जो कथा वाचनकर्ता के वचनों को सुनकर आनन्दित नहीं होता और कुतर्क करता रहता है और यह कहकर उनकी उपेक्षा करता है कि गुरु तो कुछ बता ही नहीं सकता, जो पापी रोगी या असमर्थ या शत्रुओं से घिरे हुए अथवा विदेश गए हुए गुरु का त्याग कर देता है, गुरु की पत्नी, उनके पुत्र और उनके मित्र की अवज्ञा करता है— ये सारे ही पाप गुरुनिन्दा के समान ही होते हैं।

ब्रह्महासंज्ञकमहादोषमाह —

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
महापातकिनत्स्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः॥ 25॥
क्रोधाल्लोभाद्भयाद्द्वेषाद्ब्राह्मणस्य वधे तु यः।
मर्मान्तिकं महादोषं ब्रह्महा स प्रकीर्तितः॥ 26॥

ब्रह्महत्या करने वाला, मद्यपान, चोरी और गुरुपत्नी से सहवास करने वाला— ये चार महापापी के लक्षण हैं और पाँचवाँ ऐसा व्यक्ति जो सहयोगी होता है, वह भी महापापी होता है। क्रोध, लोभ और भय-वैर से ब्राह्मण का वध करने में कोई दोष नहीं है— ऐसा कहने वाला मर्मान्तक महादोषकारी ब्रह्महत्यारा कहा जाता है।

ब्राह्मणं यः समाहूय याचमानमकिञ्चनम्।
निर्दोषं दूषयेद्यस्तु स नरो ब्रह्महा भवेत्[6]॥ 27॥

---

6. 'पश्चात्रास्तीतिथो ब्रूयात् ब्रह्महत्या स च स्मृतम्' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जो विप्र को बुलाकर याचना के विपरीत कम दान करता है और निर्दोष पर दोषारोपण करता है, वह व्यक्ति ब्रह्महत्यारा होता है।

यस्तु विद्याभिमानेन नीचोऽज्ञ इति भाषते[7]।
उदासीनं सभामध्ये ब्रह्महा स प्रकीर्त्तितः॥ 28॥

जो विद्या के अभिमान में चूर रहता है, उसको नीच और अज्ञानी कहा जाता है। ज्ञानी होकर भी जो सभा-समारोह में उदासीन बना रहता है, उसको ब्रह्महत्यारा कहा जाता है।

मिथ्यागुणैः स्वमात्मनं नयत्युत्कर्षणं बलात्।
गुणानपि निरुद्धास्य स च वै ब्रह्महा भवेत्॥ 29॥

जो मिथ्या गुणों से स्वयं को बड़ा सिद्ध करता है और दूसरों के गुणों को बलात से हटा देता है, वह ब्रह्महत्यारा होता है।

क्षुत्तृष्णातप्तदेहानां द्विजानां भोक्तुमिच्छताम्।
यः समाचरते विघ्नं तमाहुः ब्रह्मघातकम्॥ 30॥

जो व्यक्ति भूखे-प्यासे ब्राह्मण को भोजन कराने की इच्छा रखता है, उसके इस आचरण में जो विघ्न उपस्थित करता है, वह भी ब्रह्मघाती कहा गया है।

परदोषमविज्ञाय नृपकर्णे जपेत यः।
पापीयान्पिशुनः [8]क्षुद्रो ब्रह्महत्यपरिचिति स्मृतः॥ 31॥

जो व्यक्ति पराये दोषों को जानकर राजा के कान में भरता है, वह पापी और चुगलखोर छोटा व्यक्ति भी ब्रह्महत्या करने वाला कहा गया है।

पिशुनः सर्वलोकानां रन्ध्रान्वेषण तत्परः।
उद्वेगजनकः क्रूर स च वै ब्रह्मघातकः॥ 32॥

जो व्यक्ति सभी लोगों की चुगली करता है और ठग होकर उनके छिन्द्रान्वेषण में जुटा रहता है और उद्वेग का जनक अर्थात् उपद्रवी और आतंकी होता है, वह भी ब्रह्मघातक होता है।

गवां वृषाभिभूतानां गच्छन्तीनां जलाशयम्।
यः समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥ 33॥

---

7. 'यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सुद्विजम्।' इति मूलपाठः। तुल.— हेमाद्रिकृतेन चतुवर्ग्गचिन्तामणौ, प्रायश्चितखण्डे पृष्ठ 997
8. 'क्रुद्धः स चाऽपि ब्रह्महा स्मृतः' इति प्रायश्चितखण्डपाठ, पृष्ठ 997

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जलाशय के जिस मार्ग पर गायें और बैल आदि प्राणी आते-जाते हों, उस मार्ग में जो अवरोध उत्पन्न करता है, उसको भी ब्रह्मघातक के समान कहा गया है।

देवद्विजगवां भूमिं पूर्व्वदत्तां हरेत यः।
प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम्[9] ॥ 34 ॥

देवता, द्विजों और गायों के लिए पूर्वकाल में प्रदान की गई भूमि के अधिकार को किसी काल में जब्त करता है, वह भी ब्रह्मघातक के समान होता है।

द्विजवित्तापहरणं न्यायेन समुपार्जितम्[10]।
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयं पातकं नात्र संशयः ॥ 35 ॥

न्याय पूर्वक कमाये गए ब्राह्मण के धन का जो अपहरण करता है, वह ब्रह्महत्या के समान पाप करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अधीत्य यो शिवज्ञानं परित्यजतिमूढधीः।
सुरापानसमं ज्ञेयं तत्पातकमुत्तमम् ॥ 36 ॥[11]

जो शिवज्ञान को पढ़कर भी मूढ़ता से उसका त्याग कर देता है, वह सुरापान के समान पाप करता है, उसका यह पाप महापाप कहा गया है।

अग्निहोत्रपरित्यागः पञ्चयज्ञाधिकर्मणाम्।
मातृपितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं सुहृदद्रुधः ॥ 37 ॥
आमिषं शिवभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम्।
वने निरपराधानां प्राणिनां चापघातकम् ॥ 38 ॥
गवां मार्गे वने चाग्निं पुरं ग्रामं प्रदीयते।
इति पापानि घोराणि [12]सुरापानं समानिति ॥ 39 ॥

अग्निहोत्र अथवा यज्ञकर्म और पंचयज्ञ (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ) जैसे कर्मों का त्याग करना, माता-पिता को छोड़ना, झूठी गवाही,

---

9. इत्यमनन्तरे— तथा देवतान्यथाकरणं अपि ब्रह्महत्यासमम्। सुवर्णस्तेय समानि— निक्षेपस्याऽपहरणं नराश्वरजतस्य च। भूमिवस्त्रमणीनाञ्च स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम्। तत्र— स्त्री धेनुहरणं ब्राह्मणक्षेत्रहरणं स्तेयसमम्। इति हेमाद्रिपाठः
प्रायश्चितखण्डपाठ, पृष्ठ 997
10. 'देवद्विजस्वहरणमन्यायेनार्जितं तु यत्' इति पाठः। तुल.— शिव. उमा. 5, 30
11. तुल.— 'अधीत्य यो द्विजो वेदं ब्रह्मज्ञानं शिवात्मकम्। यदि त्यजति यो मूढः सुरापानस्य तत्समम् ॥' शिव. उमा. 5, 31
12. 'ब्रह्महत्यासमानि च' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

मित्र का वध करना, माँसाहार, शिवभक्तों को अभक्ष्य भोजन करवाना, वन में निरपराध प्राणियों को मारना, गायों के चलने के मार्ग में, वनखण्ड में और ग्राम में जो दुष्ट आगजनी करना—ये सब घोरपाप है, ये सुरापान करने जैसे पाप होते हैं।

दीनसर्वस्वहरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम्।
गोभूमिरत्नरौप्याणामोषधीनां रसस्य च॥ 40॥
चन्दनागरुकस्तूरीकर्पूर पट्टवाससाम्।
हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेय समं स्मृतः॥ 41॥

सर्वहारे व्यक्ति का भी सर्वस्व हरण करना, स्त्री, हाथी, घोड़ा, गाय, भूमि, रत्न, चाँदी, औषध, रस, चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कर्पूर, रेशमी परिधान को चुराना और अपने हाथ से रखी हुई धरोहर का हरण करना— ये सभी सोने को चुराने जैसे पाप के समान जानने चाहिए।

कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे।
पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च॥ 42॥
कुमारीसाहसं घोरमन्त्यज निषेवणम्।
सवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम्॥ 43॥
महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु।
तानि पातकं संज्ञानि तदूनान्युपपातकम्॥ 44॥[13]

विवाह के योग्य कन्याओं का सुयोग्य वर से विवाह नहीं करना, पुत्र, मित्र की स्त्री, बहन, कुमारी, घोर अन्त्यज स्त्री के साथ सम्बन्ध और अपने ही वर्ण की स्त्री के साथ गमन करना— गुरुपत्नी के साथ सहवास के समान जानना चाहिए। ये महापाप के समान हैं, इनको पापों के रूप में कहा गया है। ये पापों की संज्ञाएँ हैं, इसके बाद अन्य उपपातकों को जानना चाहिए।

द्विजायार्थं प्रतिज्ञाय न प्रयच्छति यः पुनः।
न च स्मरयते विप्रः तुल्यं तदुपपातकैः॥ 45॥

ब्राह्मण को धन देने का वचन देकर जो मुकर जाता है और बाद में कभी धन नहीं देता तथा उसका स्मरण तक नहीं करना चाहता तो वह उपपातक के समान है।

उपपातकलक्षणम्—

द्विजद्रव्यापहरणमपि दायव्यतिक्रमः।

---

13. इत्येतुलनीय,— शिव. उमा. 5, 2-40

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अतिमानोऽतिकोपश्च दाम्भिकत्वं कृतघ्नता ॥ 46 ॥

(अन्य उपपापों में) किसी भी द्विज की सम्पत्ति का अपहरण करना, दूसरे के न्यायोचित हिस्से का भुगतान नहीं करना, अधिक अभिमान, बहुत कोप, दम्भ और कृतघ्नता परिगणित है।

अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं साधुमत्सरे।
परदाराभिगमनं साधुकन्याभिदूषणम् ॥ 47 ॥

इसी प्रकार विषयों में अत्यधिक आसक्ति रखना, कंजूसी करना, सज्जन-साधुओं से ईर्ष्या- द्वेष रखना, परस्त्रीगमन करना और श्रेष्ठ कन्याओं पर दोषारोपण करना (उपपाप है)।

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याचनम् ॥ 48 ॥
पुत्रमित्रकलत्राणां प्रभवे स्वामिनस्तथा।
कार्याणां च परित्यागः स्वामिबन्धु तपस्विनाम् ॥ 49 ॥
गवां क्षत्रियवैश्यानां स्त्रीशूद्राणां विघातकम्।

जिस व्यवहार से परिवित्ति (ऐसा व्यक्ति जिसका अनुज और अनुजा उससे पहले विवाह कर ले अथवा अग्न्याधान कर लेते हों) और परिवेत्ता (उक्त परिविति का अग्रज या अग्रजा) को समझा जा सके तथा उनको कन्याओं का दान और ऐसों के लिए कन्याओं की कामना करना, पुत्र, मित्र, स्त्रियों के होने वाले स्वामी के कार्यों, स्वामी के बन्धु व तपस्वियों के कामों का त्याग, गायों को, क्षत्रिय, वैश्यों, स्त्री एवं शूद्रों की हत्या करना भी (पाप हैं)।

शिवाश्रमतरूणां च पुष्पारामविनाशनम् ॥ 50 ॥
यः पीडामाश्रमस्थानामाचरेदल्पिकामपि।
सद्भृत्यपरिवारस्य पशुधान्यधनस्य च ॥ 51 ॥

इसी प्रकार शिवाश्रम के वृक्षों को उजाड़ना, पुष्पों के उद्यान का विनाश करना और आश्रम में निवास करने वाले स्थानकों को मामूली भी कष्ट पहुँचाना, सेवकों सहित परिवार, पशुधन, धान्य और सम्पदा को क्षति पहुँचाना (पापकर्म हैं)।

कुप्यधान्यपशुस्तेयमपां व्यापावनं तथा।
यज्ञारामतटाकानां दारापत्यस्य विक्रयः ॥ 52 ॥
तीर्थयात्रोपवासानां व्रतोपनयकर्मिणाम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः॥ 53॥
अरक्षणं च नारीणां मायया स्त्रीनिषेवणम्।
कालागताप्रदानं च धान्यवृष्ट्युपसेवनम्॥ 54॥
निन्दिताच्च धनादानं पण्यानां च विक्रियम्।
विषमारणयन्त्राणां प्रयोगो मूलकर्मणाम्[14]॥ 55॥

ताँबा आदि धातु, धान्य और पशुओं की चोरी करना, जल को दूषित करना, यज्ञमण्डप, उद्यान, जलाशय, स्त्री तथा सन्तान का विक्रय करना, तीर्थाटन पर निकले लोगों व उपवास करने वालों, व्रत, उपनयन कर्म करने वालों को बेचना, स्त्री के धन से अपना जीवन चलाने वाले और जो स्त्रियों से पराजित हो, स्त्रियों की सुरक्षा न करना, छलपूर्वक स्त्रियों के साथ गमन करना, समय पर पहुँचाने वाले को भुगतान नहीं करना, धान्यवृष्टि का सेवन करना, निन्दित जन से धन संग्रह करना और उससे व्यापार-विक्रय करना, विष और मारने वाले यन्त्रों का मुख्यरूप से प्रयोग करना (अनुचित कर्म हैं)।

जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारम्भ सुकर्मसु॥ 56॥
मूलेनाध्यापयेद्यस्तु मूल्येनाधीयते च ये।
वात्यताव्रतसन्त्यागः सर्वाहार निषेवणम्॥ 57॥
असच्छास्त्राभिगमं शुष्कतर्काबलम्बनम्।
देवाग्निगुरुसाध्वीनां निन्दा गोब्राह्मणस्य च॥ 58॥
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलिनामपि।
उत्सन्नपितृदेवेज्या स्वकर्मत्यागिनां तथा॥ 59॥
दुःशीला नास्तिकाः पापाः सदा [15]सच्छून्यवादिनः।

इसी प्रकार जीभ की सन्तुष्टि और काम के उपभोग के उद्देश्य से करणीय कार्य, मूलमात्र का अध्यापन, मूल्य तय करने के बाद भी मूल्य न देना, ठगी, व्रत का त्याग करना, सभी प्रकार के आहार में लगे रहना, मिथ्या शास्त्रों का अध्ययन करना, व्यर्थ तर्क का अवलम्बन लेना, देवता, अग्नि, गुरु, साधु-साध्वियों, गाय, ब्राह्मण की निन्दा, राजा या मण्डलिकों की प्रत्यक्ष या परोक्ष में आलोचना करना, पितृयज्ञ, देवयज्ञ तथा अपने कर्म का त्याग करना, दुराचारी, नास्तिक, पापाचारी और सदा शून्यवादी (बौद्ध जैसा व्यवहार) करने वाले (पापकर्म करने वाले हैं)।

---

14. 'उच्चाटनाभिचारश्च गुरुविद्वेषणक्रिया।' इति पाठ। तुल. शिव. उमा, 6, 9
15. 'वाऽसत्यवादिनः' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पर्वकाले दिवा वाप्सु वियोनौ पशुयोनिषु॥ 60॥
रजस्वलाया योनौ च मैथुनं यः समाचरेत्।
स्त्रीमित्रपुत्रऽसम्प्राप्ता वाशाच्छेदकराश्च ये॥ 61॥
जनस्याप्रियवक्तारः क्रूराः समयभेदिनः।
युक्तास्तदूनकैः क्षुद्रैः पापैः पापनराः स्मृताः॥ 62॥

ऐसे ही जो पर्वकाल (चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावस्या तिथियों एवं संक्रान्ति समय), दिन में, जल में, विकृतयोनि, पशुयोनि अथवा रजस्वला स्त्रियों की योनि में समागम करते हों, जो स्त्री, मित्र, पुत्र के नहीं मिलने पर आशा त्याग देते हों, जो लोगों से अप्रिय बात करते हों, क्रूरहृदय हो और समय पर फूट डालने का व्यवहार करते हो, इन सब ही क्षुद्र पापों के कर्ताओं को पापनर जानना चाहिए।

ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्।
विनाशयन्ति कार्याणि ते नरा नारकाः स्मृताः॥ 63॥

जो गाय, ब्राह्मण, कन्याओं, स्वामी, मित्र और तपस्वियों के विचारे गए कामों को बिगाड़ डालते हों, वे लोग नारकी जानने चाहिए।

मायावीचपलशठस्य लक्षणम् —

परस्त्रियाऽभितप्यन्ते ये परद्रव्यसूचकाः।
परद्रव्यहरा नित्यं तौलमिथ्यानुसारकाः[16]॥ 64॥
दुःखं द्विजानां यः कुर्यात् प्रहरेदूर्ध्वतो हि यः।
सेवन्ते तु द्विजाः शूद्रां सुरां बध्नन्ति कामतः॥ 65॥
ये पापनिरताः क्रूरा येऽपि हिंसाप्रिया नराः।
वृत्यर्थं ये च कुर्वन्ते दानयज्ञादिका क्रियाः॥ 66॥
गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेषु च।
ये त्यजन्ति पुरीषाद्यानारामायतनेषु च॥ 67॥
मद्यपानरतानित्यं गीतवाद्यरता नराः।
केलीशिलाभुजङ्गाश्च छिद्रान्वेषण तत्पराः॥ 68॥
वंशेष्टकालिकाष्ठैः शृङ्गैः शङ्कुभिरेव च।
ये मार्गमनुरुन्धन्ति परसीमां हरन्ति ये॥ 69॥

---

16. 'परद्रव्यपहितव्यन्ते ये परद्रव्यसूचकाः। द्रव्यापहारनिरताः परस्त्री परदूषकाः' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

कूटशासनकर्तारः कूटकर्मरता नराः।
कूटयुद्धाश्च वस्त्राणि कूटसंव्यवहारिणः॥ 70॥
धनुषः शल्यशस्त्राणां कर्ता यः क्रयविक्रयी।
निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च ये॥ 71॥
मिथ्या प्रवदतो वाच आकर्णयति यः शनैः।
स्वामित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठः॥ 72॥

जो पराई स्त्रियों को लेकर दुखी रहा करते हैं, जो पराये धन पर अपनी दृष्टि जमाए रखते हैं, जो पराये धन का हरण करने का उद्योग करते हैं और जो नित्य ही गलत प्रमाण से तौल करते हैं, जो ब्राह्मणों को दुःख पहुँचाते हैं, उनको मारते-पीटते हैं, जो ब्राह्मण की स्त्री अथवा शूद्र की स्त्री का सेवन करते हैं और इच्छापूर्वक मद्य का निर्माण करते हैं, जो पापकर्मों में लगे रहते हैं, क्रूर होते हैं, जो हिंसाप्रिय होते हैं, जिनकी वृत्ति अपनी आजीविका के लिए दान, यज्ञादि क्रियाएँ करवाने की होती हैं, जो गोशाला, अग्निस्थल, जल, गलियों, सर्वोपयोगी पेड़ की छाया में, पर्वत पर, उद्यान और अपने ही घर में (शौचालय को छोड़कर) मल का त्याग करते हैं, जो लोग नित्य मद्यपान में लगे रहते हैं, जो गीत-संगीत, वाद्य श्रवणादि में लगे रहते हैं, जो रतिक्रीड़ा करने वाले भुजंग-गुण्डे तथा परछिद्रान्वेशी - दूसरे में दोष देखने वाले हैं, बाँस, ईंटो, पत्थर अथवा लकड़ियाँ लगाकर, सींग डालकर अथवा काँटों को बिछाकर मार्ग को अवरुद्ध करते हैं और पराई सीमा का हरण करते हैं, जो लोग कपटपूर्ण शासन चलाते हैं, कपटाचरण करते हैं, कपट वाली लड़ाई करते हैं, नकली वस्त्रों के विपणन-व्यवहार को करते हैं, जो धनुष जैसे आयुध, शल्य-शस्त्रों को बनाते अथवा उनका क्रय-विक्रय करते हैं, जो बहुत ही निर्दयी होकर सेवकों और पशुओं के प्रति दमनपूर्ण व्यवहार करते हैं, जो धीरे से झूठ बोलने वालों की बातों को सुनता है, स्वामी, मित्र और गुरु से द्रोह करते हैं वे मायावी, चपल और धूर्त होते हैं।

CENTRE FOR SHAIVA STUDIES Puducherry

वृथपाकलक्षणम् —

ये भार्य्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान्।
भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाश्नन्ति बुभुक्षितान्॥ 73॥
यः स्वयं मिष्टमश्नाति विप्रेभ्यो न प्रयच्छति।
वृथापाकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः॥ 74॥
नियमान्स्वयमादाय ये त्यज्यन्तजितेन्द्रियाः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

प्रव्रज्यारसिका ये च रहस्यानां च भेदकाः[17] ॥ 75 ॥

इसी प्रकार जो भूखी पत्नी, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, कृशकाय, रोगी, सेवक, अतिथि और बन्धुओं को भोजन करवाए बिना ही भोजन कर लेते हैं और जो विप्रों को प्रदान करने से पहले ही मिठाई को चट कर जाते हैं, उसको वृथापाक के रूप में जानना चाहिए। ब्रह्मवादी लोग ऐसों की निन्दा करते हैं। जो अपने ही स्वीकारे गए संकल्पों-नियमों को तोड़कर अजितेन्द्रिय हो जाते हैं, जो व्यक्ति सन्यास की परम्परा में रुचिशील नहीं हो वे धर्मादि के रहस्यों को तोड़ने वाले हैं।

गोघातकलक्षणम् —

ये ताडयन्ति गां क्रूरा दमयन्ते च मुहुर्मुहुः।
दुर्बलान्ये न पुष्णन्ति सततं यं त्यजन्ति च॥ 76 ॥
पीड्यन्त्यतिभारेणासहन्तं वाहयन्ति च।
योजयन्नकृताहारान्न विमुञ्चन्ति संयतान्[18] ॥ 77 ॥
ये भारक्षतरोगार्तान्गोवृषांश्च क्षुधातुरान्।
न पालयन्ति यत्नने गोघ्नास्ते नारकाः स्मृताः ॥ 78 ॥

जो व्यक्ति गाय को बारम्बार पीटकर उसका दमन करना चाहते हैं, जो दुर्बलजनों का पोषण करने की अपेक्षा उनका त्याग कर देते हैं, जो व्यक्ति बैलों को गाड़ी में जोतकर अत्यधिक भार खींचवाते हैं और उनको उचित आहार नहीं देते बल्कि बन्धन में ही बाँधे रखते हैं तथा उनको मुक्त नहीं करते हैं, जो भार उठा-उठाकर दुखी हो गए, रोगी और भूख से पीड़ित बैल और गाय को यत्न से नहीं पालते हैं— उन नारकी को गोघातक के रूप जानना चाहिए।

वृषाणां वृषणान्ये च पापिष्ठा गालयन्ति च।
वाहयन्ति च गां वन्ध्यां महानारकिनो नराः ॥ 79 ॥

जो पापी बैलों के अण्डकोषों को कटवा डालते हैं और वन्ध्या गाय को भारवाहक के रूप में प्रयोग करते हैं, वे लोग महानारकी होते हैं।

तथान्यनारकीनाह —

आशया समनुप्राप्तान्क्षुत्तृष्णाश्रमकर्शितान्।

---

17. प्रव्रज्यावासिता ये च हरस्यास्य प्रभेदकाः ॥ इति शिव. उमा. (6, 30) पाठः। इस पंक्ति का अर्थ होगा कि जो सन्यास लेने के बावजूद घर में बने रहते हैं और शिव का मुख तोड़ने वाले हों।
18. 'सार्थयामाच्च वरताः संयुक्तो येन भुञ्जते' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अतिथीं तथाऽनाथान् स्वतन्त्रान्गृहमागतान्[19] ॥ 80 ॥
अन्नाभिलाषान्दीनान्वा बालवृद्धकृशातुरान्।
नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकार्णवम्[20] ॥ 81 ॥

भूख, प्यास और श्रम के कारण जिनकी दशा नहीं देखी जाती और भोजन की अपेक्षा लेकर घर पर आए अतिथियों, अनाथ तथा स्वतन्त्रजनों, दीन-दुखियों, बाल, वृद्ध, कृशकाय और रोगियों को जो अन्न देकर अनुग्रह नहीं करते, वे मूढ़मति नरक-सागर में जाते हैं।

अजाविको माहिषीकः सामुद्रो वृषलीपतिः।
शूद्रवत्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद्द्विजाधमः ॥ 82 ॥

बकरी और भैंस का व्यापार करने वाला, नमक आदि विक्रेता, शूद्रा का पति, शूद्र के समान ही क्षत्रिय वृत्ति को धारण करने वाला अधम ब्राह्मण नारकी होता है।

शिल्पिनः कारवो वैद्या हेमकार नृपध्वजाः।
भृतकाः शाठ्यसंयुक्ताः ते नरा नारकाः स्मृताः ॥ 83 ॥

शिल्पकार, वर्धकी, वैद्य, सुवर्णकार, राजा का ध्वजाकार, कपटपूर्वक सेवा करने वाले— इन सब पुरुषों को नारकी जानना चाहिए।

यश्चोचितमतित्क्रम्य स्वेच्छयैवाहरेत्करम्।
नरके पच्यते सोऽपि दण्डरुचिर्नृरः ॥ 84 ॥

जो व्यक्ति कभी उचित कार्य का विचार नहीं करता और अन्य किसी की बात नहीं मानकर मनमर्जी करता है, उस पर भी दण्ड देने की इच्छा करता है, वह नरक में पकाया जाता है।

उत्कोचकै रुचिक्रीतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते।
यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः ॥ 85 ॥

जिसके राज्य में जनता भ्रष्टाचारियों, घोखे से खरीदने वालों और तस्करों से पीड़ित होती है, वह राजा भी नरक में पकाया जाता है।

ये द्विजाः परिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिनः।
ते प्रयान्ति तु घोरेषु नरकेषु न संशयः ॥ 86 ॥

---

19. 'येऽतिथीनवमन्यन्ते तेवै निरयगामिनः' इति पाठः। तुल.— शिव. उमा. 6, 35
20. इत्यमनन्तरे शिवपुराणे (उमा. 6, 37)— 'गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानादपि बान्धवाः। सुकृतं दुष्कृतं चैव गच्छन्तमनुगच्छति' अतिरिक्त श्लोकपाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अन्यायपूर्वक शासन करने वाले राजा के दान-अनुदान को ग्रहण करने वाले ब्राह्मण तक घोर नरक में जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं।

परदारिकचौराणां यत्पापं पार्थिवस्य तत्।
भवेदरक्ष तस्तस्य पापायैव प्रतिग्रहाः[21] ॥ 87 ॥

पराई स्त्रियों के अपहरण करने का जो पाप है, वह पाप राजा को भी लगता है यदि उसके राज्य में पापी प्रतिहारी अथवा सुरक्षाकर्मी अरक्षक हो जाते हैं।

अचौरं चोरवत्पश्येच्चौरं वाऽचौररूपिणम्।
अविचार्य्य नृपस्तस्माद्धातयन्नरकं व्रजेत्॥ 88 ॥

जिसने चोरी नहीं की हो, उसको चोर समझें और जो चोर हो, उसको चोर नहीं, साहूकार समझें और विचारहीन होकर दण्ड का प्रावधान किया जाए, तो ऐसा राजा नरक को जाता है।

घृततैलान्नपानानि मधुमांससुरासवम्।
गुडेक्षुशाकदुग्धानि दधिमूलफलानि च॥ 89 ॥
तृणं काष्ठं पत्रपुष्पमौषधं चात्मभोजनम्।
उपानच्छत्रशकटमासनं च शयनं मृदुः॥ 90 ॥
ताम्रसीसत्रपुः शस्त्रं शङ्खाद्यं च जलोद्भवम्।
वार्क्षं वा वैणवं चान्यद्गृहोपकरणानि च॥ 91 ॥
और्णं कार्पासं कौशेयं मण्टपट्टोद्भवानि च।
स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभाद्धि हरन्ति च॥ 92 ॥
नरकेषु ध्रुवं गच्छेत् अपहृत्यास्वल्पकानि च।

घी, तेल, अन्न, पेय सामग्री, मधु, मांस, सुरा, आसव, गुड़, ईख, शाक-सब्जी, दूध, दही, मूल-फल, चारा, लकड़ी, पत्र, पुत्र, औषध, भोजन-आहार, जूते, छत्र, गाड़ी, आसन, मुलायम बिस्तर, ताम्बा, सीसा, त्रपु, आयुध, जल से उत्पन्न होने वाले शंख, मोती आदि, वृक्ष से बनने वाले या बाँस से बनने वाले गृहोपयोगी उपकरण, ऊन, कपास, रेशम और सजावटी पट्ट से बनने वाले स्थूल-सूक्ष्म वस्त्र— इन वस्तुओं को लोभ के वशीभूत होकर जो चुराता है, वह निस्सन्देह नरक को जाता है। चुराई गई वस्तु चाहे छोटी ही क्यों न हो (किन्तु पाप तो पाप ही है)।

---

21. पाठान्तरे— पारदारिकचौराणां चण्डानां विद्यते त्वघम्। परदाररतस्यापि राज्ञो भवति नित्यशः॥ शिवपुराणे उमा. 6, 44

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम्॥ 93॥
अपहृत्य नरो याति नरकं नात्र संशयः।

चुराया गया द्रव्य चाहें सरसों के बराबर प्रमाण का ही क्यों न हो, जो व्यक्ति उसको चुराता है, वह निस्सन्देह नरक को जाता है।

एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्तिसमनन्तरम्॥ 94॥
शरीरयातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात्।
यमलोकं व्रजन्त्येते शरीरेण यमाज्ञया॥ 95॥
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानाः सुदुःखिताः।

इस प्रकार के पापों के कारण नरक को भोगने के बाद शारीरिक यातनाएँ उठानी पड़ती है और इसके लिए पहले जैसे ही आकार को धारण करना पड़ता है। उस शरीर के साथ यमराज की आज्ञा से यमलोक जाना होता है। उसको यमदूत पकड़े रहते हैं और बहुत कष्ट पहुँचाते हैं।

देवतिर्यङ्मनुष्याणामधर्मनिरतात्मनाम्॥ 96॥
धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः।

देवता हो अथवा पशु-पक्षी या मनुष्य हो— जो कोई भी अधर्म में लगे रहते हैं, धर्मराज उन पर शासनकर्ता है जो अनेक घोर दण्डों का प्रावधान करते हैं।

प्रायश्चितविधानम् —

नियमाचारमुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम्॥ 97॥
प्रायश्चित्तैर्गुरुः शास्ता न बुधैरिष्यते यमः।

जो लोग नियम और आचार-साधना में लगे हों, उनसे भूल या प्रमादवश कोई त्रुटि हो जाए तो गुरुदेव उनसे प्रायश्चित करवाता है। उन पर यमराज का शासन लागू नहीं होता है।

परदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ॥ 98॥
नृपतिः शासकः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां स धर्मराट्।
तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ 99॥

पराई स्त्रियों का अपहरण या उनसे दुराचरण और अन्यायपूर्ण व्यवहार करने वालों के शासक धर्मराज ही हैं जो कि छिपे हुए रहते हैं। अतएव अपने किए हुए पापों का प्रायश्चित करना चाहिए।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि।
यः करोति स्वयं कर्म कायेच्चानुमोदयेत्॥ 100॥
कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिः फलम्।[22]

अपने किए कर्मों का फल तो भोगना ही होता है। कर्मों के फल का नाश करोड़ कल्पों में भी नहीं होता है। तन, मन और वचन से स्वयं द्वारा किए गए अथवा अपनी अनुमतिपूर्वक करवाए गए पापकर्मों का फल अधोगति होता है।

इति सङ्क्षेपतः प्रोक्ताः पापभीतास्त्रिसाधनम्।
कथ्यन्ते गतयश्चित्राः नराणां पापकर्मणाम्॥ 101॥

यहाँ सब मानसिक, वाचिक और शारीरिक—तीनों ही प्रकार के पापकर्मों के भयादि के सम्बन्ध में कहा गया है। अब पापकर्म करने वाले लोगों की विचित्र गतियों के विषय में कहा जाएगा।

इति शिवधर्मोत्तर(पुराणे) पापभेदं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ 6॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तरपुराण में पापभेद नामक छठा अध्याय समाप्त हुआ।

*****

अथ नरक विशेष नाम सप्तमोऽध्यायः॥ 7॥

अथ चतुर्विधयमलोकवर्णनम्। स्कन्दोवाच —

अथ पापैर्नरा यान्ति यमलोकं चतुर्विधैः।
सन्त्रासजननं घोरं विवशाः सर्वदेहिनः॥ 1॥

स्कन्द कहते हैं कि चार प्रकार के पापों के करने से विवश हुए मनुष्य तो क्या, सभी देहधारी भयदायक, घोरतम नरक में ले जाए जाते हैं।

गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः।
स्त्रीपुंन्नपुंसकैर्वृद्धैः ध्यातव्यं सर्वजन्तुभिः॥ 2॥
शुभाशुभफलं चात्र देहिनां प्रविचार्यते।

चाहे गर्भ में स्थित हों अथवा जन्मे हुए हों, बालक हो, तरुण हो, प्रौढ़ हो या

---

22. तुल.— शिव. उमा. 6, 1-58

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वृद्ध स्त्री, पुरुष या नपुंसक, सभी जन्तु ही क्यों न हो, उनके प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि देहधारियों के शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य विचारणीय होता है।

चित्रगुप्तादिभिः सद्भिर्मध्यस्थैः समदर्शिभिः॥ 3॥
न केचित्प्राणिनः सन्ति येन यान्ति यमालयम्।
अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यमविचारतः॥ 4॥

चित्रगुप्त इत्यादि, सज्जनलोग, मध्यस्थ और समदर्शी हो, ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो यमलोक नहीं जाते हों क्योंकि किए गए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है, इसमें विचार ही क्या करना है!

तत्र ये शुभकर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः।
ते नरा यान्ति सौख्येन पथा याम्यनिकेतनम्॥ 5॥

यहाँ जो शुभ कर्म करने वाले हैं, शुभ चित्त वाले और दयालु वृत्ति के होते हैं, उन लोगों को यमालय के मार्ग पर सुखपूर्वक ले जाया जाता हैं।

विविधदानादीनां फलमाह —

यः प्रदद्याद्द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठपादुके।
स नरोऽश्वेन महता सुखं यान्ति यमालयम्॥ 6॥

जो अपने जीवनकाल में विप्रों को जूता और लकड़ी की खड़ाऊ का दान करता है, वह व्यक्ति अश्व पर आरूढ़ होकर सुखपूर्वक यमालय को जाता है।

छत्रदानेन गच्छन्ति यथा छत्रेण देहिनः।
दिव्यवस्त्रपरीधानाः यान्ति वस्त्रान् प्रदाय सः॥ 7॥

जो विप्रों को छाता का दान करता है, वह अन्त में छाता लगाए ही यमलोक गमन करता है। जो वस्त्रों का दान करता है, वह दिव्य वस्त्र और परिधान को प्राप्त करता है।

शिबिकायाऽभयदानेन स रथेन सुखं व्रजेत्।
शय्यासनप्रदानेन सुखं यान्ति सविश्रमम्॥ 8॥
आरामकर्ताच्छायासु शीतलासु सुखं व्रजेत्।[1]

जो पालकी और अभयदान देता है, वह रथ में आरूढ़ होकर सुखपूर्व

---

1. तुल.— आरामच्छायाकर्तारो मार्गे वा वृक्षरोपकाः। व्रजन्ति यमलोकं त आतपेऽपि गतक्लमाः॥ शिव. उमा. 11, 6

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यमालय को जाता है। शय्या और आसन प्रदान करने वाले को विश्राम का सुख मिलता है। बगीचा बनवाने वाला और छाया करने जैसे शीतोपाय करने वाला सुखपूर्वक गमन करता है।

यान्ति पुष्पविमानेन पुष्पाराम प्रदायिनः ॥ 9 ॥
देवायतनकर्तारो यतिनामाश्रमस्य च।
अनाथमण्डपानां च क्रीडामान गृहोत्तमः ॥ 10 ॥

पुष्पों का उद्यान लगाकर दान करने वाला पुष्प विमान में बैठकर प्रयाण करता है। देवालय बनवाने वाला, यतियों के लिए आश्रम बनाने वाला, अनाथों के लिए मण्डप बनाने वाला उत्तम गृहों में विहार करने वाला होता है।

देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोऽश्च पूजकाः।
पूज्यमाना नरा यान्ति कामगेन यथासुखम् ॥ 11 ॥

देवता, अग्नि, गुरु, विप्र, माता-पिता का पूजन करने वाले पूज्यमान लोग जैसी अपनी इच्छा हो, वैसे सुख के साथ यममार्ग पर जाते हैं।

द्योतयन्तो दिशः सर्वाः यान्ति दीपप्रदायिनः।
प्रतिश्रयप्रदानेन सुखं यान्ति [2]गृहेष्वयम् ॥ 12 ॥

जो दीपदान करते हैं, वे दसों ही दिशाओं को प्रकाशित करते हुए जाते हैं। जो विश्राम ग्रह बनवाते हैं, वे गृह का लाभ उठाकर जाते हैं।

सर्वकामसमृद्धेन पथा गच्छन्ति गोप्रदाः।
येऽन्नपानानि कुर्वन्ति ये तृप्ता यान्ति सत्पथा ॥ 13 ॥

गायों का दान करने वाले समस्त कामनाओं को पूरा कर समृद्धिपूर्वक यममार्ग को जाते हैं। जो अन्न और जल दान करते हैं, वे तृप्त होकर सत्पथ पर अग्रसर होते हैं।

आर्तौषधप्रदातारः सुखं यान्ति निरामयाः।
विश्राम्यमानां गच्छन्ति गुरुशूश्रूषणेरताः ॥ 14 ॥

रोगियों, आर्तजनों को औषधदान करने वाले निरोग होकर ही सुखपूर्वक प्रयाण करते हैं। गुरु सेवा में निरत रहने वाले विश्राम करते हुए गमन करते हैं।

पादशौचप्रदानेन सजलेन पथा व्रजेत्।

---

2. 'निरामयाः' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पादाभ्यङ्गं च य कुर्यादश्वपृष्ठेन सो व्रजेत्॥ 15॥

पाँव धोने के लिए जल प्रदान करने वाला जल वाले मार्ग से जाता है। जो पथिक के पाँव में मसाज करता है, वह घोड़े की पीठ पर सवार होकर गमन करता है।

हेमरत्नप्रदानेन याति दुर्गाणि दुस्तरम्।[3]
रथानडुत्प्रदानेन दिव्य यानेन गच्छति॥ 16॥

जो सोना और रत्न का दान करता है, वह सभी कष्टों को पार कर जाता है। रथ के लिए बैलों का दान करने वाला दिव्य विमान में बैठकर जाता है।

सर्वकामसमृद्धेन भूमिदानेन गच्छति।
अन्नपानप्रदानेन पिबन्खादश्च गच्छति॥ 17॥

भूमिदान करने वाले की गमन काल तक सभी कामनाएँ पूरी हो जाती है। जो अन्न, पानी आदि का दान करता है, वह खाते-पीते ही प्रयाण करता है।

इत्येवमादिभिर्दानैः सुखं यान्ति यमालयम्।
स्वर्गे च विपुलान्भोगान् प्राप्नोति विविधान्नरः॥ 18॥

इस प्रकार के अनेकविध दान करने वाला सुखपूर्वक यमालय की यात्रा करता है। वह व्यक्ति स्वर्ग में अनेक प्रकार के भोगों का विपुल उपभोग करता है।

अन्नदानमहिमा —

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्।
सद्यः प्रीतिकरं दिव्यं बलपुष्टिविवर्धनम्॥ 19॥

सभी प्रकार के दानों में अन्नदान को महान दान कहा गया है। यह दान तत्काल ही प्रीतिकारी, दिव्य, बल और पुष्टिवर्धन करने वाला होता है।

नान्नदानसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
अन्नाद्भवति भूतानि[4] तदभावे म्रियन्ति च॥ 20॥

तीनों ही लोकों में अन्नदान के समान अन्य कोई दान नहीं माना गया है। अन्न से ही भूतप्राणियों का जीवन होता है और अन्न के अभाव में उनका मरण हो जाता है।

रक्तमांस वसा शुक्रं क्रमादन्नात्प्रवर्धते।
शुक्राद्भवन्ति भूतानि तस्मादन्नमयं जगत्॥ 30॥

---

3. तुल.— शिव. उमा. 11, 2-15
4. तुल.—अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। इति श्रीमद्भवगद्गीता 3, 14; शिव. उमा. 11, 18

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अन्न के फलस्वरूप ही रक्त, मांस, वसा और वीर्य की वृद्धि होती है। शुक्र से ही भूतप्राणियों का जन्म सम्भव होता है। इस कारण संसार को अन्नमय कहा जाता है।

हेमरत्नाश्वनागेन्द्रैर्नारीस्त्रक्चन्दनादिभिः ।
समस्तैरपिसम्प्राप्तैर्न रमन्ते बुभुक्षिताः ॥ 31 ॥

सुवर्ण, रत्न, अश्व, गजराज, नारी, माला, चन्दन इत्यादि वस्तुओं के प्राप्त हो जाने पर भी भूखों को अपेक्षित आनन्द नहीं मिल पाता है।

गर्भस्था जायमानाश्च बालवृद्धाश्च मध्यमाः।
आहारमभिकाङ्क्षन्ति देवदानवराक्षसाः ॥ 32 ॥

गर्भ में विद्यमान, उत्पन्न हुए, बालक, वृद्ध और प्रौढ़वयी सहित देवता, दानव और राक्षसगण सभी आहार की इच्छा रखते हैं।

क्षुधा हि सर्वरोगाणां रोगः श्रेष्ठतमः स्मृतः।
स चान्नोषधिलेपेन नश्यतीह न संशयः ॥ 24 ॥[5]

समस्त रोगों में भूख के समान अन्य कोई बड़ा रोग नहीं है, ऐसा जानना चाहिए। वह भूख निःसन्देह अन्न रूपी औषध के लेपन से ही मिटती है (पाठान्तर से— ऐसा व्रतकारों ने कहा हैं)।

नास्ति क्षुधा समं दुःखं नास्ति रोगः क्षुधा समः।
नास्त्याऽऽहारसमं सौख्यं नास्ति क्रोधसमो रिपुः ॥ 25 ॥

भूख के समान अन्य कोई दुःख नहीं है। भूख के समान अन्य कोई रोग नहीं है। आहार के समान अन्य कोई सुख नहीं है और क्रोध के समान अन्य कोई शत्रु नहीं है।

अत एव महत्पुण्यमन्नदाने प्रकीर्तितम्।
तथा क्षुधाग्निना तप्ता म्रियन्ते सर्वदेहिनः ॥ 26 ॥

इसलिए अन्नदान के समान अन्य कोई बड़ा पुण्य नहीं कहा गया है क्योंकि भूख रूपी अग्नि से झुलसे हुए समस्त देहधारी मर जाते हैं।

अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः।
तस्मादन्नप्रदानेन सर्व्वदानफलं लभेत् ॥ 27 ॥

---

5. 'तस्मादौषधलेपन व्रतकाराः प्रकीर्तिताः' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अन्नदाता को प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदान करता है, वह सब कुछ देता है। इसलिए अन्नदान से सभी के प्रकार के दानों का फल सुलभ हो जाता है।

त्रैलोक्ये यानि रत्नानि भोगस्त्रीवाहनानि च।
अन्नदानप्रदः सर्वमिहामुत्र च तल्लभेत्॥ 28॥

तीनों ही लोकों में जो-जो रत्न, भोग, स्त्री, वाहनादि उपलब्ध हैं, वे सभी अन्नदान करने वाले पुरुष को इहलोक और परलोक में सुलभ हो जाते हैं।

यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते पुण्यसञ्चयम्।
अन्नप्रदातुस्तस्यार्द्धं कर्तुश्चार्द्धं न संशयः॥ 29॥

जिसके अन्न और पान से परिपुष्ट हुए शरीर वाला व्यक्ति पुण्यों का संचय करता है, उसका आधा पुण्य निःसन्देह अन्न प्रदान करने वाले को मिलता है और आधा आहारकर्ता को प्राप्त होता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम्।
तस्मादन्नेन पानेन पालयेद्देहमात्मनः॥ 30॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह शरीर परम साधन कहा गया है। अतएव देहधारी को अन्न और पान से इस शरीर की रक्षा करनी चाहिए।

अन्नं प्रजापतिः साक्षादन्नं विष्णुः शिवस्वयम्।
तस्मादन्न समं दानं न भूतो न भविष्यति॥ 31॥[6]

यह अन्न ही साक्षात् प्रजापति है, विष्णु है और शिव स्वरूप है। अतएव इस अन्न के समान दान न तो अतीत में था और न ही भविष्य में होगा।

जलदानमाहात्म्याह —

त्रयाणामेव लोकानामुदकं जीवनं स्मृतम्।
पवित्रममृतं दिव्य शुद्धं सर्वरसाश्रयम्॥ 32॥

तीनों ही लोकों में जल को जीवन के रूप में जाना गया है। यह जल पवित्र, अमृत, दिव्य, शुद्ध और समस्त रसों का आश्रय कहा गया है।

अन्नपानाश्वगोवस्त्रशय्याच्छत्रासनानि च।
प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः॥ 33॥

---

6. तुल.— शिव. उमा. 11, 2-28 व 48; स्कन्दात् विधानपारिजाते चतुर्थस्तबकः। पृष्ठ 397

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यह ज्ञातव्य है कि 1. अन्न, 2. पानी, 3. अश्व, 4. गाय, 5. वस्त्र, 6. शय्या, 6. छत्र और 8. आसन— ये आठ दान विशेष रूप से प्रेतलोक में प्रशस्त कहे गए हैं।

एवं दानविशेषेण धर्मराजपुरं नरः।
यस्माद्याति सुखनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत्॥ 34॥[7]

इस तरह के विशेष दानों के करने से मनुष्य सुखपूर्वक धर्मराज के पुर को जाता है। अतएवं दानधर्म का आचरण करना चाहिए।

यमपुरी वर्णनम् —

ये पुनः क्रूरकर्माणः पापा दानविवर्जिताः।
ते घोरेण पथा यान्ति दक्षिणेन यमालयम्॥ 35॥[8]

जो पापवृत्ति वाले होते हैं, पापकर्म करते हैं, कभी दान-पुण्य नहीं करते, वे कष्टप्रदायक दक्षिणद्वार से यमलोक को जाते हैं।

षडशीति सहस्राणि योजनानामतीत्य वै।
वैवस्वतपुरं ज्ञेय नानारूपमव्यवस्थितम्॥ 36॥

कुल छियासी हजार योजन प्रमाण-पार नाना रूपों में वैवस्वतपुरी (यमपुरी) की नियोजन-व्यवस्था बताई गई है। (यह दूरी पापियों को पार करनी होती है)।

समीपस्थमिवाभाति नराणां पुण्यकर्मणाम्।
पापीनामतिदूरस्थं यथा रौद्रेण गच्छताम्॥ 37॥

जो लोग पुण्यकर्मा होते हैं, उनको यमपुरी दूर नहीं, बल्कि समीपस्थ लगती है। पापियों को कष्ट के साथ जाते हुए वह अत्यन्त दूर लगती है।

तीव्रकण्टकयुक्तेन शर्कराविचितेन च।
क्षुराधारानिभैस्तीक्ष्णै पाषाणै रचितेन च॥ 38॥

यमपुरी का मार्ग तीखे काँटों से भरा हुआ, रेत-कंकड़ से बना हुआ, छुरे जैसा धारदार और तीखा तथा पत्थरों से बनाया गया है।

क्वचित्पङ्केन महता दुरुक्तारैश्च पातकैः।
लोहसूचिमुखैर्दर्भैः सच्छन्नेन पथा क्वचित्॥ 39॥

उसमें कहीं-कहीं बहुत कीचड़ है, वहाँ गाली-गलौज करने वाले हैं। कहीं-

---

7. तुल.— शिव. उमा. 11, 50-51
8. तुल.— शिव. उमा. 7, 6 श्लोकाताऽविरामम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

कहीं वह रास्ता लोहे की सूइयों की नोक की तरह चुभने वाली दर्भ घास से ढँका हुआ होता है।

तटप्रायातिविषमैः पर्वतैर्वृक्षसङ्कुलैः।
प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः॥ 40॥

उसमें चलते समय कहीं विषम किनारे हैं तो कहीं पर पर्वत और पेड़ों के समूह हैं, वह मार्ग तपते हुए अंगारों से भरा हुआ और गमनकाल में पर्याप्त दुःख देने वाला है।

क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्ठैः सुदुष्करैः।
सुतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः॥ 41॥

गमनकर्ता को कहीं पर विषम खाइयों से होकर जाना पड़ता है तो कहीं पर दुष्कर ढेलों पर चलना होता है। कहीं पर तपी हुई रेत पर तो कहीं-कहीं तीखे शंकुओं पर चलना पड़ता है।

अनेकशाखाविततैर्व्याप्तं वंशवनैः क्वचित्।
कष्टेन तमसा मार्गे नानालम्बेन कुत्रचित्॥ 42॥

उस मार्ग में कहीं-कहीं पर अनेक शाखाओं वाले बाँस के वनों के बीच से गुजरना होता है तो कहीं-कहीं कष्टकारक अन्धकारमय मार्ग में विविध सहारों को ग्रहण करना पड़ता है।

अयः शृङ्गाटकैस्तीक्ष्णैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः।
क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेन च॥ 43॥

कहीं पर तीखे लोहे के सिंघाड़ों को सहना होता है तो कहीं दावाग्नि में तपना होता है। कहीं-कहीं तपी हुई शिलाएँ हैं तो कहीं-कहीं बर्फ आच्छादित मिलती है।

क्वचिद्वालुकया व्याप्तमाकण्ठान्तः प्रवेशया।
क्वचिदुष्णाम्बुना व्याप्त क्वचित्करीषवह्निना॥ 44॥

कहीं-कहीं तपी रेत के अन्दर आकण्ठ प्रवेश करना होता है तो कहीं-कहीं खौलता पानी मिलता है। कहीं-कहीं जलते कण्डों की आग का ताप सहना पड़ता है।

क्वचित्सिंहैर्मृगैर्व्याघ्रैः दंशैः कीटैश्च दारुणैः।
क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैः पुनः॥ 45॥[9]

---

9. 'क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्मशकैश्च सुदारुणे' इति शिव. उमा. 7, 16 पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उस मार्ग में कहीं पर सिंह मिलते हैं, कहीं मृग, कहीं व्याघ्र, कहीं डंक मारने वाले जीवों तो कहीं भयानक कीटों से भयाक्रान्त होना होता है। कहीं-कहीं बड़ी-बड़ी जोंके तो कहीं अजगर पाए जाते हैं।

मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः।
मत्तमातङ्गयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रथादिभिः।
पन्थानमुल्लिखिद्भिश्च [10]तीक्ष्णशृङ्गैर्महावृषैः॥ 46॥

कहीं पर भयानक मक्खियों से तो कहीं विषैले साँपों से भय होता है। कहीं पर वह मार्ग उन्मत्त हाथियों के समूहों से घिरा होता है। कहीं पर मार्ग को खोद डालने वाले तीखे सींगों वाले बड़े बैल पाए जाते हैं।

महाशृङ्गैश्च महिषैः सुप्रेतमृत्तैश्च खादकैः[11]।
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः॥ 47॥

इसी प्रकार बड़े-बड़े सींगों वाले भैंसे पाए जाते हैं। खा जाने को आतुर उन्मत्त प्रेतों सहित दारुण डाकिनियाँ और विकराल राक्षस होते हैं।

व्याधिभिश्च महाघोरैः पीड्यमाना व्रजन्ति च।
महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना॥ 48॥
महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः।
क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दह्यमाना व्रजन्ति च[12]॥ 49॥

वे प्राणी उस मार्ग से महाव्याधियों से पीड़ित होते हुए गमन करते हैं। कहीं पर वे पर्याप्त धूल मिली बहुत तेज अँधड़ को भोगते हैं तो कहीं पर निराश्रय होकर पत्थरों की वर्षा से चोटग्रस्त होते हैं। कहीं पर गिरती हुई बिजलियों से जलते हुए मार्ग में आगे बढ़ते हैं।

महता पांसुवर्षेण पूर्य्यमाणा रुदन्ति च।
महामेघरवैर्घोरैस्त्रस्यन्ति च मुहुर्मुहुः॥ 50॥

उस मार्ग में वे कहीं पर धूल की वर्षा से सनकर रुदन करते हैं तो कहीं महामेघों की भयानक गर्जना को सुनकर बारम्बार भयभीत होते हैं।

---

10. 'सूकरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रिभिः' इति तत्रस्थलीयपाठः।
11. 'तीक्ष्णशृङ्गैश्च महिषैः सर्वभूतेश्च श्वापदैः' इति तत्रस्थलीयपाठः।
12. इत्यमनन्तर : महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वतः। पतद्भिर्वज्रपातैश्च उल्कापातैश्च दारुणैः॥ प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमानाश्च सन्ति हि॥ शिव. उमा. 7, 21-22 क्वचिदतिरिक्तपाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

निशितैर्लोष्ठवर्षैश्च चूर्ण्यमानाश्च सर्वशः। 24
महाक्षाराम्बुधाराभिःसिच्यमाना व्रजन्ति च॥ 51॥

कहीं पर तेज तेल की धार और ढेलों के वर्षण से सर्वथा चूर्णमान होते हैं तो कहीं पर वे तेजाब (तेज क्षारयुक्त जल) की धारा से भीगते हुए गमन करते हैं।

महाशीतेन मरुता रूक्षेण परुषेण च।
समन्ताद्वाध्यमानाश्च शुष्यन्ते सङ्कुचन्ति च॥ 52॥

कहीं पर वे बहुत शीतल और रुक्ष वायु के चारों ओर प्रवाह के बीच सूखते और संकुचित होते हुए बढ़ते हैं।

इत्थं मार्गेण रौद्रेण सहायरहितेन च।
निरालम्बेन मार्गेण दुर्जनेन समन्ततः॥ 53॥

इस प्रकार वे पापात्मा कठिन मार्ग में किसी भी सहारे से रहित होते हैं। निराश्रय इस मार्ग में चारों ही ओर दुर्जन लोग मिलते हैं।

विषमेणैव महता निर्जनापाश्रयेण च।
तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुष्टाश्रयेण च॥ 54॥
नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः।
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात्॥ 55॥

ऐसे महाविषम मार्ग से जो किसी भी सहारे से रहित, अन्धकार से युक्त, कष्टकारक होता है— वे सभी दुष्टाश्रयी, पापकर्मी, मूर्खप्राणी घोर यमदूतों द्वारा यम की आज्ञा से बलात् खींचकर ले जाए जाते हैं।

एकाकिनः पराधीनाः मित्रबन्धुविवर्जिताः।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्तश्च मुहुर्मुहुः॥ 56॥
प्रेतभूत्वा विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः।
कृशाङ्गा भयभीताश्च दह्यमानाः क्षुधाग्निनाः॥ 57॥

इस दौरान वे अकेले होते हैं। पराधीन होते हैं। उनके साथ न कोई मित्र होता न ही कोई भाई। वे अपने ही किए कर्मों पर विचार करके बार-बार रोते रहते हैं। वे प्रेत रूप में होते हैं। उनके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं होता। उनका कण्ठ, होठ और तालु सूख जाते हैं। शरीर कृशकाय हो जाता है। वे भयभीत होते हैं और भूख की आग से दग्ध होते रहते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

बद्धाः शृङ्खलया केचिदुत्तानपादका नराः।
कृष्यन्ते कृष्यमाणाश्च यमदूतैर्बलोत्कटैः॥ 58॥

किसी व्यक्ति को साँकलों से बाँधकर तो किसी को ऊपर पाँव किए बलवान यमदूत खींच-खींचकर लिए जाते हैं।

उरसाऽधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणाः सुदुःखिताः।
केशपाशनिबन्धेन सङ्कृष्यन्ते च रज्जुना॥ 59॥
ललाटे चाङ्कुशेनान्ये भिन्ना दुष्यन्ति देहिनः।
उत्तानाः कण्टकपथा क्वचिदङ्गारवर्त्मना॥ 60॥

किसी व्यक्ति को नीचे मुख किए दुखी होने के बावजूद यमदूत खींचते रहते हैं। किसी को उनके केश नोचते हुए तो किसी को रस्सी से बाँधकर खींचा जाता है। किसी के ललाट पर अंकुश का प्रहार किया जाता है तो किसी को चित्त लेटाकर काँटे भरे मार्ग अथवा अग्निपथ से ले जाया जाता है।

पश्चाद्बाहुन्निबद्धाश्च जठरेण प्रपीडिताः।
निबद्धाः शङ्खलाभिश्च हस्तयोश्च सुकीलिताः॥ 61॥
ग्रीवापाशेन कृष्यन्तः प्रयान्त्यन्ते सुदुःखिता।
जिह्वाशङ्कुप्रवेशेन रज्ज्वाकृष्यन्त एव ते॥ 62॥

किसी मृतात्मा को पीछे की ओर हाथ बाँधकर, किसी को पेट तथा हाथों को साँकलों में अच्छी तरह बाँधकर तो किसी को गले से बाँधकर जीभ में अंकुश चुभोते या रस्सी से बाँधकर खींचा और दुख पहुँचाया जाता है।

कृकट्यामर्धचन्द्रेण क्षिप्यमाणा इतस्ततः।
शिश्नेनवृषणेबध्वा नीयन्तेऽन्ये च रज्जुना॥ 63॥
नानाक्षेपेधरज्ज्वादसदाकृष्यन्ति चापरे।
भिन्नाः कपोलयो रज्ज्वा कृष्यन्तेऽन्ये तथोष्ठयोः॥ 64॥

किसी को कृकटी (गर्दन के ऊपर वाले भाग) से अर्धचन्द्राकार इधर-उधर घूमाते-फैंकते हुए और किसी को उनके लिंग व अण्डकोशों से बाँधकर ले जाते हैं। अन्य पापीलोग नाना प्रकार के फन्दों, रस्सी बाँधकर इस तरह खींचे जाते हैं कि रस्सी से उनके कपोल, गाल और होठ तक फट जाते हैं।

विभिन्नश्चोदरे चान्येतत्वशृङ्खलयान्विताः।
कृष्यन्ते कर्णयोश्चान्य विभिन्नाश्चुबुके परे॥ 65॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इस दौरान किसी-किसी पापी के पेट फाड़ दिए जाते हैं और किसी को साँकल से बाँध दिया जाता है और उनको उनके कानों से खींचा जाता है। किसी-किसी की दाढ़ी विदीर्ण कर दी जाती है।

छिन्नाग्रहस्तपादाश्च भिन्नकण्ठोष्ठनासिकाः।
सच्छिन्नशिश्नवृषणाः छिन्नभिन्नाङ्गसन्धयः॥ 66॥

किसी-किसी के हाथ और पाँव तोड़ दिए जाते हैं। किसी का गला, होठ और नासिका तोड़ दी जाती है। किसी के लिंग, अण्डकोश और शरीर के अन्य अंग तथा सन्धियों को छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है।

आभिद्यमानाः कुन्तैश्च भिद्यमानाश्च सायकैः।
इतस्ततः प्रधावन्तः क्रन्दमाना निराश्रयाः॥ 67॥

कुछ को कुन्तों (भालों) से बींधा जाता है तो कुछ को बाणों की नोक से विदीर्ण किया जाता है। ऐसे में निराश्रित मृतात्मा क्रन्दन करते हुए इधर-उधर दौड़ते रहते हैं।

मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च हन्यमाना मुहुर्मुहुः।
कण्टकैर्विविधैर्घोरैर्ज्वलनाग्नि समप्रभैः॥ 68॥
भिन्दिपालैर्विभिद्यन्ते स्रवन्तः पूयशोणितम्।
शकृताकृमिदिग्धाश्च नीयन्ते विवशा नराः॥ 69॥

पापात्माओं को मुद्गरों और लोहों के दण्डों से बारम्बार पीटा जाता है। उनको घोर, ज्वलनशील अग्नि के समान दिखाई देने वाले काँटों से बींधा जाता है। भिन्दीपाल से बेधित करने पर उनके शरीर से पीब और रक्त बहने लगता है। मल और कीड़ों से युक्त काया वाले वे विवश लोग इस तरह यमलोक में ले जाए जाते हैं।

याचमानाश्च सलिलमन्नं वापि बुभुक्षिताः।
छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ताश्चानलं पुनः॥ 70॥

वहाँ पर भूख और प्यास से पीड़ित मृतात्मा बारम्बार अन्न-जल की याचना करते हैं। जो तेज आग से परेशान होते हैं वे छाया और जो जाड़े से पीड़ित होते हैं, वे आँच की याचना करते हैं।

दानहीनाः प्रयान्त्येवं प्रार्थयन्तः सुखं नराः।
गृहीतदानपाथेयाः सुखं यान्ति यमालयम्॥ 71॥

जिन्होंने जीवन में कभी दानधर्म का निर्वाह नहीं किया, वे ऐसी पीड़ा उठाते

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

हुए जाते हैं और जिन्होंने दानमार्ग का निर्वाह किया हो, वे सुखपूर्वक उक्त यमलोक में जाते हैं।

एवं न्यायेन कष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं यदाः।
प्रज्ञापितास्ततो दूतैर्निवेश्यन्ते यमाग्रतः॥ 72॥

इस तरह के न्यायसम्मत कष्ट को उठाकर वे प्रेतपुर पहुँचते हैं। वहाँ पर दूत आज्ञानुसार उनको यमराज के आगे प्रस्तुत करते हैं।

तत्र ये शुभकर्माणतांस्तु सम्मानयेद् यमः।
स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण च॥ 73॥

वहाँ पर जो शुभकर्म करने वाले पुण्यात्मा होते हैं, उन प्रियजनों का यमराज पाद्य, अर्घ्य आदि देकर आसन प्रदान करते हैं। (और, यह कहते हैं—)

धन्या यूयं महात्मानः स्वात्मनो हितकारिणः।
येश्च दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम्॥ 74॥
दिव्य विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम्।
स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम्॥ 75॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यस्य सङ्क्षयात्।
यत्किञ्चिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ॥ 76॥

"आप सभी धन्य हैं, आप आत्महित करने वाले महात्मा हैं क्योंकि आपने दिव्यसुखों के लिए अच्छे कर्म किए हैं। आप दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर दिव्य स्त्रियों के भोगों से विभूषित अतुलनीय स्वर्गलोक को जाइये और वहाँ सभी कामनाओं को पूर्ण करियेगा। वहाँ पर महान् भोगों का उपभोग कीजिए और पुण्यकर्मों के क्षय होने पर यदि कदाचित कोई पाप होंगे तो उनको वहीं पर भोगियेगा।"

तेनापि धर्मराजेन नराः पुण्यानुभावतः।
पश्यन्ति सौम्यपवनं मित्रभूतमिवात्मनः[13]॥ 77॥

इस प्रकार धर्मराज के द्वारा उनको पुण्यभावना से देखे जाने पर वे लोग सौम्यपवन (ठण्डी बहार) देखते हैं मानों वह उनकी मित्र हो गई हो।

यमराजस्वरूपवर्णनम् —

ये पुनः क्रूरकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम्।

---

13. शिवपुराणस्य पाठः— धर्मात्मानो नरा ये मित्रभूता इवात्मनः। सौम्यं मुखं प्रपश्यन्ति धर्मराजानमेव च॥ उमासंहिता 7, 48

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पापाविष्टब्दनयना विपरीतात्म बुद्धयः ॥ 78 ॥

इसके विपरीत जो जीवात्मा पापकर्म करने वाले होते हैं, उनकी ओर यमराज भयानक दृष्टि से देखते हैं। पापी को देखकर उनके नयन आवेशित हो जाते हैं। उनकी बुद्धि भी विपरीत हो जाती है।

दंष्ट्राकरालवदनं भ्रकुटीकुटिलेक्षणम्।
ऊर्ध्वकेशारुणाश्मश्रु प्रस्फुरद्दन्तवाननम् ॥ 79 ॥

उन लोगों को वे यमराज भयानक दाँढ़ों वाले, करालवदन, कुटिल भृकुटि किए आँखों वाले, केशों को ऊँचा किए, लाल दाढ़ी-मूँछों में और दाँत किटकिटाते मुँह वाले दिखाई देते हैं।

अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलाञ्जनचयोपमम्।
सर्वायुधोद्धृतकरं सर्वदण्डेन तर्जयम् ॥ 80 ॥

उनकी अठारह भुजाएँ उठी हुई दिखाई देती हैं। क्रुद्धरूप में वह नीलांजन पहाड़ जैसे दिखाई देते हैं। सभी हाथों में वह आयुध लिए होते हैं और सभी को दण्ड से डाँटते हैं।

महामहिषमारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम्।
रक्तमाल्याम्बरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ॥ 81 ॥

वह बड़े भैंसे पर आरूढ़ और प्रज्वलित आग के समान नेत्र वाले हैं। गले में लाल माला और वस्त्रों को धारण किए तथा मेरुपहाड़ की तरह उठे हुए दिखाई देते हैं।

प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्निव महोदधिम्।
ग्रसन्तमिव शैलेन्द्रमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ 82 ॥

प्रलयकाल के मेघ के समान गर्जना करते हुए वह मानों समुद्र की जलराशि का पान करने के लिए सन्नद्ध हों अथवा पर्वतराज को निगल रहे हों या आग उगल रहे हों।

मृत्युश्चैव समीपस्थः कालानलसमप्रभम्।
कालश्चाञ्जनसङ्काशं कृतान्तश्च भयानकः ॥ 83 ॥

जिनके समीपस्थ मृत्यु विराजित है और जो काल की अग्नि के समान प्रतीति देने वाले हैं— ऐसे काले काजल की तरह भयानक यमराज हैं।

मारी चोग्रमहामारी कालरात्रिश्च दारुणा।
विविधा व्याधयः कुष्ठाः नानारूपा भयावहाः ॥ 84 ॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शक्तिशूलाङ्कुशधराः चक्रपाशासिपाणयः।
वज्रतुण्डधरा रौद्राः क्षुरतूणधनुर्द्धराः॥ 85॥

बीमारी, महामारी, कालरात्रि इत्यादि दारुण नाना प्रकार की व्याधियाँ, कोढ़ आदि नाना रूपों से भयावह दिखाई देते हैं। वे शक्ति, शूल, अंकुश धारण किए हैं, चक्र, पाश, तलवार आदि को उठाए हैं। कठोर मुँह वाले रौद्र रूपेण, छूरी, तूणीर, धनुष धारण किए हैं।

[नानायुधधराः सर्वे महावीरा भयङ्कराः।]
असङ्ख्याता महावीर्याः कालाञ्जनसन्निभाः।
सर्वायुधोद्यतकराः यमदूता भयानकाः॥ 86॥

वहाँ पर विभिन्न आयुधों को धारण करने वाले, सभी महावीर और भयंकर, बड़ी संख्या में महाबलशाली, काले काजल जैसे दिखाई देने वाले समस्त आयुधों को उठाए भयानक यमदूत रहते हैं।

अनेन परिहारेण[14] संवृत्तं घोरदर्शनम्।
धर्मं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम्॥ 87॥
निर्भर्त्सयति चात्यन्तं यमस्तान्पापकर्मणः।
चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयेत्[15]॥ 88॥

इस तरह अनेकानेक परिहारों-सेवकों से घिरे हुए, भयानक दिखाई देने वाले धर्मराज और भीषण रूपवाले चित्रगुप्त को वे पापी लोग देखते हैं। यमराम उन पापियों को बहुत फटकार लगाते हैं। वहीं पर चित्रगुप्त धर्मसम्मत वचनों से समझाते रहते हैं।

चित्रगुप्त उवाच —

भो भो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारिणः।
गर्विता रूपवीर्य्येण परदारावमर्द्दकाः॥ 89॥
यत्स्वयं क्रियते कर्म तदिदं भुज्यते पुनः।
तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम्॥ 90॥
इदानीं किं प्रलप्यध्वं पीड्यमानाः स्वकर्मभिः।
भुज्यत्वं स्वानि कर्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित्॥ 91॥

---

14. 'परिचारेण' इति पाठः।
15. तुल.— शिव. उमा. 8, 1-59

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

चित्रगुप्त कहते हैं— अरे पापियो! पराये द्रव्यों का हरण करने वालो! अपने रूप एवं बल के मद में चूर होकर परायी स्त्रियों के साथ रमण करने वालो! तुमने जो भी ऐसे कर्म किए हैं, तो उनका दण्ड भी भोगना चाहिए। तुम लोगों ने क्यों अपना विनाश करने के लिए पापकर्म किए! अपने ही किए कर्मों से पीड़ित होने पर अब क्यों प्रलापकर रहे हो? अब तो अपने कर्मों को भोगिये, इसमें अन्य किसी का क्या दोष बताना है।

स्कन्दोवाच —

ये ते च पृथिवीपालाः सम्प्राप्तास्तत्समीपतः।
स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्कर्मबलगर्विताः॥ 92॥
[तानपि क्रोधसंयुक्तश्चित्रगुप्तो महाप्रभुः।
संशिक्षयति धर्मज्ञो यमराजानुशिक्षया॥[16]]

इसी तरह वे राजा भी चित्रगुप्त के समीप पहुँचे जो अपने बल पर बहुत गर्व करते रहे हैं और घोरतम दुष्कर्म में लगे रहे हैं। क्रोधित होकर महाप्रभु चित्रगुप्त ने उन राजाओं को यमराज के निर्देशानुसार संक्षिप्त में उलाहना और सीख दी।

चित्रगुप्तवचनं —

भो भो नृपा! दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः।
अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम्॥ 93॥
राज्यभोगेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः।
यद्दण्डिताः फलं तस्य भुज्यतामधुना नृपाः॥ 94॥

चित्रगुप्त कहते हैं— "अरे जनता का विनाश करने वाले दुराचारी राजाओ! अल्प समय के राज्य के निमित्त तुम लोगों ने पाप का मार्ग क्यों ग्रहण किया? हे राजाओ! राज्यभोग के लोभ-मोह में तुम लोगों ने अन्याय से प्रजाजनों को दण्डित किया है, अब तुम्हें उसका फल भोगना पड़ेगा।

क्व तद्राज्यं कलत्रं यदर्थमशुभं कृतम्।
तत्सर्वं सम्परित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः॥ 95॥ 8, 8
पश्यामि तद्बलं नष्टं येन विध्वंसिताः प्रजाः।
यमदूतैर्योज्यमानामधुना कीदृशं भवेत्॥ 96॥

---

16. मूलपाठे नोपलभ्यते। शिवपुराणात् (उमा. 8, 5)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

"अब तुम्हारा वह राज्य कहाँ हैं ? कहाँ तुम्हारी वे रानियाँ हैं जिनके लिए तुम लोगों ने अशुभ कर्मों का आश्रय लिया। उन सभी को छोड़कर तुम यहाँ अकेले ही आए हो। मैं देख रहा हूँ कि जिस बल से तुमने जनता का विनाश किया, वह सभी कुछ नष्ट हो गया है। यहाँ तुम इन यमदूतों से बँधे हों, अब तुम्हारा क्या होगा ?"

स्कन्दोवाच —

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपलब्धा यमेन ते।
स्वानि कर्माणि शोचन्ति तूष्णीं तिष्ठन्ति पार्थिवाः ॥ 97 ॥
इति धर्मं समुद्दिश्य नृपाणां धर्मराड्यमः।
तत्पापपङ्कशुद्ध्यर्थमिदं दूतान्ब्रवीति च ॥ 98 ॥

स्कन्द (अगस्त्य के प्रति) कहते हैं कि इस प्रकार अनेक उपदेशमूलक वचनों से उलाहना दिए जाने पर वे राजागण अपने-अपने कर्मों पर विचार करते हुए चुप हो गए। इस तरह उन राजाओं के कर्मों का विवरण देकर धर्मराज यम ने उनके पापरूपी कीचड़ की शुद्धि के प्रयोजन से यमदूतों को निर्देशित किया।

यमराज उवाच —

भो भोश्चण्ड! महाचण्ड! गृहीत्वा नृपतीन्बलान्।
नियमेन विशुद्ध्यध्वं क्रमेण नरकाग्निषु ॥ 99 ॥

यमराज ने कहा—"हे चण्ड! हे महाचण्ड! मेरे सामने खड़े इन पापी राजाओं को पकड़कर क्रम से नरक की अग्नियों में तपा-तपाकर शुद्ध करो।"

स्कन्दोवाच —

ततः शीघ्रं समादाय नृपान्सङ्गृह्य पादयोः।
भ्रामयित्वा तु वेगेन निक्षिप्योर्ध्वं प्रगृह्य च ॥ 100 ॥

स्कन्द बोले कि यमराज के ऐसा कहते ही चण्ड-महाचण्ड ने एक राजा को पाँवों से पकड़ लिया और चारों ओर घूमाते हुए ऊपर की ओर फेंका और पुनः पकड़ लिया।

सर्वप्रायेण महताऽतीव तप्ते शिलातले।
आस्फालयन्ति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमान् ॥ 101 ॥

आरम्भ में राजा को वहाँ अत्यधिक तपी हुई एक चट्टान के ऊपर वैसे ही पटका जैसे कोई बड़ा पेड़ वज्र के आघात से गिर पड़ता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ततः स रक्तं श्रोत्रेण स्रवते जर्जरीकृतः।
निःसञ्ज्ञश्च स तदा देही निश्चेष्टः सम्प्रजायते॥ 102॥

इस प्रकार पटकने से उस राजा के कान से रक्त बहने लगा और वह घायल हो गया। वह अचेतन और चेष्टाशून्य हो गया।

ततः स वायुना स्पृष्टः स तैरुज्जीवितः पुनः।
ततः पापविशुद्ध्यर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे॥ 103॥

इस बीच, किंचित हवा लगने से वह पुनः चेतन हुआ तो उसके पापों को शुद्ध करने के लिए उसे ले जाकर नरक-सागर में डाला।

नरकार्णववर्णनम् —

अष्टाविंशतिसङ्ख्याभिः क्षित्यधः सप्तकोटयः।
सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थितः[17]॥ 104॥

यह जानना चाहिए कि उक्त नरक पृथ्वीतल के नीचे सात करोड़ और अट्ठाईस योजन पर सातवें तल के अन्त में बहुत अन्धकार में स्थित है।

घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता।
अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी॥ 105॥

उस नरक की पहली कोटि घोरा नाम की है। उसके नीचे सुघोरा कोटि स्थित है। तीसरी कोटि अतिघोरा, चौथी महाघोरा और पाँचवीं कोटि घोररूपा है।

षष्ठी तलातलाख्या सप्तमी च भयानका।
अष्टमी कालरात्रिश्च नवमी च भयोत्कटा॥ 106॥

छठवीं कोटि तलातला नामक है और सातवीं कोटि भयानक है। आठवीं कालरात्रि है तथा नवीं कोटि भयोत्कट नामक है।

[दशमी तदधश्चण्डा महाचण्डा ततोऽप्यधः।
चण्डकोलाहला चान्या प्रचण्डा चण्डनायिका॥]
पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका।
कराला विकराला च वज्रा विंशतिमा स्मृता॥ 107॥

उसके नीचे नरक की दसवीं कोटि चण्डा है और उसके नीचे महाचण्डा नामक ग्याहवीं कोटि है। इसके बाद चण्डकोलाहला, आगे की अन्य कोटियों में

---

17. 'यमस्स्वतस्याधो घोरे विषमे तमसि स्थिताः' इति मूलपाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

प्रचण्डा, चण्डनायिका, पद्मा, पद्मावती, भीता, भीमा, भीषणनायिका, कराला, विकराला और बीसवीं कोटि वज्रा जाननी चाहिए।

त्रिकोणा पञ्चकोणा च सुदीर्घा चाखिलार्तिदा।
समा भीमबलात्युग्रा दीप्तप्रायेति चाष्टमी[18] ॥ 108 ॥

इसके बाद त्रिकोणा, पञ्चकोणा, सुदीर्घा, अखिलार्तिदा, समा, भीमबलात्, उग्रा और आठवीं दीप्तप्राय कोटि हैं।

इति ते नामतः समुद्दिष्टा घोराः नरककोटयः।
अष्टविंशतिरेवैताः पापानां यातनात्मिकाः ॥ 109 ॥

उक्त नामों वाली घोर नरक की श्रेणियों का वर्णन किया गया है— ये अट्ठाईस हैं जिनमें पापियों को यातनाएँ दी जाती हैं।

तासां क्रमेण विज्ञेयाः पञ्चपञ्चैव नायकाः।
प्रत्येक सर्वकोटीनां नामः ते निबोधत[19] ॥ 110 ॥

उनमें से क्रमानुसार पाँच-पाँच प्रमुख यातनाएँ होती हैं। उक्त सभी कोटियों के अनुसार उन नरकों के नाम जानने चाहिए।

रौरवादि नरकनामानि —

रौरवः प्रथमस्तेषां रुदनित यत्र देहिनः।
महारौरवपीडाभिर्महान्तोऽपि रुदन्ति च ॥ 111 ॥
ततः शीतस्तथा चोष्णं पञ्चाद्या नायक स्मृताः।
सुघोरः सुमहातीक्ष्णाः पद्मसञ्जीवन स्मृतः ॥ 112 ॥

उन नरकों में रौरव प्रथम नरक है जहाँ पर पहुँचकर देहधारी विलाप किया करते हैं। महारौरव की यातनाओं से बड़े-बड़े भी रुदन करने लगते हैं। वहाँ के शीतल और उष्ण आदि पाँच नायक जानने चाहिए जिनमें सुघोर, सुमहातीक्ष्ण और पद्मसंजीवन कहे गए हैं।

तथान्यनरकं नामरूपाणि—

महानासो विलोमश्च सुरहीमश्च कङ्कटः।
तीव्रवेगः करालश्च विकरालः प्रकम्पनः ॥ 113 ॥

---

18. 'सप्तभूमाष्ट भौमा च दीप्ता मायेति चाष्टमी' इति पाठः।
19. तुल.— शिवपुराण उमा. 8, 1-24

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

महापद्मः सुवक्त्रश्च कालवक्त्रः प्रमर्दनः।
सूचीमुखः सुनेमिश्च खादकः सुप्रपीडनः॥ 114॥
कुम्भीपाकसुपाकश्च कृतकश्चातिदारुणः।
अङ्गारराशिभवनमसृक्पूरहृदयस्तथा ॥ 115॥

अन्य नरकों में महानास, विलोम, सुरहीम और कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन, महापद्म, सुवक्त्र, कालमुख, प्रमर्दन, सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रपीडन, कुम्भीपाक, सुपाक, कृतक, अतिदारुण, अंगारराशि भवन और असृक्पूरहृदय (असृक्प्रहित) हैं।

तीक्ष्णतुण्डश्च शकुनीर्महासंवर्तकः क्रतुः।
तप्तदन्तं पङ्कलेपं प्रतिमांसोद्रवस्त्रपुः॥ 116॥
उच्छ्वासश्च निरुच्छ्वासः सुदीर्घः कूटशाल्मलिः।
दुरिष्टः सुमहावादः प्रवाहः सुप्रतापनः॥ 117॥
ऋक्षमेषीवृषः शाल्मः व्याघ्रसिंहगजाननः।
श्वसूकराजमहिषघूककोकवृकाननः[20] ॥ 118॥

इसी प्रकार तीक्ष्णतुण्ड, शकुनी, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तदन्त, पंकलेप, प्रतिमांस, उपद्रव, त्रपु, उच्छ्वास, निरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह और सुप्रतापन ऋक्ष (रींछ), मेष (भेड़ा), वृष, शाल्म, व्याघ्र, सिंह तथा हाथी के समान मुख वाले, श्वान, सूकर, बकरा, महाभैंसा, घुग्घा, चकवा और भेड़िया के मुख वाले नरक हैं।

ग्राहकुम्भीनसक्राख्याः सर्पकूर्मश्च वायसाः।
गृध्रोलूकजलौकाख्याः शार्दूलकपिकुक्कुटाः॥ 119॥
मण्डूकः पूतिवक्त्रश्च रक्ताक्षः पूतिमृत्तिकः।
कणधूम्रस्तथाग्निश्च कृमीगन्धिवपुस्तथा॥ 120॥
अग्नीध्रश्चाप्रतिष्ठश्च रुधिराभः श्वभीजनः।
लालाभक्षान्त्रभक्षौ च सर्वभक्षः सुदारुणः॥ 121॥

इसी तरह मगर, कुम्भीनस व घड़ियाल के नाम वाले, सर्प, कछुआ, कौआ, गिद्ध, उलूक, जौंक जैसे नाम वाले, चीता, बन्दर, मुर्गा, मेंढक, दुर्गन्धित मुख वाले,

---

20. 'अश्वसूकरराजान वृषमेषवृकाननः' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

रक्तिम आँख वाले, कीचड़ से सने हुए, कणधूम्र, अग्रीध, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभीजन, लालाभक्ष, आँतभक्ष, सर्वभक्ष और सुदारुण नरक हैं।

कण्टकः सुविशालश्च विकटः कटपूतनः।
अम्बरीषः कटहाश्च कष्टा वैतरणी नदी॥ 122॥
सुतप्तलोहशयन एकपादः प्रपूरणः।
असितालवनं घोरमस्थिभङ्गः सुपूरणः॥ 123॥
विलातसोऽसुयन्त्रोऽपि कूटपाशः प्रमर्द्दनः।
महाचूर्णोऽसुचूर्णोऽपि तप्तलोहमयं तथा॥ 124॥

अन्य नरकों में कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटहा, कष्टा, वैतरणी नदी, सुतप्तलोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, असितालवन, घोर, अस्थिभंग, सुपूरण, विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्द्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण और तप्तलोहमय नाम के भी नरक हैं।

पर्वतः क्षुरधाराख्यः तथा यमलपर्वतः।
मूत्रविष्ठाश्रुकूपश्च क्षारकूपश्च शीतलः॥ 124॥
मुसलोलूखलं यन्त्रं शिलाशकटलाङ्गलम्।
तालपत्रासिगहनं महाशकटमण्डपम्॥ 125॥
सम्मोहमस्थिभङ्गश्च तप्तश्चलमयोगुडम्।
बहुदुःख महाक्लेशः कश्मलं शमलं मलम्॥ 127॥

ऐसे ही पर्वत, क्षुरधारा नामक, यमलपर्वत, मूत्रकूप, विष्ठाकूप, अश्रुकूप, क्षारकूप, शीतलकूप, मुसल-ओखली यन्त्र, पाषाणछकड़ा, हल, तालपत्र, असिगहन, महाशकट- मण्डप, सम्मोह, हड्डीतोड़, तप्त, चल, अयोगुड़, बहुदुःख, महाक्लेश, कश्मल, शमल और मल नामक नरक हैं।

हालाहलो विरूपश्च स्वरूपश्च यमानुगः।
एकपादस्त्रिपादश्च तीव्रश्चाचीवरं तमः॥ 128॥
अष्टाविंशतिरेत्येते क्रमशः पञ्चकारः स्मृताः।
कोटीनामनुपूर्व्येण पञ्च पञ्चैव नायकाः॥ 129॥
रौरवाद्यमपीड्यन्तं नरकाणां शतं स्मृतम्।
चत्वारिंशत् समधिकं[21] महानरकमण्डलम्[22]॥ 130॥

---

21. 'चत्वारिंशच्छतं प्रोक्तं' इति पाठः।
22. तुल.— शिव. उमासंहितायां 8, 25-44

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

हालाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, अचीवर और तम। ऐसे अट्ठाईस नरक हैं जो क्रमशः पाँच आकार वाले कहे गए हैं। करोड़ नामों के क्रम के अनुसार इनके पाँच-पाँच नायक हैं। यम द्वारा पीड़ित किए जाने वाले रौरव नाम वाले सौ नरक हैं और चालीस से अधिक महानरक मण्डल बताए गए हैं।

नरकगतिवर्णनम् —

एषु पापाः प्रपीड्यन्ते नराः कर्मानुरूपतः।
यातनाभिर्विचित्राभिः आत्मकर्मक्षयाद्भृशम्॥ 131॥

उपरोक्त नरकों में लोगों को अपने-अपने कर्मों के अनुसार पीड़ित किया जाता है। वहाँ उनके अपने कर्मों के क्षय होने तक विविधानेक प्रकार की यातनाओं को दिया जाता है।

स्वमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ धास्यन्ति धातवः।
तत्र पापक्षयात् पापाः शोध्यन्ते नरकाग्निषु॥ 132॥

जिस प्रकार धातुओं से उनका मैल अलग करने के लिए उनको आग में तपाया जाता है, वैसे ही नरक की अग्नि में पापियों के पापकर्मों का शोधन किया जाता है।

सुगाढहस्तयोर्बद्धा तप्तशृङ्खलया नराः।
महावृक्षाग्रशाखासु लम्ब्यन्ते यमकिङ्करैः॥ 133॥

पापी लोगों के हाथ तपी हुई जंजीरों से अच्छी तरह से बाँधकर यम के सेवक महावृक्ष की शाखाओं के आगे लटका देते हैं।

ततस्ते सर्वयत्नेन क्षिप्ता लोड्यन्ति किङ्करैः।
दोल्यन्तश्चातिवेगेन विसञ्ज्ञा यान्ति योजनम्॥ 134॥

इस प्रकार से अनेकविध प्रताड़ित करने पर वे पापी लोग यमदूतों से डरते हैं और अचेतन हो जाते हैं। ऐसी ही मूर्च्छा की स्थिति में पापियों को लुढ़काते हुए वे अनेक योजनों तक लेकर जाते हैं।

अन्तरिक्षस्थितानां तु लोहभारशतं पुनः।
पादयोर्बध्यते तेषां यमदूतैर्महाबलैः॥ 135॥

इसी प्रकार आकाश के तले अधर में लटके हुए उन पापियों के पाँवों में महाबली यमदूत दो हजार पल लोहा बाँध देते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam, Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तेन भारेण महता प्रभृशं ताडिता नराः।
ध्यायन्ति स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः॥ 136॥

उस भारी लोहभार से पीड़ित होकर वे लोग अपने जीवनकाल के दुष्कर्मों का बार-बार स्मरण करके निश्चल रूप से सहन करते रहते हैं।

ततोऽङ्कुशैरग्निवर्णैः लोहदण्डैः सकण्टकैः।
हन्यन्ते किङ्करैर्घोरैः समन्तात् पापकर्मिणः॥ 137॥

तब उन पापकर्मियों को आग से तपाये हुए काँटेदार लोहे के दण्डों से भयानक यमदूतों द्वारा चारों ही ओर से पीटा जाता है।

ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नैरपि विशेषतः।
समन्ततः प्रलिप्यन्ते तीव्रेण तु पुनः पुनः॥ 138॥

ऐसी निरन्तर पिटाई के बाद विशेषकर खौलते हुए तेज क्षार द्रव्यों को उन पापियों के पूरे शरीर पर तेजी से बार-बार लेपन किया जाता है।

द्रुतेनात्यन्तलिप्तेन समस्ताङ्गाः जर्जरीकृताः।
पुनर्विदार्य्य चाङ्गानि शिरसः प्रभृति क्रमात्॥ 139॥

तेजी से किए गए इस लेपन से उन पापियों के सारे अंग जर्जर हो जाते हैं। तदोपरान्त सिर से लेकर अंगों को क्रमशः चीर दिया जाता है।

वार्ताकवत् प्रपच्यते तप्ततैले कटाहके।
विष्टापूर्णे तथा कूपे क्रमीणां निचये पुनः॥ 140॥

खौलते हुए तेल के कड़ाहों में उनको बैंगन की तरह भूना जाता है। इसके बाद, विष्ठा से भरे हुए और रेंगते हुए कीड़ों के ढेर में डाल दिया जाता है।

मेदोऽसृक्पूयपूर्णायां वाप्यां प्रक्षिप्यते पुनः।
भक्ष्यन्ते क्रमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः॥ 141॥

यही नहीं, उनको मेद, रक्त और पीब से भरी हुई बावड़ियों में भी बारी-बारी फैंका जाता है। वहाँ उनको कीड़े व लोहे जैसी मजबूत चोंच वाले कौए खाते रहते हैं।

श्वभिर्द्दंशैर्वृकैर्व्याघ्रै रौद्रैश्च विकृताननैः।
पच्यन्ते मत्स्यवच्चापि प्रदीप्ताङ्गारराशिषु॥ 142॥

कहीं पर उनको कुद्ध कुत्ते, कहीं डाँस मच्छर, भेड़िये और रौद्र बाघ खाते हुए विकृत मुँह वाले कर डालते हैं। कहीं-कहीं उनको जलते हुए अंगारों के ढेर पर मछली की तरह पकाया जाता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

भिन्नाः शूलै सुतीक्ष्णैश्च नराः पापेन कर्मणा।
तैलयन्त्रेषु चाक्रम्य घोरैः कर्मभिरात्मनः॥ 143॥
तिला इव प्रपीड्यन्ते चक्राख्ये जनपिण्डकाः।[23]
भ्रज्यन्ते चातपे तप्ते लोहभाण्डेष्वनेकधा॥ 144॥

पापकर्मों के कारण कहीं पर वे पुरुष तीखे शूलों से छेदित किए जाते हैं। कहीं पर ऐसे कर्म करने वालों को तेल निकालने वाले चक्र नामक यन्त्र (कोल्हू) में तिलों के पिण्ड की भाँति डालकर पेरा जाता है। कहीं पर बहुत ही तपाए हुए लोहे के भाण्डों में डालकर अनेकविध जलाया जाता है।

तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनः पुनः।
बहुशोत्पच्यते जिह्वा प्रपीड्योरसि पादयोः॥ 145॥
यातनाश्च महत्योऽत्र शरीरस्यापि सर्वतः।[24]

तपे हुए तेल से परिपूर्ण कड़ाहों में उनको बार-बार डाला डाला जाता है और जलाया जाता है। उनकी (झूठ बोलने वाली जिह्वा) और (गलत रास्ते चलने वाले) पाँवों को पकाया जाता है। इस प्रकार मृतात्मा के शरीर को समस्त नरकों में ले जाकर भारी-भारी यातनाएँ दी जाती हैं।

मिथ्यागमं प्रवक्तुश्च जिह्वास्याच्चाति निर्गता॥ 146॥
जिह्वाकोशार्द्धविस्तीर्णैर्हलैस्तीक्ष्णैः प्रपीड्यते।[25]

जो पुरुष मिथ्या शास्त्रों के सम्बन्ध में प्रवचन करता है, वह अतिजिह्वा नामक नरक में जाता है। ऐसे अपराधी को आधी जीभ के समान फल वाले हलों से कष्ट पहुँचाया जाता है।

निर्भर्त्सयति ये क्रूरो मातरं पितरं गुरुम्॥ 147॥
तेषां वक्त्र जलूकाभिः मुखमापूर्य सिच्यते।[26]
ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण च पुनः पुनः॥ 148॥

जो क्रूर पुरुष अपने माता, पिता और गुरु को अनर्गल कहते हैं, उनको उलटकर मुँह को जौंकों से भर-भरकर सींचा जाता है। उनको खौलते हुए खारे द्रव्य में डालकर बार-बार ताँबे से तपाया जाता है।

---

23. 'पिण्डैरिवाक्रम्य घोरैः कर्मभिरात्मनः॥ तिलवत् पीड्यन्ते घोरै चक्राख्ये नरके नराः' इति पाठः।
24. 'सुदर्शेन सुतप्तेन प्रपीड्योरसि पाचतः' इति पाठः।
25. 'मिथ्यागमं प्रवृत्तस्तु द्विजिह्वाख्ये च गच्छति' इति पाठः। तुल.— शिव. उमा. 10, 1
26. 'विष्ठाभिः कृमिमिश्राभिर्मुखमायूर्य हन्यते' इति पाठः। तुल.— उपर्युक्त 10, 2

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

घृतानात्यन्ततप्तेन तदा तैलेन तन्मुखम्।
इतस्ततः पीडयित्वा भृशमापूर्य हन्यते॥ 149॥

अत्यन्त तपे हुए घी और तेल को उनके मुख में डालकर पीड़ित किया जाता है और इस प्रकार उन दुष्टात्माओं को पीटा जाता है।

विष्टाभिः कृमिभिश्चाभिः क्वचित्क्वचित्।
परिष्यत्यजन्ति चात्युग्रां प्रदीप्ता लोहशाल्मलीम्॥ 150॥

वहाँ पर कहीं-कहीं मल और कीड़ों से भरा हुआ मैला तेजी से छोड़ा जाता है और आगे जलते हुए लोहे के सेमल के पेड़ से बाँध दिया जाता है।

हन्यन्ते पृष्ठदेशे च पुनर्दीप्तैर्महाघनैः।
दन्तुरेणातिकुण्ठेन क्रकचेन बलीयसा॥ 151॥

यही नहीं, तपाए हुए बड़े-बड़े घनों से पीठ पर वार-प्रहार किए जाते हैं। लम्बे और अति ही कुण्ठित सबल दाँतों वाले आरों से चीरा जाता है।

शिरःप्रभृति पीड्यन्ते घोरैः कर्मभिरात्मजैः।
खाद्यन्ते च स्वमांसानि पीयते शोणितं स्वकम्॥ 152॥

उन जीवात्माओं के घोर दुष्कर्मों के फलस्वरूप सिर से लेकर पाँव तक पीड़ित किया जाता है। उनको विवश किया जाता है कि वे स्वयं का मांस सेवन करें और अपना ही रक्तपान करें।

अन्न पानं न दत्तं यै सर्वदा स्वात्मपोषकैः।
इक्षुवत्ते प्रपीड्यन्ते जर्जरीकृत्यमुद्गरैः॥ 153॥

जिन लोगों ने जीवनकाल में सर्वदा अपना ही पोषण किया हो और किसी को भी अन्न और जल का दान नहीं किया हो, उनको गन्ने की तरह मुद्गरों से पीटते-पेरते हुए जर्जर कर दिया जाता है।

असितालवने घोरे छिद्यन्ते खण्डखण्डशः।
सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्तप्तशूलाग्ररोपिताः ॥ 154॥

तदोपरान्त उनको असितालवन नामक घोर नरक में ले जाकर अंगों को खण्ड-खण्ड कर दिया जाता है। अंग-प्रत्यंग में सुइयाँ चुभो-चुभोकर उनको तप्त शूल के आगे चढ़ा दिया जाता है।

सञ्चाल्यमाना बहुशः क्लिश्यन्ते च म्रियन्ति च।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

[तथा च तच्छरीराणि सुखदुःखसहानि च]।
देहादुत्पाट्य मांसानि भिद्यन्ते स्वैश्च मुद्गरैः॥ 155॥
दन्तुराकृतिभिर्घोरैर्यमदूतैर्बलोत्कटैः ।

वहाँ इस तरह अनेक प्रकार से पीड़ित करने से वे बहुत दुःखी होते हैं किन्तु मृत्यु को प्राप्त नहीं होते। इस तरह के पीड़ाप्रद चलन के दौरान उनके शरीर सारे ही दुःख-सुख सहन करते हैं और वे भयानक दाँतों वाले बलोत्कट यमदूत उनके शरीर से माँस को नोच-नोचकर मुद्गरों से पीटते हैं।

निरुच्छ्वासे निरुच्छ्वासास्तिष्ठन्ति नरके चिरम्॥ 156॥
उत्ताड्यन्ते तथोच्छ्वासे बालुकासदने नराः।
रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधैर्वधैः॥ 157॥

जो निरुच्छ्वास नामक नरक है, वहाँ पर वे दुष्ट प्राणी को बिना श्वास लिए चिरकाल तक रखा जाता है। यदि वे श्वास लेने की चेष्टा करते हैं तो उनको रेत के बने भवनों में ले जाकर रखा जाता है (ताकि श्वास के साथ रेत भी नाक में चली जाए)। रौरव नामक नरक में रोते हुए प्राणियों को अनेक प्रकार से पीड़ित करते हुए वध तक कर दिया जाता है।

महारौरवपीडाभिर्महान्तोऽपि रुदन्ति च।
पादेचान्यो गुदेचोष्णोः पाण्योश्चोरसि मस्तके॥ 158॥[27]
निहन्यन्ते घनैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहशङ्कुभिः॥

जो महारौरव नामक नरक है, वहाँ पर बहुत मर्मान्तक पीड़ा दी जाती है और इससे धैर्यशाली लोग भी रोना-धोना मचा देते हैं। पाँव सहित अन्य अंगों, गुदा, हाथ, उर और मस्तक को तीखे घनों से पीटा जाता है और अच्छी तरह तपे हुए लोह शंकु चुभोए जाते हैं।

सुतप्तबालुकायां तु प्रयोज्यन्ते मुहुर्मुहुः॥ 159॥
जन्तुपङ्के भृशं तप्ते क्षिप्ताः क्रन्दन्ति विस्वरम्।[27अ]

वहाँ पर अच्छी तरह से तपी हुई बालू में बारम्बार गिराया जाता है। उसमें तपा-तपाकर जन्तुओं वाले कीचड़ में डाला जाता है तो वे जोर-जोर से चिल्लाने लगते हैं।

---

27. 'पत्सु वक्त्रे गुदे मुण्डे नेत्रयोश्चैव मस्तके' इति पाठः।
27अ. तुल.— शिव. उमासंहितायां 9, 1-30

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तेन तेनैव रूपेण ताड्यन्ति पारदारिकाः ॥ 160 ॥
गाढमालिङ्ग्यते नारीं ज्वलन्ति लोहनिर्मिता।
पूर्वाकाराश्च पुरुषाः प्रज्वलन्ति ततस्ततः ॥ 161 ॥
दुश्चारिणीं स्त्रियं गाढमालिङ्गन्ति रुदन्ति च।[28]
किं प्रधावन्ति वेगेन न ते मोक्षोऽस्ति साम्प्रतम् ॥ 162 ॥
लाघितस्ते यथा भर्ता पापं भुक्ष्व तथा पुनः।

इसी प्रकार जिन्होंने पराई स्त्री के साथ रमण किया हो, उनको उसी रूप में लोहे से निर्मित और तपाई गई स्त्री से गाढ़ा आलिंगन करवाकर पीटा जाता है। ऐसे व्यक्ति उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री को आलिंगन कर जलते हुए बहुत प्रकार से रोते हैं। वे यह कहते रहते हैं— "अब तुम वेग से क्यों भागती हो ? अब तुम इससे यहाँ पर मुक्त नहीं हो सकती, तुमने अपने पति के अनुशासन का उलंघन करके बारम्बार पाप को भोगा है।"

लोहकुम्भे विनिःक्षिप्ताः तापिधानैः शनै शनैः ॥ 163 ॥
महाग्निना प्रपच्यन्ते स्वपापैरेव मानवाः।
क्षोद्यन्तेलूखलेजस्त्र[29] प्रपीड्यन्ते शिलासु च ॥ 164 ॥

जो लोहकुम्भ नामक नरक होता है, उसमें महा अग्नि प्रज्वलित रहती है। उसमें डाले गए पापाचारी मानव अपने दुष्कर्मों के फलस्वरूप धीरे-धीरे जलते रहते हैं। उनको ओखली में डाला जाता है और शिला से पीटकर शोधित किया जाता है।

क्षिप्यन्ते चान्धकूपेषु दृश्यन्ते भ्रमरैर्भृशम्।
कृमिभिर्भिन्नसर्वाङ्गाः शतशो जर्जरीकृताः ॥ 165 ॥

जब उनको अन्धकूप नामक नरक में डाला जाता है तो वहाँ उड़ने वाले भ्रमर उनको खूब डसते हैं। इसी प्रकार वहाँ कृमियों द्वारा समस्त अंगों को सौ-सौ स्थानों पर क्षत-विक्षत कर दिया जाता है।

सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यन्ते तदनन्तरम्।
महाज्वालेऽत्र नरके पापाः [30]प्रक्षिप्यते भृशम् ॥166 ॥

---

28. तुल.— शिव. उमा. 10, 6-7
29. 'दृढं रज्ज्वादिभिर्बद्ध्वा' इति पाठः।
30. 'क्रन्दन्ति दुःखिताः' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ऐसे जर्जर जीवात्मा को इसके बाद तीक्ष्णक्षार के कुओं में डाला जाता है। यह महाज्वाल नरक होता है। इसमें डाले गए पापी विदीर्ण हो जाते हैं।

इतश्चेतश्च धावन्ति दह्यमानास्तदर्चिषा।
पृष्ठे चानीय [31]तुण्डाभ्यां विन्यस्तस्कन्धयोजिते॥ 167॥
तयोर्मध्येन वाकृष्य बाहुपृष्ठेन मध्यतः (गाढते!)।
बद्धाः परस्परं सर्वे सुभृशं पाशरज्जुभिः॥ 168॥[32]
पिण्डबद्धाधशल्येव भ्रमरास्तीक्ष्णलोहजाः।

वहाँ दीप्तिमान अग्नि से दग्ध होकर वे पापी इधर-उधर भागा करते हैं। इसी प्रकार उनको यमदूतों द्वारा मुखों से पीठ में पकड़कर कन्धों के सहारे से बाहु और पेट के बीच में से खींचा जाता है। पाश और रस्सियों से आपस में जोर से बाँधा जाता है। उनको पिण्ड की तरह बाँध दिया जाता है और नीचे शल्यों, लोहे के तीखे-तीखे भ्रमरों को चुभाया जाता है।

मानिनां क्रोधिनां चैव तस्कराणां च दारुणाः॥ 169॥
बद्धपिण्डास्तु दृश्यन्ते महाज्वाले तु यातनाः।[33]

अभिमानियों, क्रोधियों, तस्करों और दारुणकर्म करने वालों को पिण्ड की तरह बाँध दिया जाता है। इस प्रकार वे महाज्वाल की यातनाओं को देखते हैं।

रज्जुभिर्वेष्टिताङ्गाश्च प्रलिप्तकर्दमेन च॥ 170॥
करीषतुषवह्नौ च पच्यन्ते न म्रियन्ति च।

रस्सियों से बाँधे गए और समस्त अंगों में कीचड़ से सने हुए वे दुष्ट गोहरी और भूसे की आग में जलाए जाते हैं किन्तु उनके प्राण नहीं निकलते हैं।

सुतीक्ष्णक्षारतोयेन शर्करासु च सुतीक्ष्ण॥ 171॥
आस्फाल्य शतशः पापाः पच्यन्ते तृणवत्ततः।[34]

दुष्टात्माओं पर वहाँ अति ही तेज क्षार का पानी और बहुत गर्म रेती-कंकड़ सौ-सौ बार डाले जाते हैं और उनके घास की तरह जलाया जाता है।

शरीराभ्यन्तरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः॥ 172॥

---

31. 'जङ्घे द्वे विन्यस्ते स्कन्धयोरपि' इति पाठः।
32. तुल.— शिव. उमा 9, 34-39
33. 'पिण्डबद्ध स्मृतो याम्ये महाज्वाले च यातनाः' इति पाठः।
34. 'आपापं संक्षयात् पापा मृष्यन्ते चन्दना यथा' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

भक्ष्यन्ते तीक्ष्णवदनैः आदेह भक्षयाद्भृशम्।

वे पापी लोग शरीर के भीतर तक पड़े और पहुँचे हुए कीड़ों से निरन्तर खाए जाते हैं। वे अपने तीखे-तीखे मुखों से खाते हैं और खाते-खाते विदीर्ण करते जाते हैं।

कृमीणां निचये क्षिप्ताः पूतिमांसस्य राशिषु॥ 173॥
तिष्ठन्त्युद्विग्नहृदयाः पर्वताभ्यां निपीडिताः।

उनको कृमियों के बीच डाला जाता है। सड़े हुए माँस के ढेर में डाला जाता है। इस प्रकार वे पर्वतों वाले नरक में उद्विग्न-हृदय होकर रहते और पीड़ित किए जाते हैं।

सुतप्त वज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते॥ 174॥
अधोमुखोर्ध्वपादाश्च धृतास्तप्यन्ति वह्निना।

उनके पूरे शरीर पर खौलता हुआ वज्रलेप लगाया जाता है और उलटे मुख, ऊपर पाँव पकड़कर आग में तपाया जाता है।

वदनान्त प्रविन्यस्तं सुप्रतप्तमयोगुलम्॥ 175॥
खादन्ति स्म पराधीनाः हन्यमानाश्च मुद्गरैः[35]।[36]

यही नहीं, उन दुष्टात्माओं के मुँह में तपा हुआ लोहगुल डाला जाता है और कहा जाता है— इसे खाओ। इस बीच, उनको मुद्गरों से पीटा जाता है।

शिवालयभञ्जकस्य दण्डमाह —

ये शिवायतनारामवापीकूपमठाश्रमान्॥ 176॥
विद्रवन्ति पापिष्ठा ये तत्र निवसन्ति च।
व्यायामोद्वर्तनाभ्यङ्ग स्नानपानादि भोजनम्॥ 177॥
क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति मदोद्धताः।
पेचिरे विविधैर्घोरैरिक्षुयन्त्रादिपीडनैः॥ 178॥
निरयाग्निषु पच्यन्ते यावदाचन्द्रतारकम्[37]।

जो लोग शिवालय, उद्यान, बावड़ी, कूप, मठ और आश्रम को नष्ट करके वहाँ पर निवास करने लगते हैं, वे पापी हैं। वहाँ पर मदमत्त और स्वाधीन होकर

---

35. 'वदनान्तः प्रविन्यस्तां सुप्रतप्तामयोगदाम्। ते खादन्ति पराधीनास्तैस्ताड्यन्ते च मुद्गरैः' इति पाठः।
36. तुल.— शिव. उमा. 9, 39-45
37. तुल.— शिव. उमा. 10, 3-5

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

व्यायाम करते हैं या उद्वर्तन-मसाज करते हैं, स्नान-पान और भोजन करते हैं अथवा क्रीड़ा, मैथुन, जूआ खेलते हैं, उनको नरक में अनेक प्रकार के ईखयन्त्रों (कोल्हू, चरखों) में डालकर पेरा जाता है। वे चाँद और तारों के विद्यमान रहने तक नरक की अग्नि में पकाये जाते हैं।

गुरोर्निन्दाश्रवणफलम् —

ये शृण्वन्ति गुरोर्निन्दां तेषां कर्णप्रपूर्यते ॥ 179 ॥
अग्निवर्णैरयः कीलैस्तप्तैस्ताम्रादिभिर्घनैः।
त्रपुसीसारकूटाद्भिः क्षीरेण जातुना पुनः ॥ 180 ॥
सतप्ततीक्ष्णतैलेन वज्रलेपेन वा ततः।
क्रमादापूर्य कर्णांस्तु नरकेषु च यातनाः ॥ 181 ॥

जो लोग गुरुदेव की निन्दा को सुनते हैं, उनके कानों को अग्नि में गर्म की गई लोहे अथवा सघन ताँबे की कीलों को ठोक दिया जाता है। यही नहीं, राँगा, पीतल, सीसे को गलाकर या गरम दूध अथवा लाख को पिघलाकर अथवा खौलते हुए तेल या वज्रलेप को कानों में क्रमशः भरकर नरक की यातना दी जाती है।

अनुक्रमेण सर्वेषु भवन्त्येते समन्ततः।
सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातनाः ॥ 182 ॥
भवन्ति धीराः प्रत्येकं शरीरेण कृतेन च।[38]

इस प्रकार अनुक्रम से नरक में चारों ही ओर घूमाया जाता है। वहाँ पर उनको समस्त इन्द्रियों अथवा शरीर से किए गए पापों की घोरतम यातनाएँ दी जाती हैं।

परस्त्रिस्पर्शादि फलम् —

स्पर्शलोभेन ये मूढा संस्पृशन्ति परस्त्रियम् ॥ 183 ॥
तेषामग्निवर्णाभिः सूचिभिः पूर्यते मुखम्।
ततः क्षारादिभिः सर्वैः शरीरमनुलिप्यते ॥ 184 ॥
यातना च महाकष्टाः सर्वेषु नरकेषु च।[39]

छूने के लोभ से जो मूढ़जन परायी स्त्रियों का स्पर्श करते हैं, उनके मुखों को आग जैसे वर्णवाली तपी हुई सूइयों से भर दिया जाता है। तदोपरान्त उनके पूरे शरीर पर

---

38. तुल.— शिव. उमा. 10, 8-11
39. तुल.— शिव. उमा. 10, 12-13

CENTRE FOR SHAIVA STUDIES Puducherry

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

क्षार आदि पदार्थों का लेपन किया जाता है। इस प्रकार सभी नरकों में महान कष्ट और यातनाएँ दी जाती हैं।

गुरोः कुर्वन्ति भ्रकुटिं क्रूरं चक्षुश्च ये नराः ॥ 185 ॥
परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धाः स्तब्धेन चक्षुषा।
सूचिभिरग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रेषु पूर्यते ॥ 186 ॥
क्षाराद्यैश्च क्रमात्सर्वे देहे सर्वाश्च यातनाः।[40]

जो व्यक्ति गुरु की ओर भृकुटि तानकर और क्रुद्ध होकर देखते हैं और पराई स्त्रियों की ओर ललचायी आँखों से देखते हैं, उनके नेत्रों में गर्म-गर्म कीलों को ठोका जाता है। तदनन्तर क्रम से उन पापियों के सारे शरीर पर क्षार आदि का लेपकर यातनाएँ दी जाती हैं।

नेवैद्योलङ्घनफलमाह —

देवाग्निगुरुविप्राणामनिवेद्य प्रभुञ्जतः ॥ 187 ॥
लोहकीलशतैस्तप्तैर्जिह्वास्यं च प्रपूर्यते।[41]
ततः क्षारेण लिप्तेन तैलताम्रादिभिः क्रमात् ॥ 188 ॥
शरीरेषु महाघोराश्चित्रा नरकयातनाः।

जो व्यक्ति देवता, अग्नि, गुरु, विप्र को भोग लगाए बिना स्वयं भोग का सेवन करता है, उसकी जिह्वा और मुख को सैकड़ों अग्नितप्त लोहे की शलाकाओं से भर दिया जाता है। इसके बाद उस पापी की देह को क्षारीय जल, तैल-ताँबा आदि से लेपित किया जाता है। इस प्रकार शरीर को महाघोर नरक में विचित्र प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं।

लोभवशात्शिवारापुष्पाणिसङ्ग्रह्यफलम् —

ये शिवारामपुष्पाणि लोभात्सङ्गृह्य पाणिना ॥ 189 ॥
जिघ्रन्ति गन्धलोभेन शिरसा धारयन्ति वा।
प्रपूर्यते शिरस्तेषां सुतप्तैर्लोहशङ्कुभिः ॥ 190 ॥
नासिका वाति बहुशैस्ततः क्षारादिभिः पुनः।[42]

---

40. तुल.— शिव. उमा. 10, 16-17
41. तुल.— शिव. उमा. 10, 18
42. तुल.— शिव. उमा. 10, 19-20

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जो लोग लोभ के वशीभूत होकर शिव के बगीचों से अपने हाथों से पुष्पों का चयन करते हैं और संग्रह करते हैं तथा उनको सुगन्ध के लोभ से सूंघते हैं अथवा सिर पर धारण करते हैं, उन पापियों के सिरों में सुतप्त लोहे के शंकुओं को ठोक दिया जाता है। इनमें से बहुतों की नासिका में क्षारादि भर दिए जाते हैं।

महात्मादीनां निन्दाफलम्—

ये निन्दन्ति महात्मानमाचार्यं धर्मदेशिकम्॥ 191॥
शिवभक्तांश्च ये मूढाः शिवधर्मं च शासनम्।
तेषामुरसि कण्ठे च जिह्वायां दन्तसन्धिषु॥ 192॥
तालुन्योष्ठे च नासिकायां मूर्ध्नि सर्वाङ्गसन्धिषु।
अग्निवर्णैः सुसन्तप्तैस्त्रिशिखैर्लोहशङ्कुभिः॥ 193॥

जो व्यक्ति महात्माओं, आचार्यों और धर्मोपदेशकों-तन्त्राचार्यों की निन्दा करते हैं और शिवभक्त होकर भी मूढ़ता से शिवधर्म और शिवशासन की आलोचना करते हैं, उन पापियों की छाती, कण्ठ, जीभ, दाँतों की सन्धियों, तालु, होठ, नासिका और अन्य सभी अंगों की सन्धियों में आग में अच्छी तरह तपाए हुए लोह के शंकुओं को ठोक दिया जाता है।

आलोड्यन्ते सुबहुशः स्थानेष्वेतेषु मुद्गरैः।
ततो महाग्नितप्तेन ताम्रेण त्रपुना पुनः॥ 194॥
तप्ततैलादिभि सर्वैः आपूर्यन्ते समन्ततः।
यातनाश्च महत्यो वै शरीस्याति सर्वतः॥ 195॥
निःशेषनरकेष्वेवं भवन्ति क्रमशः पुनः।[43]

ऐसे पापियों को इधर-उधर पटकते हुए मुद्गरों से पीटा जाता है। तदुपरान्त तेज आग में तपे हुए ताँबा और पीतल से दागा जाता है। खौलते तेल को डालकर पूरे ही शरीर को जलाया जाता है। इस प्रकार पूरे शरीर को भयानक यातनाएँ दी जाती हैं और उनको सम्पूर्ण नरकों में क्रमशः पुनः पुनः दण्डार्थ भेजा जाता है।

परद्रव्यग्रहणदीनां फलम् —

ये गृह्णन्ति परद्रव्यं पद्भ्यां विप्रं स्पृशन्ति च॥ 196॥
शिवोपकरणं गां च ज्ञानादि लिखितं च यत्।

---

43. तुल.— शिव. उमा. 10, 21-25

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

हस्तपादादिभिस्तेषामापूर्यन्ते समन्ततः ॥ 197 ॥
क्षारताम्रादिभिस्तप्तैर्दह्यन्तें बहुशः पुनः।
नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा देहयातनाः ॥ 198 ॥
भवन्ति बहुशः कष्टाः नराणां पापसम्भवाः।[44]

जो व्यक्ति पराये द्रव्य को अनधिकार ग्रहण करते हैं, ब्राह्मणों को पाँवों से छूते हैं तथा शिवपूजा की सामग्री, गाय और लिखे हुए ज्ञानग्रन्थों के प्रति भी ऐसा ही तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करते हैं, उनके हाथ-पाँवों को सभी ओर से क्षारीय जल, तप्त ताँबे की शलाका आदि से बार-बार जलाया जाता है। उनको सभी नरकों में देह यातनाएँ दी जाती हैं

शिवालयसीमायां पुरीषमूत्रविसर्जनफलम् —

शिवायतनपर्यन्ते शिवारामे च कुत्रचित् ॥ 199 ॥
समुत्सृजन्ति ये पापाः पुरीषं मूत्रमेव च।
तेषां शिश्नं सवृषणं चूर्ण्यन्ते लोहमुद्गरैः ॥ 200 ॥
सूचीभिरग्निपूर्णाभिस्ततश्चापूर्यते पुनः।[45]

जो लोग शिवमन्दिर की सीमा और शिववाटिका के क्षेत्र में मनचाहे स्थान पर मल-मूत्र का त्याग करते हैं, उनके लिंग को अण्डकोश के साथ ही लोहे के मुद्गरों से पीट-पीटकर चूर्ण कर दिया जाता है। यही नहीं, आग में तपाई गई सुइयों को चुभो-चुभोकर पीड़ित किया जाता है।

ततः शङ्कुश्च सुमहान् अग्निवर्णः सुकण्टकः ॥ 201 ॥
आलोड्यन्ते गुदे तेषां यावन्मूर्ध्नि विनिर्गतः।
ततः क्षारेण महता ताम्रेण त्रपुना पुनः ॥ 202 ॥
द्रुतेनापूर्यते गाढं गुदं शिश्नं च देहिनाम्।[46]

इसके बाद तीखे-तीखे शंकु और आग में तपाए गए काँटे उनकी गुदा में डाले जाते हैं और सिर के पार निकाल दिए जाते हैं। बाद में क्षार, ताँबा और पीतल को पिघलाकर उन पापियों की गुद-मार्ग और लिंग में तेजी से भरा जाता है।

---

44. तुल.— शिव. उमा. 10, 25-27
45. तुल.— शिव. उमा. 10, 28-29
46. तुल.— शिव. उमा. 10, 30

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

दुःखप्रवर्तक मनः —

मनः सर्वेन्द्रियाणां च यस्मादुःख प्रवर्तकः ॥ 203 ॥
दुःखेन जायते तस्मात् नरस्तत्सुख दुःखतः।

सभी इन्द्रियजन्य दुखों का प्रवर्तक मन ही होता है। उसी से दुःख उत्पन्न होते हैं। उसी से व्यक्ति को सुख और दुःख होते हैं।

अतिथ्यापमानफलम् —

धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृष्णया ॥ 204 ॥
अतिथिं चावमन्यन्ते काले प्राप्तं गृहाश्रमे।[47]
ते लोहतोरणै रज्ज्वा हस्तपादासमानिताः ॥ 205 ॥
विस्तारिताङ्गा शुष्यति नराः पापप्रवर्तकाः।
हस्तपादललाटेषु ज्वलता लोहशङ्कुभिः ॥ 206 ॥

जो अपने पास धन के होते हुए लोभ के कारण दान नहीं करते, घर आए हुए अतिथि का अपमान करते हैं, वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए जब काल को प्राप्त होते हैं, तब उनको लोहे के तोरणों पर रस्सी से हाथ-पाँव बाँधकर लटकाया जाता है। उन पापी लोगों के अंगों को फैलाकर सुखाया जाता है। उनके हाथों, पाँवों और ललाट को जलते हुए लोहे के शंकुओं से दागा जाता है।

तेषां च विवृतं वक्त्रं कीलकद्वयताडितम्।
कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ॥ 207 ॥
उपद्रवैः बहुविधैरुग्रैरन्तः प्रपीड्यते।[48]

ऐसे दुष्टों के मुख को दो कीलक ठोक खोलकर छोड़ दिया जाता है। वे वहाँ कृमियों और लोहे की चोंच वाले कौओं से सताए जाते हैं तथा अनेक प्रकार के उपद्रवों से अन्दर ही अन्दर दुखी होते हैं।

बहुविधनरकदण्डवर्णनम् —

अधोमुखाः प्रबद्धाश्च भारशृङ्खलया पुनः ॥ 208 ॥
तिष्ठन्ते लम्बमानाश्च लोहभारं सुवर्तुलम्।
शिश्नेनवृषणे तस्य लोहभारद्वयं पुनः ॥ 209 ॥

---

47. तुल.— शिव. उमा. 10, 31-32
48. तुल.— शिव. उमा. 10, 33-34

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वहाँ इन पापियों को भारी-भारी साँकलों से बाँधकर उलटा लटकाया जाता है और फिर वहाँ लम्बायमान होकर चकरी खाते रहते हैं। उनके लिंग और अण्डकोश दोनों पर लोहभार लटकाया जाता है।

तिष्ठन्ति लम्बमानश्च बाहुभ्यां च चतुर्गुणम्।
ततः स्वमांसमुद्धृत्य शरीराद्देही नरकार्णवे॥ 210॥
खादितु दीयते तेषां सूच्यग्रेण तु शोधितम्।
यथा निर्मांसतां प्राप्ताः कालेन बहुना नराः॥ 211॥

इससे वे लम्बायमान हो जाते हैं। उनके बाहुओं को चौगुने भार से बाँधा जाता है। नरक में इस उत्पीड़न से उनके शरीर का माँस उधड़ जाता है। उसको लम्बी-लम्बी सूचियों के आगे से उठाकर खाने वालों को डाल दिया जाता है। इस तरह वे पापी लोग कुछ समय में कंकाल की तरह हो जाते हैं।

ततः क्षारेण दीप्तेन तच्छरीरं प्रलिप्यते।
क्लिश्यन्ते वर्षधाराभिः शोष्यन्ते वायुना पुनः॥ 212॥
शुष्कान् सिञ्चति तैलेन सुतप्तेन समन्ततः।
पच्यन्ते वह्निना भूयो दूरस्येव शनैः शनैः॥ 213॥

यही नहीं, ऐसे उत्पीड़न के बाद उनके शरीर पर गर्म-गर्म क्षारद्रव्य का लेपन किया जाता है। उसी की धारा से उनको क्लेश पहुँचाया जाता है और वायु से पुनः उनको सुखाया जाता है। सूखने पर चारों ओर गर्म तेल से भीगोया जाता है और धीरे-धीरे आग में पकाया जाता है।

एषाभिर्यातनाभिश्च पीड्यन्ते क्रमशः पुनः।
भृशं बुभुक्षया पीड्यां कष्टां यान्ति पिपासया॥ 214॥
उत्युष्णेनातिशीतेन पापानां स्मरेणन च।
एवमाद्या महाघोराः यातनाः पापकर्मणाम्॥ 215॥

इस तरह की यातनाओं से उन पापियों को पीड़ित किया जाता है। उनको बहुत भूखा रखकर पीड़ित किया जाता है। प्यासा रखकर कष्ट दिया जाता है। कहीं पर बहुत गर्म तो कहीं बहुत ठण्डे में लेकर उनको पापकर्मों का स्मरण करवाया जाता है। इस तरह उन पापकर्मियों को प्रारम्भ से ही महान घोर यातनाएँ दी जाती है।

एकैकनरके ज्ञेया शतशोथ सहस्त्रशः।
प्रत्येकं यातनाश्चित्रा सर्वेषु नरकेषु च॥ 216॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तस्माद्वर्षशतेनापि सर्वान् वक्तुं समुत्सहे।
इति चित्रैर्महाघोरैः स्थाप्यमानाः स्वकर्मभिः॥ 217॥

एक-एक नरक में ऐसी हजारों यातनाओं को समझना चाहिए। इनमें प्रत्येक यातना भी अनेक रूपों में सभी नरकों में हो सकती है। इसलिए सैकड़ों वर्षों तक भी उन सभी को नहीं भोगा जा सकता है। उक्त महाघोर पीड़ाएँ अपने-अपने कर्मों के अनुसार निर्धारित की गई है।

म्रियन्ते नैव पापिष्ठाः यावत्पापस्य सङ्क्षयः।
तत्रान्याः यातनाः कष्टाः विविधाः पापकर्मिणाम्॥ 218॥

जब तक उन पापियों के पापों का क्षरण नहीं हो जाता तब तक वे मरते भी नहीं हैं। वहाँ पर विविध पापकर्मियों के लिए अन्य कष्ट भी हैं।

इह घोरातिघोराख्याः कल्पानल समप्रभाः।
श्रुत्वैव तावतस्तूर्णं म्रियन्ते पापिनो नराः॥ 219॥
ततस्तेनात्र कथिताः पापैः दृश्यन्ति वा स्वयम्।

ये घोर और अतिघोर नामक कल्प की अग्नि के समान प्रभा वाले हैं जिनको सुनकर ही ये पापी लोग मरने लगते हैं। अतः इनको यहाँ पूरी तरह नहीं कहा जा सकता है। इनको तो पापी स्वयं ही देख लेंगे।

पुत्रमित्रकलत्रार्थं यद्पुण्यं कृतं त्वया॥ 220॥
एकाकी दह्यते तेन नात्र पश्यसितातन च।
आत्मनैव कृतं पापं भोक्तव्यं ध्रुवमात्मना॥ 221॥

सन्तान, सखा और स्त्री के लिए कोई पुण्य किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया हो, किन्तु वे सब एकाकी ही जलते हैं और एक दूसरे के परिणाम को देख नहीं सकते। उनको अपने द्वारा किए पापों को तो स्वयं ही निश्चित रूप से भोगना पड़ता है।

तत्कीर्तिमानधूतार्थं मूढपापं कृतं त्वया।
एवं दूतैरुपालब्धान्स्तान् पृच्छन्ति पुनः पुनः॥ 222॥
क्रियन्तं केन पापेन कालमत्रासते नराः।

मूढ़तावश भी जो पाप प्रसिद्ध धूर्तों के लिए किए गए हों, उनको जब यमदूत यमलोक में लेकर जाएँगे, तब उनके बारे-बारे में बार-बार पूछेंगे कि तुमने ये पाप कैसे किए? और, इस तरह वे उस समय पापीजनों को पीड़ित करेंगे।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

देवद्रव्यविनाशेन गुरुद्रोहादिकर्मभिः ॥ 223 ॥
क्रमात् सर्वेषु पच्यन्ते नरकेषु न संशयः।

देवताओं की सामग्री का विनाश करने वाले और गुरु के प्रति विरोध के जो भी कर्म करने वाले हैं, उन सभी को नरक में क्रम से पकना पड़ता है, इसमें संशय नहीं है।

महापातकिनादीनां नरकवासवर्णनम् —

महापातकिनं चापि सर्वेषु नरकेषु च॥ 224॥
आचन्द्रतारकं यावत् पच्यन्ते विविधैर्विधैः।

महापापियों को तो सभी नरकों में जब तक तारा और चन्द्रमा हैं, तब तक विविध तरह से पकाया जाता है।

तथा पातकिनः सर्वे निरयार्णव रूपिषु॥ 225॥
चतुर्दशसु पच्यन्ते कल्पार्धं विविधैर्विधैः।
उपपातकिनश्चापि तदर्धं कालमासते॥ 226॥
शेषैः पापैः तदर्धं च कालं चापि तथाविधम्।
तस्मात् पापं न कुर्वीत् चञ्चले जीविते सति॥ 227॥

जो पापी होंगे, उन सभी को नरकों में यथारूप चौदह कोटि में आधी कल्पावधि तक विविध प्रकार से दण्ड दिया जाता है। उपपापियों को उनकी अपेक्षा आधे काल तक नरक में रखा जाता है और शेष पापियों को उनके भी आधे तक यथान्याय नरक की पीड़ा उठानी होती है। इसलिए इस जीवन को चंचल मानकर कभी पाप नहीं करना चाहिए।

पापैष्वैव ध्रुवं यान्ति नरकेषु नराः स्वयम्।
यः करोति नरः पापं तस्यात्मा ध्रुवमप्रियः॥ 228॥

यह निश्चित है कि पापों को करके लोग अपने आप ही नरकलोक में जाते हैं। जो व्यक्ति पाप करता है, वह स्वात्म निश्चित ही अप्रिय हो जाता है।

पापस्य हि फलं दुःखं तद्भोक्तव्यं तदात्मना।
कथं ते पापनिरताः नरा रात्रिषु शेरते॥ 229॥
जन्मान्तरगता येषां घोरा नरकयातनाः।

पाप का फल दुःख है, उसको अपने को ही भोगना पड़ता है। जो पापी लोग

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

हैं, वे रात्रि में भी कैसे सो सकते हैं ? उनको नींद नहीं आती और मरने पर, जन्मान्तर में जाकर भी घोर नरक की यातना भोगनी पड़ती है।

तथा च योन्यानुरूपजन्मचक्रम् —

एवंच्छिष्टा विशिष्टाश्च नावशेषेणकर्मण॥ 230॥
ततः क्षितिं समासाद्य पुनर्जायन्ति देहिनः।
स्थावरा विविधाकारा वृक्षगुल्मादिभेदतः॥ 231॥

इस प्रकार के क्लेश विशेष के कारण अथवा अवशेष कर्मों के फलस्वरूप पुनः पृथ्वीलोक पर जन्म लेकर ये देहधारी स्थावर-वृक्ष, विविध आकार के गुल्मादि भेद से बनते ही हैं।

तत्रानुभूय दुःखानि जायन्ते कीटयोनिषु।
निष्क्रान्ताः कीटयोनिभ्यः क्रमाज्जायन्ते पक्षिणः॥ 232॥
संश्लेषात् अन्य पश्वादिभ्यः भवन्ति मृगयोनिषु।
मृगदुःखमतिक्रम्य जायन्ते पशुयोनिषु॥ 233॥
क्रमात् गोयोनिमासाद्य पुनर्जायन्ति मानवाः।

वहाँ पर वे दुखों का अनुभव करके फिर कीट योनियों में जन्म लेते हैं और फिर कीट योनियों से निकलकर क्रम से वे पक्षीरूप में जन्म ग्रहण करते हैं। तदोपरान्त वे अन्य अन्य पशुओं और मृगादि योनियों में जाते हैं। मृगयोनि के दुःख के बाद वे अन्य पशुओं की योनि ग्रहण करते हैं। इस क्रम के नैरन्तर्य में वे गायों की योनि के उपरान्त मानव जन्म ग्रहण करते हैं।

एवं योनिषु सर्वासु परिक्रम्य भ्रमेण तु॥ 234॥
कालान्तरवशाद्यन्ति मानुष्यमति दुर्लभम्।
म्रियमाणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगौरवात्॥ 235॥
विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात्।
मानुष्यं सः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधनम्[49]॥ 236॥
तयोर्न साधयत्येकं स मृतस्तप्यते तदा।[50]

इस प्रकार समस्त योनियों में भ्रमण करता हुआ जीव दीर्घकाल के उपरान्त

---

49. तुल.— शिव. उमा. 20, 28-30
50. 'नाचरत्यात्मनः श्रेय स मृत शोचते चिरम्' इति शिवपुराणपाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अति दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है। यद्यपि मानुष्ययोनि भी मरणशील है किन्तु यह पुण्यों के उदय होने से मिलती है। कर्मों की गति बहुत विचित्र होती है, वह गुरुत्व और लघुत्व पर निर्भर करती है। मनुष्य जीवन स्वर्ग और मोक्ष का साधन होता है, यह पाकर भी जो इसकी साधना नहीं करते, वे मरने पर ताप-त्रास भोगते हैं।

मनुष्यजन्मप्रशंसाह —

देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम्॥ 237॥
तत्सम्प्राप्य तथा कुर्यान्नगच्छेन्नरकं यथा।
स्वर्गापवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यमः॥ 238॥
[दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं वृथा तज्जन्म कीर्तितम्।]

देवता और असुर सभी के लिए मनुष्य योनि बहुत दुर्लभ मानी गई है। उसको प्राप्त करके वैसा कर्म कभी नहीं करना चाहिए जिससे नरक में जाना पड़े। स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए यदि उद्यम नहीं किया जाए तो दुर्लभ रूप में प्राप्य मनुष्य जन्म व्यर्थ ही कहा जाएगा।

सर्वस्य मूलं मानुष्यं तद्यत्नादनुपालयेत्।
धर्ममूलेन मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम्॥ 239॥
यदि लाभाय यत्नः स्यान्मूलं रक्षेत्वयं ततः।

सभी उपायों का मूल मनुष्य योनि है, अतः उसकी धर्मादि से सुरक्षा-संरक्षा करनी चाहिए। मनुष्य जन्म मिलना धर्म का मूल है, यह सभी अर्थों की साधक है। यदि लाभ उठाना है तो इस मूल (पूंजी) की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

मानुष्येऽपि विप्रत्वं सम्प्राप्यातीव दुर्लभम्॥ 240॥
नाचरत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तस्मादचेतनः।

इस मनुष्य योनि में ब्राह्मणत्व की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। इसके बावजूद भी यदि अपना कल्याण नहीं कर सकें तो उससे अधिक अचेतन (मूर्ख, असावधान) भला कौन होगा?

सर्वेषामेव देहानामयं देहः परस्स्मृतः॥ 241॥
भोगभूमिः स्मृतः स्वर्गः कर्मभूमिरियं मता[51]।

---

51. इत्यमनन्तर शिवपुराणे— द्वीपानामेव सर्वेषां कर्मभूमियमुच्यते। इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च प्राप्यते समुपार्जितः॥ देशेऽस्मिन्भारते वर्षे प्राप्य मानुष्यमध्रुवम्। न कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा खलु वञ्चितः॥ कर्मभूमि विप्र! फलभूमिरसौ स्मृता। इति क्वचित् (उमा. 20, 36-38) पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदनुभुज्यते॥ 242॥

सभी देहों में इस मानुष्य देह को परम जानना चाहिए। भोगभूमि के रूप में स्मृत स्वर्ग है और यह कर्मभूमि है। यहाँ पर जो भी कर्म किए जाते हैं, उनका सुखभोग स्वर्ग में होता है।

मानुष्यत्वं कर्तव्यमाह —

यावत्स्वास्थं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत्।
अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किञ्चित्कर्तुमुत्सहेत्॥ 243॥

यह शरीर जब तक स्वस्थ है तब तक धर्म का आचरण करना चाहिए। अस्वस्थ होने पर व्यक्ति किसी के कहने के बावजूद कुछ भी करने की स्थिति में नहीं रहता है।

अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं येन प्रसाधयेत्।
ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टमध्रुवं नष्टमेव च॥ 244॥

यह शरीर (निश्चित ही) अस्थिर-असत्य है, इससे जो ध्रुव (मोक्ष) की प्राप्ति का साधन नहीं करता तो उसका मोक्ष रूपी लाभ तो नष्ट होता है ही, यह अस्थिर शरीर भी नष्ट हो जाता है।

आयुषः खण्डखण्डानि निपतन्ति तदग्रतः।
अहोरात्रोपदेशेन किमर्थं नावबुध्यते॥ 245॥

उसके सामने ही आयु खण्ड-खण्ड होती हुई समाप्त होती जाती है, दिन-रात की तरह आयु समाप्त होती जाती है, तथापि वह क्यों नहीं समझता है!

यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति।
आकस्मिके हि मरणे धृतिं विन्देत कस्तथा॥ 246॥

उसे तो यह भी पता नहीं है कि कब किसकी मृत्यु हो जाए? किसका भविष्य कैसा है? अकस्मात् मृत्यु होने पर कौन धैर्य धारण कर सकता है?

परित्यज्य यदा सर्वामेकाकी यास्यति ध्रुवम्।
न ददासि कदा कस्मात् पाथेयार्थमिदं धनम्॥ 247॥

व्यक्ति निश्चित ही जब सब कुछ यहीं छोड़कर जाने लगता है तब पाथेय (मार्ग में व्यय) के लिए कोई धन भी तो नहीं देता है।

ग्रहीतदानपाथेयः सुखं याति यमालयम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अन्यथा दुःखिनो यान्ति पाथेयरहिताः पथि ॥ 248 ॥

स्मरणीय है कि जीवनकाल में दिया हुआ उसका धन ही पाथेय के रूप में उसके साथ जाता है जिससे वह यमालय में सुखपूर्वक जाता है, अन्यथा मार्ग में दुखी होता है।

येषां द्विजेन्द्र! पुण्यानि परिपूर्णानि सर्वतः[52]।
स्वर्गदेशस्य पुरतस्तेषां लाभः पदे पदे ॥ 249 ॥

जिन द्विजों ने सभी काल में परिपूर्ण रूप से पुण्य को किया है, वे स्वर्गलोक को जाते हैं और उनको कदम-कदम पर लाभ मिलता है।

इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात् पापं च वर्जयेत्।
पुण्येन याति देवत्वमपुण्यं नरकं व्रजेत् ॥ 250 ॥

उपर्युक्त विचार को जानकार व्यक्ति को पुण्यकर्म करना और पापकर्म को त्याग देना चाहिए। पुण्यों के फलस्वरूप देवत्व की प्राप्ति होती है और अपुण्यकर्मों के कारण नरक में गमन होता है।

ये मनागपि देवेशं प्रपन्नाः शरणं शिवम्।
तेऽपि घोरं न पश्यन्ति यमं न नरकं तथाः ॥ 251 ॥
किन्तु पापैर्महामोहैः किञ्चित्कालं शिवाज्ञया।
प्रेतराजात्ततो यान्ति पश्चाच्छिवपुरे वसन् ॥ 252 ॥

जो लोग थोड़े बहुत भी भगवान् शिव की शरण को प्राप्त हुए हैं, वे त्रास को नहीं देखते, न वे यम को देखते हैं और न ही नरक को देखते हैं। किन्तु, महामोह के कारण हुए अपने पापकर्मों के फलस्वरूप वे परमेश्वर शिव की आज्ञा से कुछ काल के लिए नरकलोक में रहते हैं, तत्पश्चात् वे शिवपुर में निवास करते हैं।

ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम्।
न ते पापेन लिप्यन्ते पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ 253 ॥

जो सर्वतोभावेन महेश्वर की शरण में होते हैं, उनको पाप वैसे ही लिप्त नहीं करते जैसे पानी में रहकर भी पद्मपत्र पानी से अलग रहते हैं।

तस्माद्विवर्द्धयेद्भक्तिमीश्वरे सततं बुधः।[53]

---

52. 'येषां द्विजेन्द्र वाहित्री पूर्णपाण्डं हि गच्छति' इति मूलपाठः।

53. तुल.— शिव. उमा. 20, 39-54; इत्यपूर्वं : उक्तं शिवेति यैर्नाम तथा हरहरेति च। न तेषां नरकाद्भीतिर्यमाद्धि मुनिसत्तम!॥ परलोकस्य पाथेयं मोक्षोपायमनामयम्। पुण्यसङ्घैकनिलयं शिव इत्यक्षरद्वयम्॥ शिवनामैव

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तन्माहात्म्य विचारेण भवदोषविरागतः ॥ 254 ॥

इसलिए ज्ञानी को चाहिए कि वह सतत रूप से ईश्वर के प्रति अपनी भक्ति को बढ़ाता रहे। वैराग्यपूर्वक उनके माहात्म्य के विचार द्वारा उस भक्ति को ग्रहण करना चाहिए।

इति शिवधर्मोत्तरपुराणे नरक विशेषन्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ 7 ॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तरपुरण में नरक विशेष नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

*****

अथ संसार प्रसवाख्यानं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ 8 ॥

स्कन्दोवाच —

अथ नारकिणां पुंसामधर्मादेव केवलम्।
क्षणमात्रेण भूतेभ्यः शरीरमुपपद्यते ॥ 1 ॥
तत्तद्धर्मेण चैकेन देवानां चोपपादितम्।
सद्यः प्रजायते दिव्यं शरीरं भूतसारतः ॥ 2 ॥

कुमार स्कन्द ने मुनि अगस्त्य से कहा— केवल अधर्म के आचरण से नारकीय मनुष्यों के शरीर क्षणमात्र में पाँच भूतों में उपजने वाले होते हैं जबकि एक धर्म से ही देवताओं का जीवन प्राप्त हो जाता है जो शीघ्र इन भूतों के साररूप में दिव्य शरीर बन जाता है।

कर्मानुसारेण चतुर्विधजीवयोनयासिं —

कर्मणाप्यति मिश्रेण यच्छरीरमिहात्मनः।
तद्भूतपरिणामेन विज्ञातं हि चतुर्विधम् ॥ 3 ॥

कर्मों के अत्यधिक मिश्रण से ही यहाँ यह शरीर निर्मित होता है। उसी का परिणाम होता है कि चार प्रकार के जीवों (1. उद्भिज, 2. स्वेदज, 3. अण्डज और 4. जरायुज) की उत्पत्ति होती है।

संसारं महारोगैकशामकम्। नान्यत्संसाररोगस्य शामकं दृश्यते मया। ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वा तु पुल्कशः। शिवेति नाम विमलं श्रुत्वा मोक्षं गतः पुरा॥ इति अतिरिक्तश्लोकाः। तत्रैव 20, 50-53

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उद्भिजास्थावरा ज्ञेयाः तृणा गुल्मादि रूपिणः।
कृमिकीटपतङ्गाद्या स्वेदजानामदेहिनः॥ 4॥

उद्भिज स्थावर के रूप में घास, गुल्म-वृक्षादि को जानना चाहिए। स्वेदज कृमि, कीट, पतंग आदि जीव होते हैं।

अण्डजाः पक्षिणः सर्पाः नक्रमत्स्याः सकच्छपा।
जरायुजाश्च विज्ञेया मानुषाः सचतुष्पदाः॥ 5॥

अण्डजों में पक्षी, सर्प, मगर, मत्स्य और कछुए आदि होते हैं। जरायुज कोटि में मनुष्यों और चौपायों को जानना चाहिए।

तत्र सिक्ता जलैर्भूमेरत्ररुष्मापिका पुनः।
ध्युहमानासु बीजत्वं वायुना खे प्रपद्यते॥ 6॥
ततः सर्वाणि बीजानि संसिक्तान्यम्भसा पुनः।
उच्छृन्नतां मृदुत्वं च मूलभावं व्रजन्ति च॥ 7॥

उत्पत्ति के लिए यह जानना चाहिए कि भूमि की जल से सिंचाई होने पर तथा उसमें गर्मी लगने पर बीजत्व होता है जो वायु के संयोग से आकाश की ओर पनपने लगता है। उन्हीं सब बीजों को पुनः जल से सींचे जाने पर वे बढ़ते हैं, मृदु होते हैं और अपने मूलभाव में आ जाते हैं।

तन्मूलादङ्कुरोत्पत्तिरङ्कुरात्पर्ण सम्भवः।
पर्णान्नालं तथा काण्डं काण्डाच्च प्रसवं पुनः॥ 8॥
प्रसवासु पुनः क्षीरं क्षीरात्तण्डुल सभवः।
तण्डुलाच्च यदा पाकं व्रजन्त्योषधयस्तथा॥ 9॥

उनके मूल से अंकुर उत्पन्न होते हैं। अंकुरण से पत्ते आते हैं, पर्ण से नाल और काण्ड होते हैं और काण्डों से पुनः प्रसव होता है। इस प्रसव से पुनः क्षीर और क्षीर से चावल के दानें उत्पन्न होते हैं। जब चावल पक जाते हैं तो सभी औषधि या अनाज रूप में बन जाते हैं।

यवाद्याः शालिपर्यन्ताः श्रेष्ठाः सप्तदशाः स्मृताः।
औषध्यः फलपाकान्ताः शेषाः क्षुद्राः प्रकीर्तिताः॥ 10॥
एवं तरुणामताताश्च शनैरुत्फुल्य संस्कृतैः।
मुसलोलूखलं यन्त्राः स्थाल्यामुदकवह्निभिः॥ 11॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इनमें जौ सेलेकर चावलों तक श्रेष्ठ सत्रह अनाज माने गए हैं। जो फलकर पकने तक रहे, उनको ही औषधियाँ कहा जाता है, शेष को क्षुद्र या खरपतवार कहते हैं। इस प्रकार नाना रूप में वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं। उन्हें संस्कारित या काट-छाँटकर, विधिपूर्वक अच्छी तरह बढ़ाने-संरक्षित रखने से काष्ठ-लकड़ी प्राप्त होती है जिनसे उखल, मूसल जैसे उपस्कारक, थाली, परात, कछोटी, जल के पात्र बनते हैं और ईंधन मिलता है।

षड्विधाहारभेदेन परिणामं व्रजन्ति च।
अन्योन्य रससंयोगदनेक स्वादुतां गताः॥ 12॥

यही नहीं, परिणाम में हमें छह प्रकार का आहार प्राप्त होता है। उनके अन्योन्य संयोग से अनेक प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ होते हैं।

भक्ष्यं भोज्य च पेयं च लेह्यं चोष्यं पिच्छलम्।
इति भेदाः षडन्नस्य मधुराद्याश्च षड्रसाः॥ 13॥

ये छह प्रकार के अन्न के आहार हैं— 1. भक्ष्य (खाने योग्य), 2. भोज्य (आहार), 3. पेय (पीने योग्य), 4. लेह्य (चाटने जैसे), 5. चोष्य (चूसने, चूखने योग्य) और 6. पिच्छल (मलाई जैसा चिकना)। ये मधुर आदि रसों से युक्त होते हैं।

तदन्नं पिण्डकबलैः ग्रासैर्भक्तं च देहिभिः।
अन्नस्थूलाशये पूर्वं प्राणस्थापयते क्रमात्॥ 14॥
अपिष्टभूतमाहारं नरायुः कुरुते द्विधा।

सामान्यतः उस अन्न का पिण्ड और ग्रास भाग के रूप में उपयोग करके ये शरीरधारी पौष्टिकता प्राप्त करते हैं और अपने प्राणों को बनाए-बचाए रखते हैं। साबुत अन्न मनुष्य की आयु को दो गुनी कर देता है।

जीवजन्मविधानम् —

पाकपात्रस्य मध्ये तु पृथगन्नं पृथग्जलम्॥ 15॥
अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नञ्च जलोपरि।
जलस्याधः स्थितं चाग्निं वायुस्तु धमते शनैः॥ 16॥

यदि किसी अन्नपात्र के अन्दर अन्न-जल को रखा जाए तो वे अलग-अलग दिखाई देते हैं। आग के ऊपर जल और जल के ऊपर अन्न को रखा जाता है। जल के नीचे आग को लगाया जाता है जो वायु के सहारे धीरे-धीरे प्रज्वलित होती है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वायुना धम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम्।
तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात्पच्यते पुनः॥ 17॥

वायु प्रभाव से ही वह अग्नि जल को गर्म करने लगती है और उस गर्म जल में वह अन्न चारों ओर से पकाया जाता है।

द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक्किटं पृथग्रसः।
मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहाद्बहिर्भवेत्॥ 18॥
(रसस्तु देहे सरति स पुष्टस्तेन जायते।)

वह पकाया गया अन्न खा लेने के बाद दो भागों में विभाजित हो जाता है, पहला भाग गाढ़ा होता है जबकि दूसरा पृथक् भाग रस होता है। वह किट्ट पदार्थ बारह मलों के रूप में देह से बाहर निकलता है। इसमें से दूसरा रस भाग होता है जो शरीर में प्रसारित होकर उसको पुष्ट करता है।

द्वादशमलानि —

कर्णाक्षिनासिका जिह्वा दन्ता शिश्नो गुदं नखाः।
मलाश्रयः कफः स्वेदो विण्मूत्रं द्वादश स्मृताः[1]॥ 19॥

कान का मैल, नासिका का मैल, जिह्वा पर चिपका हुआ मैल, दाँत में लगा हुआ मैल, शिश्न में लगा मैल, गुदा का मैल, नख में लगा मैल, कफ, पसीना, मल और मूत्र ये बारह मल कहे गए हैं।

रसात् द्वादशपरिणामः —

हृत्पद्मे प्रतिबद्धाश्च सर्वानाड्यः समन्ततः।
तासां मुखेषु तं सूक्ष्मं प्राणः स्थापयते रसम्॥ 20॥

हृदय रूपी कमल के चारों और रस का प्रवाह करने वाली समस्त नाड़ियाँ सम्बद्ध रहती है। उन नाड़ियों के मुखों में प्राणवायु सूक्ष्म रसों को पहुँचाया करता है।

रसेन तेन नाडीस्ता प्राणं पूरयते पुनः।
पुनः प्रयान्ति सम्पूर्णास्ताश्च देह समन्ततः॥ 21॥
ततः स नाडिमध्यस्थशरीरेणात्मना रसः।
[पच्यते पच्यमानाच्च भवेत्पाकद्वयं पुनः।

---

1. तुल. — शिव. उमा. 22, 3-7

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उस रस से पूरित नाड़ियाँ प्राणवायु को तृप्त करती रहती हैं। तदोपरान्त, वह रस सम्पूर्ण देह में चारों और पहुँचता है। उन नाड़ियों के बीच स्थित वह रस अपने शरीर में उपयोगी होता है। वहाँ वह पकाया जाता है जो पुनः दो प्रकार का होता है।

त्वक् तया वेष्ट्यते पूर्वं रुधिरं च प्रजायते॥
रक्ताल्लोमानि मांस च केशा स्नायुश्च मांसतः।[2]]

पहले उससे त्वचा बनती है जिससे यह देह ढँका रहता है। तदनन्तर रुधिर बनता है। रुधिर से लोम, मांस होते हैं। मांस से केश और स्नायु होते हैं।

स्नायुतश्च तथास्थीनि नखा मज्जास्थिसम्भवाः॥ 22॥
मज्जाकारणवैकल्यं शुक्रं च प्रसवात्मकम्।
इति द्वादशधाऽन्नस्य परिणामः प्रकीर्तितः॥ 23॥

स्नायु से अस्थि और अस्थि से नख होते हैं। अस्थि से मज्जा होती है। मज्जा से विशुद्ध शुक्र की उत्पत्ति होती है जो प्रसव का कारण होता है। इस प्रकार अन्न का परिणाम बारह प्रकार से सामने आता है।

शुक्राद्दिव्यशरीरस्य सम्भवामि —

सर्वौषधिरसः शुक्रं[3] शुक्राद्दिव्यदेहस्य सम्भवः।
ऋतुकाले यदा शुक्रं निर्द्दोषं योनिसंस्थितम्॥ 24॥
तदा तद्वायुसंस्पृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां व्रजेत्।
विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः कारणसंयुतः॥ 25॥

यह ज्ञातव्य है कि सभी औषधियों के रस से शुक्र और शुक्र से यह दिव्य शरीर सम्भव होता है। ऋतुकाल में सम्भोग से जब वह निर्दोष शुक्र योनि में स्थापित होता है, तब गर्भाशय में विद्यमान वायु से वह स्त्री के रक्त से संयोग कर एकात्म होता है। विसर्ग काल में उस शुक्र से जीव का कारण होता है अर्थात् उसमें जीवाधान होता है।

संवृतः प्रविशेद्योनिं कर्मभिः स्वैर्नियोजितः।
तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कलिलं भवेत्॥ 26॥
पञ्चरात्रेण कलिलं बुद्बुदाकारतां व्रजेत्।

---

2. कोठान्तर्गतपाठः शिवपुराणात्। उमा. 22, 11-12
3. 'शुक्रोऽन्नाज्जायते' इतिपाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

बुद्बुदं नवरात्रेण मांसपेशी भवेत्ततः ॥ 27 ॥

उक्त योनि में प्रवेशित हुआ वह शुक्र सम्भव जीव अपने कर्मों से युक्त होता है। वहाँ पर वह रक्त से मिश्रित होकर एक सप्ताह में 'कलिल' रूप ग्रहण करता है। पाँच रात्रियों की अवधि में वह कलिल बुलबुले का आकार लेता है। वह बुलबुला नौ रात्रियों की अवधि में मांसपेशी सहित होने लगता है।

द्विसप्ताहाद्भवेत्पेशी रक्तमांसचिता द्विधा।
बीजस्यैवाङ्कुराः पश्चात् पञ्चविंशतिरात्रतः ॥ 28 ॥
भवन्ति मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुनः[4]।

जब उक्त मांसपेशी दो सप्ताह की हो जाती है तब वह रक्त और मांस के दो भाग से बढ़ता है। पच्चीस रात्रियों की अवधि तक वह बीज से अंकुरण की तरह वृद्धि करता है और एक मास में पाँच भाग होकर बढ़ता है।

ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥ 29 ॥
पाणिपादं तथा पार्श्वे कटिर्गात्रं तथैव च।
मासद्वयेन च सर्वाणि क्रमशः सम्भवेदिह ॥ 30 ॥

इस अवधि में उसमें गरदन, सिर, कन्धे, पीठवंश और पेट सहित हाथ, पाँव, पसलियाँ, कमर और वैसे ही शरीर की रचना होती है। यह सब देह-विन्यास दो माह की अवधि में सम्भव होता है।

त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते सर्वाङ्गाङ्कुरसन्धयः।
मासश्चतुर्भिरङ्गुल्यः प्रजायन्ते यथाक्रमम् ॥ 31 ॥
मुखं नासां च कर्णौ च मासैः पञ्चभिरेव च।

तीन मास में सभी अंगों का अंकुरण और सन्धियाँ उत्पन्न होती हैं। चार मास में अंगुलियाँ यथाक्रम उत्पन्न होती हैं। पाँचवें मास में मुख रचना के अन्तर्गत नासिका और कान आदि बनने लगते हैं।

दन्तपङ्क्तिस्तथा गुह्यो जायते च नखाः पुनः ॥ 32 ॥
कर्णयोस्तु भवच्छिद्रं षण्मासाभ्यन्तरेण तु।
पायुर्मेहमुपस्थं च नाभिश्चाभ्युपजायते ॥ 33 ॥
सन्धयो ये च गात्रेषु जायते मासषट्के।

---

4. पंक्तित्रय शिवपुराणे नास्ति।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णः शिरकेश समन्वितः[5] ॥ 34 ॥

तत्पश्चात मुंह में दाँतों की पंक्तियाँ, मसूड़े बनते हैं और गुप्तांग के साथ ही नख बनते हैं और छह मास में कानों के अन्तर्गत छिद्रों की रचना होती है। सात महीनों में गुदा, लिंग, योनि, नाभि और शरीरस्थ सन्धियों की रचना होती है। इस अवधि में सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग, सिर-केस आदि होते हैं।

विभक्तावयव स्पष्टः पुनर्मासाष्टकेन तु (सति)।
पश्चात् करसमायुक्तः परिपक्वः स तिष्ठति॥ 35 ॥

आठवें मास में उक्त शरीरस्थ अवयव अलग-अलग रूप से सपष्ट दिखाई देने लगते हैं। इसके उपरान्त शरीर हाथों सहित परिपक्वावस्था में हो जाता है।

मातुराहारचौर्य्येण षड्विधेन रसेन तु।
नाभिसूत्रेणबद्धेन वर्द्धते स दिने दिने॥ 36 ॥

माता के आहार से ही गर्भ में छह प्रकार के रसों (कटु, अम्ल, मधुर, लवण, तिक्त व कषाय) को प्राप्त करता है। वह नाभिनाल से बन्धा हुआ दिन-दिन वृद्धि को प्राप्त होता रहता है।

ततः स्मृतिं लभेज्जीवः सम्पूर्णेऽस्मिञ्शरीरके।
सुखं दुःखं विजानाति निद्रास्वप्नं पुराकृतम्॥ 37 ॥

जब शरीर परिपक्व हो जाता है, वह जीव स्मृति को प्राप्त करता है। वह पूर्वजन्म में किए गए सुख और दुःख तथा निद्रा और स्वप्न की अनुभूति करने लगता है।

मृतश्चाहं पुनर्जातः पुनर्जातः पुनर्मृतः।
नाना योनि सहस्त्राणि मया दृष्टानि जायता॥ 38 ॥

वह विचारशील होता है और सोचता है कि मैं मरा, पुनः जन्मा, पुनः मरा और पुनः जन्मा। इस प्रकार के जन्मचक्र में मैंने हजारों योनियाँ देखी हैं।

अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव वा।
तत्रा श्रेयः करिष्यामि येन गर्भे न सम्भवः॥ 39 ॥

वह विचार करता है कि इस बार जन्म लेते ही मैं संस्कार को प्राप्त करूँगा और ऐसे श्रेयस्कर कार्यों को करूँगा कि पुनः गर्भ में नहीं आना पड़े।

गर्भस्थश्चिन्तयन्नैवमहं गर्भाद्विनिर्गतः।

---

5. तुल. — शिव. उमा., 22, 13-23

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अन्वेष्यामि शिवज्ञानं संसारविनिवर्तकम्॥ 40॥

वह गर्भस्थ होकर ऐसा विचार कर ही रहा था कि गर्भ से बाहर निकल जाऊँ। बाहर आकर शिवज्ञान का अन्वेषण करूँगा जो कि संसार से मुक्ति देने वाला है।

एवं स गर्भदुःखेन महता परिपीडितः।
जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिन्तयन्॥ 41॥

गर्भकाल में होने वाली बड़ी-बड़ी पीड़ाओं के कारण वह बहुत चिन्तन करता है। वह कर्म के वशीभूत होता है और मोक्ष के उपायों को खोजता-सोचता है।

यथा गिरिवराक्रान्तः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति।
तथा जरायुणा देही दुःखं तिष्ठति वेष्टितः॥ 42॥

जिस प्रकार पहाड़ से घिरकर कोई व्यक्ति बहुत दुखग्रस्त होता है, वैसे ही जरायु (झिल्ली) से आबद्ध जीवात्मा दुखी रहता है।

पतितः सागरे तद्वद्दुःखशोक समन्वितः।
गर्भोदकेन सिक्ताङ्गः सर्वदा व्याकुलस्तदा॥ 43॥

जैसे समुद्र में गिरा हुआ कोई व्यक्ति दुःख और शोक से घबराया होता है, वैसे ही गर्भ के जल में डूबा हुआ जीवात्मा सदा व्याकुल रहता है।

लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते [6]कालवह्निना।
गर्भकुम्भे तथा क्षिप्तः पच्यते जठराग्निना॥ 44॥

जैसे लोहे के घड़े में पड़ा हुआ कोई व्यक्ति समय आने पर आग में पकाया जाता है, वैसे ही गर्भ रूपी घड़े में पड़ा हुआ जीवात्मा उदर की आग में पकाया जाता है।

सूचिभीरग्निवर्णाभिर्निभिन्नस्य निरन्तरम्।
यद्दुःखमुपजायेत तद्गर्भोष्टगुणं भवेत्[7]॥ 45॥

अग्नि में तपाई हुई लाल-लाल सुइयों के निरन्तर चुभाने से जो दर्द होता है, उससे आठ गुना कष्ट गर्भकाल में होता है।

गर्भवासात्परं दुःखं कष्टं नैवास्ति कुत्रचित्।
देहिना दुःखबहुलः सुघोरमतिसङ्कटम्॥ 46॥

---

6. 'कश्चिदग्निना' इति पाठः।
7. 'यद्दुःखं जायते तस्य तत्र संस्थस्य चाधिकम्' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यों तो देहधारियों को बहुत प्रकार के दुःख व कष्ट उठाने पड़ते हैं किन्तु गर्भ में रहने से बड़ा कोई दुःख और कष्ट नहीं कहा गया है। घोर पापियों को तो अति ही संकट उठाना होता है।

इत्येतद्गर्भदुःखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम्।
चर स्थिराणां सर्वेषामात्म गर्भानुरूपतः॥ 47॥
गर्भात्कोटिगुणं दुःखं योनियन्त्र प्रपीडनात्।[8]
सम्मूर्च्छा तस्य जायेत जायमानस्य देहिनः॥ 48॥

इस प्रकार प्राणियों के लिए गर्भ के दुःख को कहा गया है। चलिष्णु हो या स्थिर काय, सभी आत्माओं को उनके गर्भ के अनुसार दुःख उठाना होता है। यही नहीं, गर्भावास के कष्ट से करोड़ गुना कष्ट योनियन्त्र का अर्थात् जन्म लेते समय उठाना होता है। (कई बार तो) वह देहधारी जन्म लेते समय मूर्छित तक हो जाता है।

तिलवत्पीड्यमानस्य यन्त्रेणैव समन्ततः।
शिरसा ताड्यमानस्य पापमुद्गरणे सति॥ 49॥[9]

वह पूरी तरह कोल्हू में तिल की तरह पीसा जाता है। सिर पर पाप रूपी मुद्गर के प्रहार करने से पीड़ित होता है।

गर्भान्निष्क्रम्यमाणस्य प्रबलैः सूतिवायुभिः।
जायेत् सुमहादुःखं परित्राणमविन्दतः॥ 50॥[10]

गर्भ से निकलने वाला वह जीव प्रबल सूतिका-वायु से होने वाले महादुःख से परित्राण पाने की इच्छा रखता है।

यन्त्रेण पीडिता यद्वनिस्साराः स्युस्तिलाः क्षणात्।
तथा शरीरं निस्सारं योनियन्त्र प्रपीडनात्॥ 51॥

कोल्हू यन्त्र में जिस तरह तिल के दाने क्षणभर में निस्सार हो जाते हैं अर्थात् उनका तेल निकल जाता है, वैसे ही यह शरीर जब योनिद्वार से बाहर आता है तो पीड़ित होकर निस्सार हो जाता है।

अस्थिपादतुलास्तम्भं स्नायुबन्धेन यन्त्रितम्।
रक्तमांसमृदालिप्त विण्मूत्रद्रव्यभाजनम्॥ 52॥

---

8. तुल.— शिव. उमा. 22, 24-36
9. 'इक्षुवत्पीड्यमानस्य' इति पाठः।
10. शिवपुराणे उमासंहितायां नोपलभ्यते।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जन्म लेने वाला यह शरीर कैसा है ? अस्थि रूपेण तुला-स्तम्भ में पूरी तरह स्नायुओं के बन्ध से यन्त्रित होता है। यह रक्त-मांस रूप मिट्टी से लीपा हुआ और मल-मूत्र का पात्र होता है।

केशरोमनखच्छन्नं रोगायतनमातुरम्।
वदनैकमहाद्वारं गवाक्षाष्टविभूषितम्॥ 53॥
ओष्ठद्वयकपाटं च दन्तजिह्वार्गलान्वितम्।[11]

यह केश, रोम, नखादि से आच्छन्न और रोगों का घर होता है। एक मुख इसका महाद्वार होता है और यह आठ गवाक्षों से विभूषित होता है। इसमें होठ रूपी दो कपाट होते हैं और दाँत, जिह्वा रूप अर्गलाएँ (कुण्डियाँ) होती हैं।

नाडिस्वेदप्रवाहं च कफपित्तपरिप्लुतम्॥ 54॥
जराशोकसमाविष्टं कालवक्त्रानले स्थितम्।
कामक्रोधाऽन्धताक्रान्तं व्यसनैश्चोपमर्दितम्[12]॥ 55॥

यह शरीर उन नाड़ियों वाला है जो निरन्तर पसीने का प्रवाह करती हैं। यह कफ, पित्त से लिप्त रहने वाला है। यह व्याधि और शोक से लगा हुआ तथा कालमुखाग्नि में स्थित माना जाता है। यह काम, क्रोध, अन्धताक्रान्त, व्यसन जैसी बुराइयों से मर्दित होता है।

भोगतृष्णातुरा मूढं रागद्वेषवशानुगम्।
संवर्तिताङ्गप्रत्यङ्गं जरायुपरिवेष्टितम्॥ 56॥
सङ्कटेनाविविक्तेन योनिमार्गेण निर्गतम्।

यह शरीर सदा ही भोग और तृष्णा की आतुरता रखने वाला है। मूढ़चित्त और राग एवं द्वेष के वश में रहने वाला है। इसके सभी अंग-प्रत्यंग जरायु से लिपटे हुए रहते हैं। यह अस्पष्ट संकट में पड़ा हुआ और योनिमार्ग से निकला हुआ माना जाता है।

विण्मूत्ररक्तसिक्ताङ्गं विकोशिकसमुद्भवम्॥ 57॥
अस्थिपञ्जरविख्यातमस्मिञ्ज्ञेयं कलेवरम्।
शतत्रयं षष्ट्यधिकं पञ्चपेशीशतानि च॥ 58॥
सार्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः।

इस शरीर के अंग मल-मूत्रादि से सने हुए रहते हैं। यह विकोशिक अर्थात्

---

11. तुल.— शिव. उमा. 22, 38-41
12. पंक्तित्रयं शिवपुराणे नोपलभ्यते।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

खुली हुई अवस्था में उत्पन्न होता है। इस कलेवर को अस्थिपंजर के रूप में ही जानना चाहिए। इसमें तीन सौ पैंसठ पेशियाँ हैं और यह साढ़े तीन करोड़ रोम (केश) से आच्छन्न होता है।

शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्याऽदृश्या हि ता स्मृता॥ 59॥
एतावतीभिर्नाडीभिः कोटिभिस्तत्समन्ततः।
अस्वेदमधुभिर्याभिरन्तस्थः स्रवते बहिः[13]॥ 60॥

यह शरीर स्थूल और सूक्ष्म, दिखाई देने और न दिखाई देने वाली पूर्वोक्त गणनानुसार साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों से बुना है। इन नाड़ियों से भीतर का पसीना आदि बाहर निकलता रहता है।

द्वात्रिंशद्दशना प्रोक्ता विंशतिश्च नखाः स्मृताः।
पित्तस्य कुडवं ज्ञेयं कफस्याथाढकं स्मृतम्॥ 61॥
वसायाश्च पलं विंशत्तदर्धं कपिलस्य[14] च।

प्राणियों के बत्तीस दाँत होते हैं और बीस नख जानने चाहिए। एक कुडव (पाव भर) प्रमाण पित्त होता है। एक आढ़क (चार सेर) प्रमाण कफ कहा गया है। एक पल (दो सेर) प्रमाण वसा या चरबी होती है जबकि कपिलत्व (? सम्भावित 'कलल' पाठ होने पर गर्भाशय) बिसवा और आधा (एक सेर) होता है।

पञ्चार्द्धं तु तुला ज्ञेया पलानि दश मेदसः॥ 62॥
पलत्रयं महारक्तं मज्जास्यात्तु चतुर्गुणम्।
शुक्रोऽर्द्धं कुडवं ज्ञेयं तद्वीर्यं देहिनां बलम्॥ 63॥

इस शरीर में मेद या चर्बी पाँच तुला और दस पल प्रमाण से होती है। तीन पल महारक्त होता है और उससे चौगुने या बारह पल प्रमाण में मज्जा होती है। आधा कुडव प्रमाण इस देह में वीर्य होता है जिसको देहधारियों का बल कहा गया है।

मांसास्य चैकपिण्डेन पलसाहस्त्रमुच्यते।
रक्तं पलशतं ज्ञेयं विण्मूत्रं यत्प्रमाणतः॥ 64॥
[अञ्जलयश्च चत्वारश्चत्वार ज्ञेय नित्यम्]

मांस प्रमाण एक हजार पल कहा गया है। इस शरीर में सौ पल के बराबर रक्त होता है। मल एवं मूत्र का प्रमाण सदा चार-चार अंजलि मानना चाहिए।

---

13. 'स्वेदमशुचिं याभिरन्तस्थं तृपते बहिः' इति पाठः।
14. 'कललस्य' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इति देहगृहं ह्येतन्नित्यस्यान्नित्यमात्मनः।
अविशुद्धं विशुद्धस्य कर्मबन्धाद्विनिर्मितम्[14अ] ॥ 65 ॥

इस तरह नित्य ही विशुद्ध आत्मा का अशुद्ध एवं अनित्य देहगृह या शरीर रूपी घर कर्मबन्धनों द्वारा निर्मित कहा गया है।

शुक्रशोणितसम्पर्काः देहः सञ्जायते यतः।
नित्यं विण्मूत्रपूर्णस्तेनायमशुचिः स्मृतः[15] ॥ 66 ॥

यह शरीर शुक्र और रक्त के सम्पर्क (संयोग) से उत्पन्न होता है। यह सदा मल-मूत्र से भरापूरा रहता है, ऐसे में इसको अपवित्र जानना चाहिए।

यथान्तर्विष्ठया पूर्णः शुद्धस्यान्न बहिर्घटः।
यत्नतः शुध्यमानोऽपि देहोयमशुचिस्तथा ॥ 67 ॥

जिस प्रकार विष्ठा से भरा हुआ कलश बाहर से शुद्ध होकर भी शुद्ध नहीं माना जाता है, वैसे ही यत्नपूर्वक शुद्ध किया गया यह शरीर अपवित्र ही होता है।

सम्प्राप्यातिपवित्राणि पञ्चगव्यं हवींषि च।
अशुचित्वं क्षणाद्याति किमन्यदशुचिस्ततः ॥ 68 ॥

अति ही पवित्र माने गए पंचगव्य और हवनयोग्य द्रव्य भी जिसके छूने से क्षणभर में अपवित्र हो जाते हैं, उससे और अपवित्र किसे कहा जाएगा?

हृद्यान्यप्यन्नपानानि यं प्राप्य सुरभीणि च।
अशुचित्वं प्रयान्त्याशु किमन्यदशुचिस्ततः ॥ 69 ॥

इसी प्रकार हृदय को लुभाने वाले अन्न और पान जिसको पाकर शीघ्र ही अपवित्र हो जाते हैं, उससे अधिक अपवित्र और क्या होगा?

हे जनाः! किन्न पश्यत्वं यन्निर्याति दिने दिने।
स्वदेहात्कश्मलं पूतिस्तदाधारः कथं शुचिः ॥ 70 ॥

अतएव हे मानवो! क्या तुम यह नहीं देखते हो कि जो दिन-प्रतिदिन अपनी काया से मल-मूत्र निकला करता है, उसको धारण करने वाला यह शरीर कैसे शुद्ध हो सकता है?

देहं संशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्यकुशाम्बुभिः।

14अ. तुल.— शिव. उमा. 22, 24-51
15. शिव. उमा. अध्या. 23, 2

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति॥ 71॥

इस देह को भले ही पंचगव्य और कुश के जल से संशुद्ध किया जाए किन्तु यह घिसे जाने के बाद भी कोयले की तरह उजला नहीं हो सकता है।

स्त्रोतांसि यस्य सततं प्रभवन्ति गिरेरिव।
कफमूत्रपुरीषाद्यैः स देहः शुध्यते कथम्॥ 72॥

एक पर्वत की तरह जिसके स्रोत कफ, मूत्र और विष्ठा आदि के हों, वह शरीर किस प्रकार शुद्ध हो सकता है?

सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते।
शुचिरेक प्रदेशोऽपि विण्मूत्रं दृश्यते यतः॥ 73॥

सच में यह देह समस्त अपवित्रताओं का भण्डार है। इसका एक हिस्सा भी मल-मूत्र के कोश की तरह पवित्र नहीं दिखाई देता है।

सृष्टा स्वदेहस्त्रोतांसि मृत्तोयैः शोध्यते नरः।
तथाप्यशुचिभाण्डस्य न [16]विभ्रंश्यति किङ्कराः॥ 74॥

अपनी देह से मलोत्सर्जन के उपरान्त मिट्टी और जल से हाथ धोये जाते हैं तब भी वे हाथ अशुद्ध होकर देह से पृथक् नहीं होते हैं।

कायः सुगन्धधूपायैर्यत्नेनापि सुसंस्कृतः।
न जहाति स्वभावं स श्वपुच्छमिव नामितम्॥ 75॥

इस काया को कठिन प्रयास करके कितने ही सुगन्धित द्रव्यों, धूपादि से अच्छा किया जाए किन्तु यह कुत्ते की टेढ़ी - पूँछ की तरह अपने स्वभाव को बिल्कुल नहीं छोड़ता है।

यथा जात्यैव कृष्णोऽर्थः शुक्लः स्यान्नह्युपायतः।
संशोद्ध्यमानापि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला॥ 76॥

जिस प्रकार जातिगत गुणों से काली कोई वस्तु किसी भी उपाय से उजली नहीं हो सकती, वैसे ही प्रयास करके शुद्ध की गई यह मूर्ति निर्मल नहीं हो सकती है।

जिघ्रन्नपि स्वदुर्गन्धं पश्यन्नपि स्वकं मलम्।
न विरज्येत लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम्॥ 77॥

---

16. 'स(उ)परं जति किं जनाः' इति पाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अपनी कायाजन्य दुर्गन्ध को सूँघता हुआ और अपने ही त्यागे गए मल को देखता हुआ भी यह लोकांचल अपनी नाक को दबाकर भी विरक्त नहीं होता है!

अहो मोहस्य माहात्म्यं येनदं छादितं जगत्।
शीघ्रं पश्यन्स्वकं दोषं कायस्य न विरज्यते॥ 78॥

अहो! मोह का ये कैसा माहात्म्य है कि उससे यह जगत ढँका हुआ है, अपनी देह के ऐसे दोषों को देखकर भी यह उससे विरक्त नहीं होता है!

स्वदेहस्य विगन्धेन न विरज्येत यो नरः।
विरागकारणं तस्य किमेतदुपदिश्यते॥ 79॥

जो अपनी काया की दुर्गन्ध से विरक्त नहीं होता, उस व्यक्ति को वैराग्य का और क्या कारण सुझाया-दिखाया जा सकता है?

सर्वमेव जगत्पूतं देह एवाशुचिः परम्।
तन्मलावयवस्पर्शाच्छुचिरप्यशुचिर्भवेत्॥ 80॥

इस जगत में विद्यमान सभी मनुष्यों की काया सर्वथा अपवित्र है। उसके मलीन अवयवों के छू जाने से पवित्र द्रव्य भी अपवित्र हो जाता है।

गन्धलेपापनोदार्थं शौचं देहस्य कीर्तितम्।
द्वयस्यापगमाच्छुद्धिः शुद्धस्पर्शाद्विशुध्यति॥ 81॥

शरीर की दुर्गन्ध और लेपादि दोषों को दूर करने के लिए पवित्रता का विधान किया गया है, इन दोनों के दूर हो जाने पर और शुद्ध पदार्थ-स्पर्श से शुद्धि सम्भव हो जाती है।

गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैश्च नगोपमैः।
आमृत्योराचरेच्छौचं भावेदुष्टो न शुध्यति॥ 82॥

किन्तु, पवित्रतम गंगाजल के साथ पहाड़ के बराबर मिट्टी का आजीवन धोने के लिए प्रयोग करने के बाद भी भावदुष्ट व्यक्ति शुद्ध नहीं हो सकता है।

तीर्थस्नानैस्तपोभिर्वा दुष्टात्मा नैव शुध्यति।
श्वदृतिः क्षालिता तीर्थे किं शुद्धिमधिगच्छति॥ 83॥

जो दुष्टात्म होते हैं, वे तीर्थों में स्नान करने और तप करने पर भी शुद्ध नहीं होते हैं। श्वान का चमड़ा क्या कभी तीर्थ में धोने से शुद्ध हो सकता है?

अन्तर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनं परम्[17] ॥ 84 ॥

जिसका अन्तर्मन दुष्ट होता है, वह चाहे अग्नि में ही प्रवेश क्यों न कर ले, उसके सिवाय जलने के न स्वर्ग और न ही मोक्ष का लाभ मिल पाता है।

भावशुद्धिः परं शौच प्रमाणं सर्वकर्मसु।
अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा[18] ॥ 85 ॥

व्यक्ति के समस्त कर्मों में भावशुद्धि को ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना गया है अन्यथा जिस भाव से स्त्री का आलिंगन किया जाता है, उस भाव से दुहिता (कन्या) का आलिंगन नहीं होता है।

मनसो भिद्यते वृत्तिरभिन्नैष्वपि वस्तुषु।
अन्यथेव पुत्रं नारी चिन्तयत्यन्यथा पतिम् ॥ 86 ॥

हमारे अभिन्न भावों में भी मानसिक भाव से भिन्नता आ जाती है, जैसे कि स्त्री अपने पति और पुत्र के विषय में अलग-अलग ही सोचा करती है।

परिशुद्धस्य भावस्य तं माहात्म्यमशेषतः।
परिष्वक्तोऽपि यन्नार्या भावहीनं न कामयेत् ॥ 87 ॥
नाद्याद्विविधमन्नाद्यं भक्ष्याणि सुरभीणि च[19]।
अभावेनरतस्तस्मात् भावः सर्वत्र कारणम् ॥ 88 ॥

जो परिशुद्ध भाव है, उसका महात्म्य अशेष कहा गया है। यह विचारणीय है कि जो पुरुष भावहीन होता है, वह स्त्री द्वारा आलिंगन करने के बावजूद उसकी कामना नहीं करता है। भोजन नाना प्रकार से सुगन्धित-स्वादिष्ट बनाया गया हो, मगर भावहीन व्यक्ति को वह पसन्द नहीं होता क्योंकि भाव ही सर्वत्र कारण होता है।

चित्तं शोधय यत्नेन किमन्यैर्बाह्यशोधनैः।
भावतः सुविशुद्धात्मा स्वर्गमोक्षौ च विन्दति ॥ 89 ॥

ऐसे में व्यक्ति को अपने चित्त को ही यत्नपूर्वक शुद्ध कर लेना चाहिए, अन्य बाहरी या भीतरी शुद्धि से क्या अभिप्राय है। भाव से शुद्ध आत्मा को स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

---

17. तुल.— शिव. उमा. 23, 2-20
18. तुल.— शिव. उमा. 23, 24
19. तुल.— शिव. उमा. 23, 24-27

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ज्ञानामलाम्भसा पुंसां सद्वैराग्यमृदा पुनः।
अविद्यारागविण्मूत्रलेपगन्धविशोधनम् ॥ 90 ॥[20]

यह ज्ञातव्य है कि ज्ञान रूपी स्वच्छ जल और वैराग्य रूपी मिट्टी से मनुष्यों की अविद्या राग रूप मल-मूत्रलेप से होने वाली दुर्गन्धि समाप्त हो जाती है।

एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचिं विदुः।
त्वङ्मात्रसारं निस्सारं कदलीसारसन्निभम्॥ 91 ॥
ज्ञात्वैव दूषितं देहं यः प्राज्ञः शिथिलो भवेत्।
नातिक्रमाति संसारं मूढग्राही च तिष्ठति॥ 92 ॥

इस प्रकार इस देह को ज्ञानियों ने स्वभावजन्य अशुद्ध कहा है तथा केले के पेड़ की तरह त्वचा मात्र सार वाला है। ऐसे इस दूषित देह को जानकर भी जो बुद्धिमान व्यक्ति शिथिल नहीं हो जाता, वह इस संसार को लांघ नहीं सकता बल्कि मूढ़ की तरह इसे पकड़े रहता है।

एवमेतन्महाकष्टं गर्भाद्दुःखं प्रकीर्तितम्।
पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च॥ 93 ॥[21]

इस प्रकार यहाँ महान कष्टों और गर्भजन्य दुःखों का वर्णन किया गया है। ये सब मनुष्यों के अज्ञान के दोष और नाना कर्मों के कारण होते हैं।

गर्भस्थस्य स्मृतिर्याऽऽसीत्सा च तस्य प्रणश्यति।
सम्मूर्च्छितेन दुःखेन योनियन्त्रनिपीडनात्॥ 94 ॥

यह ज्ञातव्य है कि गर्भ में रहते हुए जीव को जो स्मृति रहती है, वह जन्म लेते ही उसको विस्मृत कर देता है क्योंकि वह योनियन्त्र से पीड़ित होकर मूर्च्छा सहित दुःख जो पाता है।

बाह्येन वायुना वाऽस्य मोहसञ्ज्ञेन देहिनः।
स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरः समुपजायते॥ 95 ॥
तेन ज्वरेण महता सम्मोहश्च प्रजायते।
सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं सञ्जायते पुनः॥ 96 ॥

उस समय देहधारी को बाहरी वायु के सम्पर्क अथवा मोह के कारण स्पर्श

---

20. तुल.— शिव. उमा. 23, 30
21. तुल.— शिव. उमा. 23, 30-34

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

मात्र से घोर ज्वर उत्पन्न होता है। उसी ज्वर के महत् प्रभाव से सम्मोह उत्पन्न होता है। इसके फलस्वरूप वह सम्मूढ़ होता है और शीघ्र ही स्मृति का नाश हो जाता है।

स्मृतिभ्रंशात्ततस्य स्मृतिर्नोऽपूर्वकर्मणः।
रतिः सञ्जायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि॥ 97॥
रक्तो मूढश्च लोकोऽयं न कार्ये सम्प्रवर्तते।
न चात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम्॥ 98॥

इस प्रकार स्मृतिभ्रंश होने से उसके पूर्वजन्म के कर्मों की स्मृति जाती रहती है और फिर इसी जन्म से अनुरक्ति हो जाता है। इस तरह अनुरक्त वह मूढ़ इस जगत में शुभ कार्यों में प्रवृत्त नहीं हो पाता है और वह न तो स्वयं को और न परमदेवता को ही जान पाता है।

न शृणोति परं श्रेयस्सति कर्णेऽपि ज्ञायते।
न पश्यति परं श्रेयस्सति चक्षुषि तत्क्षमे।
समे पथि शनैर्गच्छन् स्खलतीव पदे पदे॥ 99॥
सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि।
संसार क्लिश्यते तेन गर्भलोभवशानुगः[22]॥ 100॥

इसी कारण वह अपने कान होने के बावजूद न तो परम श्रेयस्कर बातों को सुनता है न ही आँखें होने के बावजूद परम श्रेयकारी मार्ग को देख पाता है। इकसार मार्ग में धीरे-धीरे चलने के बावजूद वह कदम-कदम पर गिरता-पड़ता रहता है। सच में उसके पास बुद्धि होती है किन्तु ज्ञानियों के समझाने पर भी वह ज्ञान को ग्रहण नहीं करता और पुनः गर्भ में आने के लिए संसार में कष्ट उठाता है।

गर्भस्मृतेन पापेन शास्त्रमुक्तं शिवेन तु।
दुःख प्रशमनार्थाय स्वर्गमोक्ष प्रसाधनम्॥ 101॥

गर्भकाल में स्मृति में आने वाले पापों के दुःख के शमन के लिए शिव का शास्त्र ही उपाय है। यही स्वर्ग और मोक्ष का साधनरूप है।

यदत्यस्मिन् शिवज्ञाने धर्मकामार्थसाधने।
स कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम्[23]॥ 102॥

---

22. तुल.— शिव. उमा. 23, 37-44
23. तुल.— गर्भस्मृतेन पापेन समुज्झितमतिः पुमान्॥ इत्थं महत्परं दिव्यं शास्त्रमुक्तं शिवेन तु। तपसः कथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधनम्॥ ये सत्यस्मिञ्छिवे ज्ञाने सर्वकामार्थसाधने।न कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदेव महद्भुतम्॥ इत्यारिक्त श्लोकपाठश्च। शिव. उमा. 23, 44-46

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जिसने इस धर्म, काम और अर्थ प्रदायी शिवज्ञान का साधन कर लिया, उसने महान अद्भुत श्रेय कर लिया, ऐसा समझना चाहिए।

अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः।
इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्तुं प्रतिक्रियाम्॥ 103॥

बाल्यकाल में इन्द्रियों की असमर्थता के कारण इच्छा होने पर भी बालक कुछ कह नहीं सकता है और न ही कुछ प्रतिक्रिया कर पाता है— यह महान् दुःख ही है।

दन्तोत्थाने महद्दुःखमल्पेन व्याधिना तथा।
बालरोगैश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि॥ 104॥

शैशवकाल में दाँत निकलने के दौरान बड़ी पीड़ा होती है तथा बहुत व्याधियाँ होती हैं। तब नाना प्रकार के बालरोग और बालग्रहों की पीड़ा (चेचक, घमौरियाँ, फुँसियाँ) आदि भी होती है।

क्वचित्क्षुत्तृट्परीताङ्गैः क्वचित्तिष्ठति संरटन्।
विण्मूत्रभक्षणाद्यं च मोहाद्बालः समाचरेत्[24]॥ 105॥

उस समय वह कभी भूखा-प्यासा होता है, कभी रोने लगता है, कभी अज्ञानता के कारण अपना ही मल-मूत्र भी खाने लगता है।

कौमारे कर्णवेधने मातापित्रोश्च लालनात्।
अक्षराध्यायनाद्यैश्च दुःखः स्यात् गुरुशासनात्॥ 106॥

कुमारकाल में कभी कर्णवेधन की पीड़ा उठानी होती है तो कभी लाड़वश माता-पिता से भी कष्ट होता है। अक्षरों की पढ़ाई के दौरान गुरु के शासन में भी दुःख उठाना पड़ता है।

प्रवृत्तेन्द्रियवृत्तित्वात् कामरोगप्रपीडनात्।
रागान्धस्यैव सततं कुतः सौख्यं तु यौवने॥ 107॥

यौनवनकाल में इन्द्रियों के सुखों के उपभोग की अभिलाषा होती है और काम रोग से पीड़ा होती है, राग के कारण मति-अन्धता रहती है— ऐसे में युवावस्था में भी सुख कहाँ है?

ईर्ष्यया च महद्दुःखं मोहाद्रक्तस्य तस्य च।

---

24. 'त्रटीबुभुक्षोपनताङ्गः क्वच तिष्ठन्तिरारटन्। विण्णोरभक्षणाद्यैश्च मोहान्बालः समाचरेत्॥' इति मूलपाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

नेत्रस्य कुपितस्येव त्यागी दुःखाय केवलम्॥ 108॥

मोह में डूबे रहने से व्यक्ति को ईर्ष्या से महान् पीड़ा होती रहती है। कुपित होने के कारण उसकी आँखें केवल दुःख को अभिव्यक्त करती हैं।

न रात्रौ विन्दते निद्रां कामाग्निपरिवेदितः।
दिवाऽपि च कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया॥ 109॥

कामाग्नि की पीड़ा से उसको रात्रि में भी नींद नहीं आती है और दिनभर धनोपार्जन में लगे रहने के कारण उसको सुख कहाँ मिल पाता है!

स्त्रीष्वध्यासितचित्तस्य ये पुंसः शुक्रबिन्दवः।
ते सुखाय न मन्यन्ते श्वेदजा इव ते तथा॥ 110॥

नारियों में मन को केन्द्रित किए हुए व्यक्ति के जो वीर्य-बिन्दु स्खलित होते हैं, वे पसीने की बूँदों की तरह सुख के कारणभूत नहीं हो सकते हैं।

कृमिभिस्तुद्यमानस्य कुष्ठिनो वानरस्य च।
कण्डूयनाभितापेन यद्भवेत्स्त्रिषु तद्विदः[25]॥ 111॥

खुजली से पीड़ित वानर कीड़ों के कुलबुलाते समय खुजलाने से जो सुख पाता है, वही सुख स्त्री-सहवास का भी जानना चाहिए।

यादृशं मन्यते सौख्यं गण्डे पूतिविनिर्गमात्।
तादृशं स्त्रिषु सन्तव्यं नाधिकं तासु विद्यते[26]॥ 112॥

इसी प्रकार कपोल में दुर्गन्ध के दूर होने पर जो सुख मिलता है, वैसा ही सुख स्त्री संसर्ग में है, उससे अधिक नहीं जानना चाहिए।

गण्डस्य वेदना यद्वत् स्फुटितस्य न वर्तते।
तद्वत्स्त्रीष्वपि तद्विद्धि न सौख्यं परमार्थतः॥ 113॥

फोड़े का दुःख जिस तरह उसके फूटे बिना नहीं मिट सकता है, वैसे ही स्त्री के सम्बन्ध में जानना चाहिए, उसे जाने बिना परमार्थ का सुख नहीं मिलता है।

विण्मूत्रस्य समुत्सर्गात् सुखं भवति यादृशम्।
तादृशं स्त्रीषु विज्ञेयं मूढैः कल्पितमन्यथा[27]॥ 114॥

---

25. 'कण्डूयनाग्नितप्तेन यदुःखं स्त्रिषु तद्विदुः' इति पाठः।
26. तुल.— शिव. उमा. 23, 47-57
27. तुल.— लिङ्गपुराणे पूर्व. 8, 22; शिव. उमा. 23, 58

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

भूमि पर मल तथा मूत्र के त्याग के दौरान जैसी मनस्थिति होती है, वैसी ही मनोदशा स्त्री के प्रति रखी चाहिए, मूढ़ों की तो बात ही क्या होगी।

नारीष्वस्तुभूतासु सर्वदोषाश्रयासु च।
नाणुमात्रकमप्येवं [28]सुखमस्ति विचारतः॥ 115॥

समस्त भूत प्राणियों में नारी को सभी प्रकार के दोषों का आश्रय स्थान माना गया है। उनमें अणु मात्र भी सुख का विचार नहीं करना चाहिए।

सम्माननावमाभ्यां वियोगेनेष्टसङ्गमात्।
यौवनं जरया ग्रस्तं क्व सौख्यमनुपद्रवम्॥ 116॥

यह यौवन सम्मान-असम्मान और संयोग-वियोग से ग्रसित होता है, तत्पश्चात् बुढ़ापा आता है, ऐसे में युवावस्था में भी सुख कहाँ, उपद्रव ही जानना चाहिए।

वलीपलितखालित्यैः शिथिलीकृतविग्रहम्।
सर्वक्रियास्वशक्तिं च जरया जर्जरीकृतः॥ 117॥

शरीर पर झुर्रियाँ पड़ जाना, केशों का श्वेत होना और गंजा हो जाना इत्यादि से बुढ़ापे में व्यक्ति शिथिल हो जाता है। सभी क्रियाएँ अपने सामर्थ्य से बाहर हो जाती है। बुढ़ापे में शरीर जर्जरीकृत हो जाता है।

स्त्रीपुंसोयौवनं हृद्यमन्योन्यस्य प्रियं पुरा।
तदेव जरया ग्रस्तमनयोरपि न प्रियम्॥ 118॥

स्त्रियों और पुरुषों के बीच युवावस्था में जो प्रेम प्रारम्भिक स्तर पर बना रहता है, बुढ़ापे के आते-आते वह प्रेम नहीं रहता है।

अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरया परिवर्त्तितम्।
यः पश्यन्नपि रज्येत कोऽन्यस्तस्मादचेतनः॥ 119॥

वृद्धावस्था में जो अपने परिवर्तित हुए शरीर को देखकर भी उसमें अनुरक्त रहता है, उससे अचेतन मूर्ख और कौन हो सकता है।

जराभिभूतः पुरुषः पुत्रीपुत्रादिबान्धवैः।
असक्तत्वाद्दुराधर्षैर्भृत्यैश्च परिभूयते॥ 120॥

---

28. शिवपुराणे '०तासु कथितं पञ्चचूडया।' उमा. 23, 59

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वृद्धावस्था में असमर्थ हुआ व्यक्ति पुत्री, पुत्र और बन्धुजनों से ही नहीं, अपने सेवकों से भी तिरस्कार प्राप्त करता है।

धर्ममर्थं च कामं वा मोक्षं वातिजरातुरः।
अशक्तः साधितुं तस्माद्युवा धर्मं समाचरेत्॥ 121॥[29]

वृद्ध व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधना की दृष्टि से अशक्त हो जाता है। अतएव युवावस्था में ही धर्म का आचरण-साधन करना चाहिए।

इत्यमनन्तर व्याधिवर्णनम् —

वातपित्तकफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते।
वातादीनां समूहश्च देहोऽयं परिकीर्तितः॥ 122॥
तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः।
लालाध्रुवतिरेकत्वाद्व्याधीनां पञ्जरं स्मृतम्॥ 123॥

व्याधि क्या है? केवल वात, पित्त, कफ आदि की विषमता हो तो व्याधि कही जाती है। वात इत्यादि के समूह से ही यह देह बना कहा जाता है। इसलिए अपने शरीर को व्याधिमय ही समझना चाहिए। लार के लगातार अतिरेक के कारण इसको निश्चित ही व्याधियों का पिंजरा समझें।

रोगैर्नानाविधैर्याति देह दुःखान्यनेकधा।
तान्येव स्वात्मवेद्यानि किमन्यत् कथयाम्यहम्॥ 124॥

इस देह के अन्तर्गत नानाविध रोग आकर अनेक प्रकार के दुःख उत्पन्न करते हैं। इनको स्वयं ही समझना चाहिए, इसमें मैं और क्या कह सकता हूँ।

एकोत्तरमृत्युशतं अस्मिन् देह प्रतिष्ठितम्।
तत्रैककाल संयुक्ताः शेषान्यागन्तवः स्मृताः॥ 125॥

इस देह में एक सौ एक मृत्यु के कारण विद्यमान हैं। वे सभी काल के सहगामी हैं और शेष कारण आने वाले हैं, ऐसा समझना चाहिए।

ये स्वहागन्तव्यः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः।
जपहोमप्रदानैश्च कालममृत्युर्न शाम्यति॥ 126॥

जो कारण अभी इसमें आए कहे जाते हैं, वे भैषज-दवा से मिटते हैं। केवल जप, होम, दान से काल व मृत्यु का शमन नहीं होता है।

---

29. तुल.— शिव. उमा. 23, 59-65

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यदि वा नापमृत्युस्याद्विषमद्याद शङ्कितः।
नैनं स्यात् पुरुषं तस्मादपमृत्युर्बिभेति यः॥ 127॥

यदि अपमृत्यु नहीं होती तो आज भी विषम बनी हुई है अर्थात् अशंकित है। अतः कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो अपमृत्यु से डरता नहीं है।

विविधाव्याधयः शस्त्रं सर्पाद्याः प्राणिनस्तथा।
विषाणि चाभिचाराणि मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम्॥ 128॥

व्याधियाँ कई हैं— शस्त्र से होने वाली व्याधि, सर्पदंश के कारण और अन्य प्राणियों, विष और अभिचार कर्म आदि जन्य। ये सभी देह के मृत्युद्वार कहे जाते हैं।

सुपीडिताङ्गं सर्पाद्यैरपि धन्वन्तरि समानः।
स्वस्थीकर्तुमशक्नोति कालप्राप्तं हि देहिनम्॥ 129॥

विषधर भुजंग आदि के कारण किसी अंग के तीव्र रूप से पीड़ित होने पर धन्वन्तरि के समान वैद्यवर भी काल प्राप्त देही को स्वस्थ नहीं कर सकते हैं।

नौषधं न तपोदानं न मन्त्रं न च बान्धवाः।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं काल प्रचोदितम्॥ 130॥

जिस व्यक्ति का काल आ गया है, उसको न कोई औषध न कोई तप-दान, न मन्त्र, न ही बन्धु-बान्धव उससे छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकते हैं।

रसायनतपोजप्यं योगस्तिद्धैः महात्मभिः।
कालमृत्युरपि प्राज्ञैर्जीर्यते नालसैर्नरैः॥ 131॥

रसायन ग्रहण करने वाले, तप, जप करने वाले योगसिद्ध महात्मा को भी काल मृत्यु जीर्ण कर देती है फिर वह चाहे विद्वान हो या आलसी व्यक्ति ही क्यों हो।

नास्ति मृत्यु समं दुःखं नास्ति मृत्यु समं भयम्।
नास्ति मृत्यु समं त्रासः सर्वेषामेव देहिनाम्॥ 132॥

सभी देहधारियों के लिए मृत्यु के समान कोई दुःख नहीं है। मृत्यु के समान कोई भय नहीं है और मृत्यु के समान कोई त्रास-पीड़ा भी नहीं है।

सद्भार्यापुत्रमित्राणि राज्यैश्वर्य सुखानि च।
बान्धवानि च पौराणि मृत्युः सर्वाणि भिन्दति॥ 133॥

अच्छी पत्नी, अच्छे पुत्र, अच्छे मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, सुख, बन्धु-बाँधव हो या पुरवासी हो— सभी की मृत्यु तो होती ही है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

एकच्छत्रां महीं कृत्स्नां ये पराक्रम्य शासति।
तेऽपि नैवातिवर्तन्ते कालवेलामिवाब्धयः[30] ॥ 134 ॥

जो अपने पराक्रम के बल पर निखिल पृथ्वी पर एकच्छत्र शासन करते हैं, वे भी काल की मर्यादा को समुद्र की वेला की तरह नष्ट नहीं कर सकते हैं।

हे जनाः! किं न जानीध्वं सहस्रोष्वपि मध्यतः।
जनाः शतायुषः पञ्च भवन्ति न भवन्ति च॥ 135 ॥

हे मनुष्यों! क्या यह नहीं जानते हो कि हजारों लोगों के समुदाय में सौ वर्ष कीआयु वाले पाँच व्यक्ति भी नहीं है और न ही होते हैं।

अशीतिकाप विद्यन्ते केचित् साप्ततिका नराः।
परमायुस्तथा षष्टिस्तदाप्यायुरनिश्चितम्॥ 136 ॥

कोई अस्सी वर्ष की आयु वाले मिल जाते हैं और कोई-कोई तो सत्तर वर्ष के ही हैं और किसी की अधिकतम आयु साठ वर्ष की ही है। इस तरह मनुष्य की आयु अनिश्चित ही है।

यस्य यावद्भवेदायुर्देहिनः पूर्वकर्मभिः।
तस्यार्धमायुषो रात्रीर्हीयतेर्धमृतोपमम्॥ 137 ॥

देही के पूर्वकर्मानुसार जिसकी जितनी आयु होती है, उसकी आधी आयु तो रात्रि कम कर देती है मानों कि वह आधा मर गया है।

बाल एव हि मोहेन वार्धक्ये जरया पुनः।
पंचानां विंशतिर्याति धर्म कामार्थवर्जितः॥ 138 ॥

फिर, बालपन में मोह के कारण, वृद्धावस्था में जरा के वश पच्चीस-पच्चीस वर्ष ऐसे ही बीत जाते हैं जिनमें धर्म, काम और अर्थ का काम नहीं होता है।

आगन्तुकैर्भयैः पुंसा व्याधिशोकैरनेकधाः।
हीयतेर्धं च तत्रापि यच्छेषं तद्धिजीवितम्॥ 139 ॥

पुरुषों को आगन्तुक भय और व्याधि-शोक के भी अनेक प्रकार उसकी आयु के आधे वर्ष कम कर देते हैं और जो शेष बचते हैं, उतना ही जीवन समझना चाहिए।

जीविन्तान्ते च मरणं महाघोरमवाप्नुयात्।
जायते योनि कोटिषु मृताः कर्मवशात्पुनः॥ 140 ॥

---

30. शिव. वाय. पूर्व. 7, 12

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जीवन के अन्त में महाघोर मरण होता है और फिर ये कर्मवश होकर मरने पर करोड़ों योनियों में फिर से जन्म ग्रहण हैं।

देहेन सङ्गमः पुंसां वियोगं कर्म संक्षयात्।
मरणं तद्विनिर्दिष्टं न नाशनं परमार्थतः॥ 141॥

कर्मवश मनुष्यों को देह का संयोग सुलभ होता है और कर्म के क्षय होने पर वियोग हो जाता है। मरण तो निर्दिष्ट है परन्तु परमार्थ की दृष्टि से यह नाश नहीं है।

महातमः प्रविष्टस्य भिन्द्यमानस्य मर्मसु।
यद्दुःखं मरणं जन्तोः न तस्ये हेवमा क्वचित्॥ 142॥

महान अन्धकार में प्रवेश करने वाले और मर्मको भेदने वाले जीवन का दुःख मरण है, उस दुःख के जैसा अन्य कोई भी नहीं है।

हा तात! मात! हा कान्ते! क्रन्दन्नैव सुदुःखितः।
मण्डूककूपसर्पेण मृत्युनां ग्रस्यते जनः॥ 143॥

मृत्यु के इस महावन में हाय बाप! हाय माँ! हाय प्रिया! इस प्रकार क्रन्दन करते हुए बहुत प्रकार से दुखी होने से यह जानना चाहिए मानो कुएँ में किसी सर्प ने मेंढ़क को अपना ग्रास बना रखा हो।

बान्धवैश्च परिष्वक्तः प्रियैश्च परिवारितः।
निश्वासन्दीर्घमुष्णं च मुखेन परितुष्यता॥ 144॥

भाई-बन्धुओं से घिरे रहकर भी और प्रिय लोगों को चारों ओर देखकर भी मरणासन्न लोग लम्बे-लम्बे गर्म निश्वास छोड़ते हुए अपने मुख को सुखा देते हैं।

चतुरन्तेषु खट्वायाः परिवर्त्य मुहुर्मुहुः।
स मूढः क्षीयतेत्यर्थं हस्तपादा वितस्ततः॥ 145॥

ऐसे मूढ़ लोग बेचैनी के वश खाट पर चारों ही ओर बार-बार देह को पलटते रहते हैं, अपने हाथ-पाँवों को इधर-उधर पटकते रहते हैं।

खट्वायावञ्चते भूमिं भूमेः खट्वां पुनर्महीम्।
विवस्त्रस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपतः॥ 146॥

कभी खाट को छोड़कर भूमि पर गिरता है तो कभी भूमि से खाट पर चढ़ता है और पुनः भूमि पर गिरता है। नंग-धड़ंग, निर्लज्ज होकर मल-मूत्र से लिप्त होता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

याचनामानश्च सलिलं शुष्क कण्ठोष्ठतालुकः।
चिन्तयानश्च वित्तानि कस्यै तानि मृते मयि॥ 147॥

अपने सूखे कण्ठ और तालू से प्यासा होकर पानी की गुहार करता है। वह ऐसी दशा में भी अपने धन की चिन्ता करता रहता है कि मेरे मरने पर सम्पदा का क्या होगा?

पञ्चतां प्राप्य कण्ठे तु कालपाशेन कर्षितः।
म्रियते पश्यतामेव गले घुरघुरायते॥ 148॥

वह विचार करता है कि मृत्यु होने पर कण्ठ में कालपाश द्वारा बांधा हुआ खींचा जाऊँगा। मौत को देखते ही गले में घड़घड़ाहट होने लगती है।

जीवस्त्रीणजलूकावद्देहाद्देहान्तरं व्रजेत्।
सं प्राप्योत्तरमंशेन देहन्त्यजति पौर्विकम्॥ 149॥

जीव इन स्त्रियों रूपी जलोकों-जोंकों द्वारा रक्त चूस लिए जाने से इस देह के देहान्तरण मृत्यु को पाता है और वह अन्य देह को पाकर अन्ततः पूर्व की देह को छोड़ देता है।

मरणात्प्रार्थनाद्दुःखमधिकं हि विवेकिनः।
क्षणिकं मरणे दुःखमधिकं प्रार्थना कृतम्॥ 150॥

विवेकी पुरुष के लिए मरण से भी मरने के लिए प्रार्थना करना अधिक दुःख का कारण होता है क्योंकि मरने से तो क्षणिक दुःख होता है परन्तु बचने के लिए प्रार्थना करना अधिक दुःखद होता है।

यज्वनां पतिरर्थित्वाद्विष्णुर्वामनतां गतः।
अधिकः को परः तस्मात् कोनुयास्यति लाघवम्॥ 151॥

अरे! यज्ञ में भिक्षुक बनने पर तो विष्णु को भी वामन अर्थात् छोटा होना पड़ा था फिर उनसे भी अधिक ऐसा कौन नहीं है जिसे माँगने के लिए छोटा नहीं होना पड़े?

ज्ञानं मयेदमधुना मृतो भवति यो गुरुः।
न परं प्रार्थयेद्भूयः तृष्णालाघव कारणम्॥ 152॥

जो यह जान ले कि मेरी मृत्यु अभी होने वाली है और उसी समय अपने को मरा हुआ मान लेता है, वह गुरु अर्थात् बड़ा हो जाता है (कहा भी है— मरण पूर्व मरा मानने वाले की बलिहारी)। इसके लिए किसी दूसरे के सामने नहीं गिड़गिड़ाएँ क्योंकि यह तृष्णा मनुष्य को ओछा बनाती है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

आदौ दुःखं महादुःखमन्ते दुःखं सुदारुणम्।
निसर्गात् सर्वदुःखानामिति दुःखं परम्परा॥ 153॥

आरम्भ में महादुःख और अन्त में महादारुण दुःख, संसार में निसर्ग करते हुए भी सब कुछ दुःख है— यह संसार दुःख की परम्परा ही है।

वर्तमानान्यतीतानि दुःखन्येष्याणि यानि च।
नरा न विन्दत्यज्ञानां न विरज्यन्ति तेन ते॥ 154॥

वर्तमान और अतीत के जो भी दुःख हैं, उन्हें लोग अपने अज्ञान के कारण समझ नहीं पाते हैं। इसलिए वे उनसे विरक्त नहीं हो पाते हैं।

आहारोत्पन्नपीडायाम् —

अत्याहारान् महादुःखमनाहारान् महद्भयम्।
जीविते जीविते कष्टामन्येप्येवं कुतः सुखम्॥ 155॥

बहुत अधिक आहार करने से भी प्राणी को महादुःख होता है और बिल्कुल नहीं खाने से महाभय होता है। जीव का जीवित रहने का भी कष्ट है, फिर यहाँ अन्य क्या सुख है?

क्षुधाभिसर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः।
अन्नेनौषधलेपेन क्षणमात्रात् प्रशाम्यति॥ 156॥

भूख को सभी रोगों में सबसे बड़ी व्याधि के रूप में जाना जाता है जिसको अन्न और औषध से क्षणमात्र के लिए शान्ति मिलती है।

क्षुद्व्याधिवेदना तीव्रा निःशेष बलकृन्तनि।
तथाभिभूतो म्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्नरः॥ 157॥

भूख की व्याधि से पीड़ा तीव्रतम होती है। वह सारा ही बल नष्ट कर देती है। इससे अभिभूत हुआ व्यक्ति भी उसी तरह मरता है, जैसे कि किसी बीमारी से मरता है।

जीवनेनापि किं सौख्यं जीत्वाग्र परिवर्तिनः।
य क्षणार्धार्धेण मात्रेण कष्टं प्राप्य निवर्तते॥ 158॥

जीवन में भी क्या सुख है, जीकर भी तो आगे परिवर्तन होता है। जो क्षणभर के आधे का आधा क्षण भी प्राप्त करके कष्ट को पाकर छूट जाता है।

इति क्षुद्व्याधि तप्तानामन्नमौषधवत् स्मृतम्।
न तत्सुखाय मन्तव्यं परमार्थेन पण्डितैः॥ 159॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अतएव भूख से दुखी और सताए हुए लोगों के लिए अन्न ही औषध है जिसे ज्ञानियों ने परमार्थ सुख लिए सबसे बड़ा स्वीकारा है।

मृतोपमेन यश्शेते सर्वकार्य विवर्जितः।
तस्यापि तः कुतः सौख्यं तमसा छादितात्मनः॥ 160॥

और, जो व्यक्ति सब काम छोड़कर मरे हुए के समान सोया रहता है, उसे भी तो सुख कहाँ हैं? वह तो अपने आपको तमस में पड़ा रखता है।

प्रबोधेऽपि कुतः सौख्यं कार्येषुरुपहतात्मनः।
कृषि वाणिज्य सेवाद्य रोगरक्षादि परिश्रमैः॥ 161॥

जो कामों में लगे हुए हैं, उनको समझाने से भी सुख कहाँ मिलता है क्योंकि वे कृषि, वाणिज्य, सेवा और रोग रक्षादि के परिश्रम में लगे हुए होते हैं।

प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने क्षुत्पिपासया।
तृप्ताः काम्येन भोज्यन्ते निद्रायां निशि जन्तवः॥ 162॥

प्रातःकाल तो मल-मूत्र त्यागने में ही समय व्यतीत होता है। मध्याह्न में खाने पीने में और कार्य से तृप्त होकर भोजन करने और अन्त में प्राणी नींद लेकर रात्रि का समय बिताते हैं।

धनीनां पीडायाम् —

अर्थस्यचार्जने दुःखमार्जितस्य च रक्षणे।
नाशे दुःखं व्यये दुःखमर्थेप्येवं कुतः सुखम्॥ 163॥

धन के अर्जन में दुःख है, अर्जित धन की रक्षा करने में दुःख है। उसके नाश होने में भी दुःख है और व्यय-अपव्यय होने में तक दुःख है— इस तरह धन से भी सुख कहाँ है?

चोरेभ्यः सलिलादग्नेः स्वजनात् प्रार्थनादपि।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योर्देहभृतामिव॥ 164॥

धनवानों को सदा चोरों से, जल से, आग और अपने बन्धु-बाँधवों के याचना करने से वैसा ही डर बना रहता है जैसे देहवालों को मृत्यु का भय रहता है।

खे यथा भक्ष्यते मांसं पक्षिभिः श्वापदैर्भुवि।
जलेश्च भक्ष्यते मत्स्यैः तथा सर्वत्र वित्तवान्॥ 165॥

माँस कहाँ बचता है? पक्षी आकाश में माँस खाते हैं, हिंसक पशु भूमि पर

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

माँसाहार करते हैं और मत्स्यादि जलचर पानी में माँस खाते हैं, उसी तरह धनवानों को सर्वत्र नोचा जाता है।

विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति अरिवत्तिषु।
खेदयन्त्यार्जने काले कदा त्वार्थाः सुखावहाः॥ 166॥

ऐसे में सम्पति से विमोह हो जाता है क्योंकि वह शत्रु के समान ताप पहुँचाता है, तपाता है। धन के अर्जन में खेद बना रहता है, उसमें सुख कहाँ हो सकता है?

यश्चार्थपति रुद्विग्नो यश्च सर्वार्थ निस्पृहः।
तयोरर्थपती दुःखी सुखै सर्वार्थ निस्पृहः॥ 167॥

जहाँ अर्थपति या धनवान दुखी रहता है, वहीं जो सब प्रकार से धन से निस्पृह है, वह निश्चिन्त है। इन दोनों में धनवान दुखी है और जो सर्वार्थ में निस्पृह है, वही सुखी है।

कालजन्यपीडायाम् —

शीतेन दुःखं हेमन्ते ग्रीष्मे तापेन दारुणम्।
वर्षासु वातवर्षाभ्यां कालेप्येवं कुतः सुखम्॥ 168॥

हेमन्त ऋतु में ठण्ठ से दुःख, ग्रीष्मकाल में दारुण ताप से दुःख और वर्षाकाल में वायु एवं वर्षण से दुःख— इस तरह किसी काल में भी कहाँ सुख है?

विश्रामो विस्तरे दुःखं गर्भस्योद्वहने पुनः।
प्रसवोपत्य दोषैश्च दुःखं विष्ठादि कर्मभिः॥ 169॥
दन्तरोगेषु पुत्रस्य कष्टं हा! किं करोम्यहम्।

आराम करें तो बिस्तर पर दुःख है। गर्भ हो तो उसको वहन करने का दुःख, प्रसव होने पर भी महान् दुःख-दोष और फिर उसके मलादि के निस्तारण जैसे कार्य में दुःख है। पुत्र के दाँत निकलने के समय कष्ट से 'हाय मैं क्या करूँ?' ऐसे दुःख प्रकट होता है।

कुटुम्बिनां चिन्तायामाह —

गावो नष्टाः कृषिर्भग्नाः वातश्च प्रबलायते॥ 170॥
आधामि प्राहुणिकाः प्राप्ताः भग्नछिद्रं च मे गृहम्।
जरात्याच मे भार्या वचनं वः करिष्यति॥ 171॥
कस्मै प्रदेया कस्यामे कीदृशश्च वरो भवेत्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इति चिन्ताभिभूतस्य कुतः सौख्यं कुटुम्बिनः॥ 172॥

घर में गोधन के नष्ट होने से, खेती के उजड़ जाने, प्रबलतम अँधड़ चलने से, घर में मेहमान के आने से और अपना घर के टूटने-फूटने से; अपनी पत्नी के बूढ़ी होने पर उसका कहना मानने से और यह देखने पर कि हम उन्हें क्या दें और पुत्री के लिए वर कैसा होगा— इस तरह की चिन्ताओं से घिरे रहने से कुटुम्ब में भी कहाँ सुख मिलता है?

कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसः
श्रुतं च शीलं च गुणाश्च सर्वे।
पलायन्ति लाभे निहिता इवापः
प्रयान्ति देहेन समं विनाशनम्॥ 173॥

कुटुम्ब की चिन्ता और आकुलता से मनुष्य का ज्ञान, शील, गुण आदि सभी पलायन कर जाते हैं और जैसे देह के पानी में डूबने से उसका विनाश हो जाता है, वैसे ही कुटुम्बी भी अपने को मान लेता है।

नराधिपस्य पीडावर्णनम् —

राज्येऽपि च कुतः सौख्यं आज्ञापालन चिन्तया।
पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम्॥ 174॥

अरे! पुत्र से भी जहाँ भय बना रहता हो, वहाँ सुख किस प्रकार मिले, राज्य से भी सुख कहाँ हैं, आज्ञापालन-अनुशासन की चिन्ता बनी ही रहती है।

स्वजाति यद्भयं प्रायः सर्वेषामेव देहिनाम्।
परद्रव्याभिशक्त्याशु धनामिव परस्परम्॥ 175॥

सभी देहधारियों को अपनी जाति वालों से भी भय बना रहता है। वे दूसरों के द्रव्य-संसाधन के बल पर परस्पर धनवान जैसा व्यवहार करते हैं।

या प्रघृष्टबलः कश्चिन् नृपाख्यातो हि भूतले।
निखिलं यस्तिरस्तुत्य सुखं तिष्ठन्ति निर्भयम्॥ 176॥

जिस व्यक्ति में जिस किसी तरह धौंस जमाने का सामर्थ्य होता है, वही इस भूतल पर राजा के नाम से विख्यात हो जाता है। सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और वह निर्भय होकर सुख से घिरा रहता है।

प्रसङ्गानुसारेण दृष्टान्तमाह —

युद्धे बाहुसहस्त्रं हि पातयामास भूतले।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

श्रीमतः कार्यवीर्यस्य ऋषिपुत्रः प्रतापवान्॥ 177॥

जिस व्यक्ति ने इस भूतल पर युद्ध में हजारों हाथों को काट गिराया हो, लोग उसको श्रीमान कार्तवीर्य के समान प्रतापवान ऋषिपुत्र मानने लगते हैं।

ऋषिपुत्रस्य रामस्य रामो दशरथात्मजः।
जघान वीर्यमतुलमूर्ध्वं गं यं महात्मनः॥ 178॥

इस दृष्टि से ऋषिपुत्र परशुराम और दशरथात्मज श्रीराम ने अपने अतुल पराक्रम से शत्रुओं का हनन किया जिससे वे महात्मा माने गए और ऊर्ध्वलोक को गए।

जरासन्धेन रामस्य कृष्णत्वेनाशितं यशः।
जरासन्धेस्य भीमेन तस्यापि च हनूमता॥ 179॥

जिस जरासन्ध ने बलराम और श्रीकृष्ण के यश का विनाश किया (उन्हें द्वारका में माँगने पर रणछोड़ नामधारी बनाया), उस जरासन्ध के यश का बली भीम ने नाश किया और भीम के अभिमान का हनुमान ने हनन किया (क्योंकि वह हनुमान की पूँछ नहीं हिला सका)।

हनूमानपि सूर्येण विक्षिप्तः पतितः क्षितौः।
सूर्य तापयुक्तोऽपि मेघैः सञ्छिद्यते क्वचित्॥ 180॥

यही नहीं, बल के धाम हनुमान भी सूर्य के प्रभाव से पृथ्वी पर गिर पड़े और ऐसा सूर्य प्रतापवान होने पर भी कभी-कभी बादलों से ढँक जाता है।

क्षिप्यन्ते वायुनामेघाः वायोर्वीर्य नगैर्जितम्।
दह्यन्ते वह्निना शैलाः सवह्निः शाम्यते जलैः॥ 181॥

वे बलवान बादल जो सूर्य को ढँक देते हैं, वायु के द्वारा वर्षाजल गिराते हैं। उस वायु के बल को भी पहाड़ों ने जीत लिया और वे पर्वत भी आग से जीत लिए गए। ऐसी आग भी जल से शान्त हो जाती है।

तज्जलं शोष्यते सूर्यैस्त सूर्य सहचारिणा।
लोकेशाः सर्वदेवाश्च नश्यन्ति ब्रह्मणो दिने॥ 182॥

उस बलवान जल को भी सूर्य सुखा देता है और उस सूर्य के साथ चलने वाले लोकेश और सभी देवता ब्रह्मा के दिनों में विनाश को प्राप्त होते हैं।

कालमहिमावर्णनम् —

ब्रह्मापि त्रिदशैः सार्धमुपसह्रियते पुनः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

परार्धद्वयं कालान्ते शिवेन परमात्मना॥ 183॥

वे ब्रह्मा भी देवताओं के साथ पुनः परमात्मा शिव के द्वारा दो परार्धकाल के अन्त में संहारे जाते हैं।

एवं ब्रह्मसहस्त्राणां यत्कालं यत्र निर्मितम्।
तत्कालं कमलाक्षस्य विष्णोरायुः प्रकीर्तितम्॥ 184॥

इस प्रकार हजार पितामह ब्रह्मा का जो काल है और जिसने उस काल को परिकल्पित किया है, उस काल को कमल के समान नेत्र वाले भगवान् विष्णु की आयु कहा गया है।

विष्णोः कोटिशतं यात्रारुद्रसाधिपतेः प्रभोः।
महेश्वरादि तत्त्वानां काल सङ्ख्या न विद्यते॥ 185॥

ऐसे सौ करोड़ विष्णुओं की आयु के बराबर अधिपति प्रभु रुद्र महेश्वर की तो काल संख्या का पता ही नहीं, उसे कोई नहीं जानता है।[31]

एवं नास्तीति संसारे यस्य सर्वोत्तमं बलम्।
विहायेत जगन्नाथं परमात्मानमव्ययम्॥ 186॥

इस प्रकार जिसका सामर्थ्य सर्वोत्तम है, उसके लिए तो संसार कुछ भी नहीं है— ऐसा समझते हुए कभी भी अव्यय परमात्मा जगन्नाथ को नहीं छोड़ना चाहिए।

ज्ञात्वा सातिशयं सर्वमहिमानं न विवर्जयेत्।
एवं भूते जगत्यस्मिन्कश्शूरः पण्डितोऽपि वा॥ 187॥
नेहास्ति सर्ववित्कश्चित् न च मूर्खश्च सर्वदा।
यो यद्वस्तु विजानाति तानि तानि च पण्डितः॥ 188॥

उनकी अतिशय शक्ति को जानकर उनके समस्त महिमा को नहीं भूलें। ऐसा होने पर इस जगत में क्या शूरवीर और क्या पण्डित— किसी के लिए कुछ भी नहीं है

---

31. प्रसङ्गानुसारेण शिवपुराणमतः — कल्पो नाम दिवा प्रोक्तो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। कल्पानां वै सहस्रं च ब्राह्मं वर्षमिहोच्यते॥ वर्षाणामष्टसाहस्रं यच्च तद्ब्रह्मणो युगम्। सवनं युगसाहस्रं ब्रह्मणः पद्मजन्मनः॥ सवनानां सहस्रं च त्रिगुणं त्रिवृत्तं तथा। कल्प्यते सकलः कालो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ तस्य वै दिवसे यान्ति चतुर्दश पुरन्दराः। शतानि मासे चत्वारि विंशत्या सहितानि च॥ अब्दे पञ्च सहस्राणि चत्वारिंशद्युतानि च। चत्वारिंशत् सहस्राणि पञ्चलक्षाणि चायुषि॥ ब्रह्मार्विष्णोर्दिने चैको विष्णू रुद्रदिने तथा। ईश्वरस्य दिने रुद्रः सदाख्यस्य तथेश्वरः॥ साक्षाच्छिवस्य तत्सङ्ख्यस्तथा सोऽपि सदाशिवः। चत्वारिंशत्सहस्राणि पञ्चलक्षाणि चायुषि। तस्मिन् साक्षाच्छिवेनैष कालात्मा सम्प्रवर्तते। शिव. वाय. पूर्व. 8, 19-26

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

क्योंकि यहाँ पर कोई भी सर्वज्ञ नहीं है न ही कोई सर्वदा मूर्ख ही होता है। कारण कि जो जिस वस्तु को जानता है, वह उसका ही तो पण्डित होता है।

सर्वदा स च सर्वत्र प्रभावः सदृश स्मृतः।
स्थितस्थातिशयत्वेन प्रभवः कस्यचित् क्वचित्॥ 189॥

ऐसा व्यक्ति सदा सर्वत्र प्रभाव वाला माना जाता है। उसके स्थित रहने, बैठने, सोने काभी कुछ-कुछ प्रभाव माना जाता है।

दानवैर्निर्जिता देवास्ते देवैर्निर्जिताः पुनः।
इत्यन्योन्य स्थितावेतौ भोग्यैर्जयपराजयौ॥ 190॥

(पूर्वकाल में) देवताओं ने दानवों को जीत लिया, वे देवता भी दानवों से जीत लिए गए। इस तरह एक दूसरे को जय-पराजय भोगनी पड़ी थी।

निवाकवचनान् सर्वदान्दानवान् बलगर्वितान्।
जित्वास्त्रैरर्जुनः श्रीमान् गोपालैरिह निर्जितः॥ 191॥

निवाकवच आदि सभी बल के अभिमान में चूर रहने वाले दानवों को श्रीमान् अर्जुन ने विजित कर लिया था लेकिन वही अर्जुन गोपालों काबाओं द्वारा जीत लिया गया।

व्यर्थ राज्ञोभिमानमूलक दृष्टान्तम्—

एवमस्त्रयुगै राज्ञां प्रस्थमात्रान्नभोजनम्।
यानशय्यासनं चैकं शेषं दुःखाय केवलम्॥ 192॥

इसी प्रकार अस्त्रयुग (चतुरंगिणी सेना वाले) राजाओं ने भी केवल एक प्रस्थ भोजन किया, एक ही यान पर सवारी की, एक ही शय्या पर शयन किया, एक ही आसन को ग्रहण किया, शेष तो केवल दुःख ही उठाया।

सप्तभौमे विभावेन खट्वापादपरिग्रहः।
उदकुम्भस्त्रवत्यम्भः क्लेशा धान्य प्रविस्तरः॥ 193॥

सातों महाद्वीपों में बड़ी भावना रखकर, अपने पाँवों पर चलकर, हल-कुल्हाड़े आदि से खेती की और उसके लिए भी पानी से भरे घड़ों से सींच-सींच कर और अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर धान्य को उगाया।

प्रत्यूषे तूर्य निर्घोषैः समाः पुरनिवासिभिः।
गेयं सम्पुटवाद्यं च समन्तात् पुरवासिभिः॥ 194॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

राज्ञोभिमानमात्रं हि मयायं विद्यते गृहे।
सर्वाभाभरणं भारं सर्वमालेव सम्मलम्॥ 195॥
सर्व प्रलपितं गीतं नृत्यमुत्पद्यतेत्युत्तम्।
इत्येवं राज्य सम्भोगैः कुतः सौख्यं विचारतः॥ 196॥

प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में तूर्यवादन के बीच सभी पुरवासियों के साथ जागकर और बाजे-गाजे के साथ पुरवासियों के साथ गाना गाते हुए राजा केवल यह अभिमान कर सकता है कि ये सब मेरे भवन में विद्यमान है, परन्तु देखा जाए तो सभी आभूषण तक भार मात्र हैं, सभी मालाएँ केवल मल है। सभी गीत केवल प्रलाप हैं और नृत्य केवल उत्तम उपद्रव मात्र हैं। इस तरह से राज्य भोगने में भी विचार करें तो सुख कहाँ हैं?

स्वर्गिक सुखस्थितिमाह —

नृपाणां व्यग्रवृत्तानामन्योन्य विजिगीषया।
प्रायेणस्त्रीमदालेपान्नहुषाद्या महानृपाः॥ 197॥
स्वर्गं प्राप्य निवर्तिताः कः श्रिया विन्दते सुखम्।
स्वर्गेऽपि तत्कुतः सौख्य दृष्ट्वा प्रदीप्त मलाश्रियम्॥ 198॥

राजाओं में जो हर समय व्यग्र रहते हैं, चिन्ताग्रस्त हैं और एक दूसरे को जीतने की स्पर्द्धा में लगे रहते हैं। इनमें प्रायः स्त्रियों में कामासक्ति रखकर नहुष आदि मद में आए हुए महाराजा हुए। वे स्वर्ग को प्राप्त करके भी वहाँ से गिराए गए तो ऐसी श्रेयात्मक उपलब्धि में सुख कहाँ हैं? और, स्वर्ग में भी सुख कहाँ हैं, वहाँ भी ऐसी उन्नति देखकर जलन और मलीनता भरी है।

उपर्युपरि देवानामन्योन्यातिशया स्थितिः।
सर्वैः पुण्यफलं स्वर्गे मूलच्छेदेन भुज्यते॥ 199॥

देवताओं को भी देखा जाए तो उनमें भी एक दूसरे के ऊपर कई देवता है जो एक दूसरे बढ़कर स्थिति वाले हैं। सभी पुण्यों का फल स्वर्ग है और वह भी पुण्यफल के अन्त होने तक ही भोगा जाता है।

स्वकर्मप्रशंसामाह —

न चान्यत्क्रियते कर्म योऽत्र दोषः सुदारुणम्।
छिन्नमूलः तरुर्यद्वदवशः पतति क्षितौ॥ 200॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

(अपने पारम्परिक कर्म को त्यागकर) अन्य कोई कर्म नहीं करना चाहिए क्योंकि उसमें भी दारुण दोष होता है। ऐसा करने पर मूल से कटे हुए पेड़ की तरह अवश होकर भूमि पर गिरना होता है।

देवगणदुःखानि —

पुण्यपक्षक्षात्तद्वाद्वां अपतत्त्रिदिवौकसः।
सुखफलाषनिष्ठानां दुःख भोगाभि सम्प्लवान्॥ 201॥

पुण्यपक्ष के क्षय होने से अन्त में देवता द्वन्द्वों में आ पड़ते हैं, ऐसे में वे सुख के फल की चाहत में केवल दुखों के भोगने के बहाव में डूबते जाते हैं।

अकस्मात् पतने दुःखकष्टं स्वर्गे दिवौकसाम्।
इति स्वर्गेऽपि देवानां नास्ति सौख्यं विचारतः॥ 202॥

स्वर्गलोक से देवताओं को अकस्मात् गिरने का दुःख बहुत कष्ट देता है। इस तरह से देवताओं को स्वर्ग में भी सुख नहीं है, ऐसा विचार में आता है।

क्षयान्नातिशयाः सिद्धाः स्वर्गभोगीय कर्मणाम्।
तत्र कष्टं महद्दुःखं नरकाग्निषु देहिनाम्॥ 203॥

अतिशय सिद्धगण अपने कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग भोगते हैं और उनका क्षय होने पर उनको भी वैसे ही महान् दुःख होता है जैसा कि देहधारी मानवों को नरक की अग्नि में जलने का होता है।

चतुर्विधपातकमाह —

घोरैश्चतुर्विधैः पापैः वाङ्मनः काय सम्भवैः।

चार प्रकार के घोर पाप वचन, मन और काया से होते हैं।

स्थावरादीनां दुःखमाह —

कुठारैश्छेदनं तीव्रं वल्कलानां च कर्षणम्॥ 204॥
पर्णशाखा बलानां च पतनं छिद्धि वायुना।
उन्मूलनां च मदश्च गजैरन्यैश्च देहिभिः॥ 205॥
दावानलशिखातापैः दुःखं स्थावरजातिषु।

(पेड़-पौधों के प्रसंग में यह ज्ञातव्य है) फरसे से तेजी से काट डालने से, छाल को खींचकर उखाड़ने, पत्तों वाली शाखाओं को बलपूर्वक काटने, वायु द्वारा गिरा दिए जाने, हाथियों और अन्य देहधारियों के मदोन्मत्त होकर उखाड़ डालने, दावानल

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

की लपटों में झुलसने और धूप के ताप से स्थावर जातियों (वृक्षों) को बहुत दुःख होता है।

वर्षाऽऽतातपे दुःखं सुकष्टं मृगपक्षिणः॥ 206॥

वर्षा के दौरान जलवर्षण से और ग्रीष्मकाल में धूप के ताप से पशु-पक्षियों को बहुत कष्ट और दुःख होता है।

क्षुद्तृद्क्लेशैश्च सुमहान् सन्तप्तश्च सदा मृगः।
कुट्त्रट् शतादि दमनं पदबन्धन ताडनम्॥ 207॥
नाना प्रवेदनं त्रासः व्रतोदरशयातनम्।
वेणुकुन्तादि निगलं मुद्गराङ्कुशघातनम्॥ 208॥
भारोद्वाहनं संक्लेशः शिक्षायुद्धादि पीडनम्।
आत्मयूथवियोगश्च वनानयन बन्धनम्॥ 209॥
पशुनागनिकायानामेव दुःखान्यनेकधा।

मृगादि पशु सदैव भूख और प्यास के क्लेश से बहुत सन्तप्त रहते हैं। उनको मार-पीटकर सैकड़ों प्रकार से दबाया जाता है और पाँवों में बन्धन डालकर भी ताड़ना दी जाती है। नाना प्रकार की वेदना पहुँचाकर दुःखी किया जाता है। उनको भूखा रखकर यातना दी जाती है। बाँस के दण्ड, भाले आदि गले में मारे जाते हैं। मुद्गर और अंकुश से आघात किया जाता है। उनसे भार उठवाया जाकर क्लेश पहुँचाया जाता है। युद्धादि की शिक्षा देते समय पीड़ा पहुँचाई जाती है। अपने ही झुण्ड से अलग किया जाता है। वन से लाकर बन्धन में डाल दिया जाता है। हाथी आदि पशुओं के समूहों को इस प्रकार अनेकविध दुःख पहुँचाया जाता है।

मनुष्यजन्मस्य दुःखादीनां —

गर्भवासे महद्दुःखं तथा निर्गमनं नृणाम्॥ 210॥
बाल्ये च दुःखमशनात् कुमारे गुरुशासनात्।
यौवने कामरोगाभ्यां दुःखं रागेर्ष्यया पुनः॥ 211॥

मनुष्य जन्म में गर्भवास में महादुःख है, वैसे ही गर्भ से बाहर आते समय भी बहुत दुःख होता है। बाल्यकाल में अज्ञान से दुःख उठाना पड़ता है। कुमारकाल में गुरु के शासन में रहने का कष्ट है। युवावस्था में कामवासना और फिर अनुराग में पड़ जाने से दुःख होता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

कृषिवाणिज्य सेवाश्च गोरक्षाद्यैश्च कर्मभिः।
वृद्धभावे च जरया व्याधिभिश्च प्रपीडनम्॥ 212॥
मरणे च महादुःखं प्रार्थनायां ततोधिकम्।
राज्ञाग्निजलदायाद्य चोरशत्रुभयं महत्॥ 213॥

इसी प्रकार जीवन में खेती-बाड़ी का कार्य करने, व्यापार-वाणिज्य, नौकरी और गोपालन-रक्षण जैसे कार्यों और वृद्ध होने पर बुढ़ापा जन्य व्याधियों से पीड़ा होती है। मरण का तो महाकष्ट होता ही है और मृत्यु से बचने के लिए विनती करने में और अधिक पीड़ा होती है। इसी प्रकार राजा से, अग्नि, जल, दायाद, चोरों और शत्रु से भी बड़ी पीड़ा होती है।

अर्थस्यार्जन रक्षायां दुःखं नाशे व्ययं पुनः।
कार्पण्यं मत्सरो डम्भस्तृष्णाधिक्यभयं महत्॥ 214॥

पहले तो धन को कमाने और दूसरे उसकी रक्षा करने में दुःख उठाना होता है। इस पर धन का नाश होने पर और खर्च हो जाने पर दुःख होता है। कंजूसी, ईर्ष्या, डाह और अधिक तृष्णा के फलस्वरूप महाभय होता है।

अकार्ये सम्प्रवृत्तिश्च दुःखानि धनिनां सदा।
कृषिवृष्टिः कुसङ्गत्यादि दासत्वं परतन्त्रता॥ 215॥

धनवान होकर भी बुरे कामों में प्रवृत्ति होना सदा दुःखद होती है। कृषि कार्य में वृष्टि का होना, बुरी संगत, सेवकाई और परतन्त्रता भी दुःखद है।

इष्टानिष्टैर्वियोगश्च सम्प्रयोगः सहस्त्रशः।
दुर्भिक्षं दुर्भगत्वं च मूर्खत्वं च दरिद्रता॥ 216॥
अधरोत्तरभावश्च मारकं राष्ट्रविभ्रमः।
अन्योन्यातिशयं दुःखमन्योन्यातिशयाच्च नः॥ 217॥
अन्तर्बहिः प्रकोपाश्च राज्ञा मण्डलिनामपि।
अन्योन्येषां प्रकोपं राज्ये मम महीक्षिता॥ 218॥
अनित्यानां प्रभावानामुच्छ्रायाणां च पातनम्।
अन्योन्य स्वांमहीयत्स्वामन्योन्यस्य च भक्षणम्॥ 219॥
इत्येवमादिभिर्दुःखैर्यस्मात् प्राप्तं चराचरम्।

इष्ट-अनिष्ट अर्थात् भले-बुरे अवसर, वियोग और मिलन ऐसा हजारों बार होता है। अकाल और दुर्भाग्य, मूर्खता और दरिद्रता, अधरोत्तर भाव, महामारी, राष्ट्र के

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

भीतर विभाजन की स्थिति और एक दूसरे को अत्यन्त दुःख देना अर्थात् आपस में लड़ाई-झगड़ा करना और एक दूसरे से अतिशय याचना अर्थात् आशा करना, राष्ट्र के भीतर और बाहर के प्रकोप, राजाओं तथा मण्डलिकों (सामन्तों, ठाकुरों[32]) के बीच उपद्रव और राजाओं के परस्पर विवादजन्य प्रकोप, अस्थायी-सामयिक प्रभावों के आरम्भ और समाप्त होने, लोगों के एक दूसरे के अधिकार के हरण और अन्यान्य भक्षण करने जैसे अनेक प्रकार के दुःख हैं जो इस चराचर में दिखाई देते हैं।

तदर्थे शुभोपायमाह —

निरयादि मनुष्यान्तं तस्मात् सर्वं त्यजेत् पुनः॥ 220॥
स्कन्धात् स्कन्धन्नयद्भारं विश्रमं मन्यते यथा।
तद्वत् सर्वमिदं लोके दुःखं दुःखेन शम्यति॥ 221॥

मनुष्य को चाहिए कि वह नरक से लेकर मृत्युलोक तक मात्सर्य अर्थात् ईर्ष्या का परित्याग करें। जिस प्रकार भार को एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर रखता हुआ व्यक्ति विश्राम मान लेता है, उसी तरह यह सारा जगत है जिसमें दुःख का दुःख से शमन किया जाता है।

अन्योन्यातिशयात् पापात् सम्भवान् भोग सम्प्लवान्।
धर्मक्षयाच्च देवानां दिवि दुःखमवस्थितम्॥ 222॥

यह समझना चाहिए कि एक दूसरे के अतिशय पापों से हुए भोग के साधन धर्म के क्षय होने पर देवताओं को भी दैविक दुखों में ला पटकता है।

नानायोनिसहस्रेषु सम्भवः पुण्यसंक्षयात्।
रोगाश्च विविधाकारा देवलोकेषु संस्थिताः॥ 223॥

पुण्य के क्षीण होते ही नाना प्रकार की हजारों योनियों में जन्म लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। देवलोक में भी विविध प्रकार के रोग विद्यमान होते हैं।

यज्ञस्य हि शिरच्छिन्नमश्विभ्यां हि स्थितं पुनः।
तेन दोषेण यज्ञस्य शिरोरोगः सदैव हि॥ 224॥

---

32. चक्रवर्त्यादीनां नृपकोटयः — चक्रवर्त्यर्धपतिश्च भूत्रिभक्त्या महीपतिः। एते वै तु महाराजा शेषाश्च मण्डलेश्वराः॥ मण्डलीकोऽधिसामन्तः सामन्तो लघुसञ्ज्ञकः। चतुरंशिकाऽल्पराजाः शेषास्तु राजपुत्रकाः॥ स्वके स्वभुक्तानुसारे राज्यं कुर्वन्ति स्वेच्छया। अनेकभोगभोक्तारो राजक्रीडामनेकधा॥ तपसाराधितः पूर्वं महात्मभिरुमापतिः। तपसोऽर्थानुरूपैश्च राज्यं कुर्वन्ति भूतले॥ देवपूजार्चनं दानं पूज्यषड्दर्शनादिकम्। पुराणागमग्रन्थादि राजनीतिरनेकधा॥ अपराजितपृच्छायै 78, 4-8

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यज्ञ में अश्व का शिरोच्छेदन कर पुनः नियोजित कर दिया गया। इसी दोष से यज्ञ का शिरोरोग सदैव बना रहता है।

मार्तण्डभानोः कुष्ठत्वं वरुणस्य महोदरम्।
पूष्णोर्दशनवैकल्यं भुजस्तम्भः शचीपते॥ 225॥
क्षयरोगश्च सुमहान् सोमस्य परिकीर्तितः।
दक्षस्य दारिकां पौत्रीं ब्रह्मा कामितवान्यतः॥ 226॥
ज्वरश्च सुमहानासीद्दक्षस्यापि प्रजापतेः।
कल्पे कल्पे च देवानां महतामपि संक्षयः॥ 227॥

मार्तण्ड सूर्य को कुष्ठ रोग हुआ। वरुणदेव को जलोदर का रोग हुआ। पूषा को दाँतों की विकलता और शचीपति इन्द्र को भुजाओं का स्तम्भन हुआ। चन्द्रमा को महान क्षयरोग बताया गया है। दक्षकन्या की पौत्री पर ब्रह्मा आसक्त हुए और दक्ष प्रजापति को महाज्वर हुआ। यही नहीं, प्रत्येक कल्प में देवताओं की महत्ता क्षय होती रही है।

परार्धद्वय कालान्ते ब्रह्मणश्चाप्यनित्यता।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ 228॥

दो परार्धों के काल के अन्त में पितामह ब्रह्मा की अनित्यता रहती है अर्थात् उनका भी अन्त हो जाता है। इस तरह समस्त भूतप्राणि नाशवान है, कूटस्थ का नाम अक्षर कहा गया है।

स्वात्मदोषवर्जननिर्देशमाह —

क्रोधेन चाजेयद्देवान्योग स्थान शववत्प्रभुः।
कामक्रोधौ स्थितौ यत्र तत्र दोषास्तथात्मिकाः॥ 229॥
दुःखानि च समस्तानि संस्थितानि न संशयः।
विष्णोश्च जन्ममरणं मायावित्वं च सर्वतः॥ 230॥

यदि देवताओं का यजन क्रोधपूर्वक किया जाता है तो स्वामी का स्थान शव की तरह हो जाता है। जहाँ पर काम और क्रोध स्थित हैं, वहाँ अपने ही दोष स्थित हैं, ऐसा समझना चाहिए। वहीं पर समस्त दोष स्थित होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। अरे! भगवान् विष्णु का भी उनके मायावी दोषों के कारण सर्वप्रकारेण जन्म-मरण होता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

त्रिविधः कामशक्तिश्च सारथ्यं बन्धनं बलैः।
रुद्रेण त्रिपुरं दग्धुं दक्षयज्ञो विनाशितः॥ 213॥

कामशक्ति तीन प्रकार की हैं— 1. सारथ्य, 2. बन्धन और 3. बल वाली। भगवान् रुद्र के कारण त्रिपुर का दहन हुआ। राजा दक्ष के यज्ञ का विनाश हुआ था।

स्कन्दस्य जन्मतः शुक्रात्क्रीडाश्चान्याः सहस्त्रशः।
एवं विधैस्तु रागाद्यैः दोषैर्देवाः समन्विताः॥ 232॥
एभ्यः परं शिवः शान्तः परिपूर्णः सदा।

स्कन्द की जन्म से ही पराक्रम के फलस्वरूप हजारों अन्य क्रीड़ाएँ हुईं। इस प्रकार रागादि दोष तो देवताओं के साथ भी पूरी तरह लागू होते हैं किन्तु उपर्युक्त सभी दोषों से परम शिव शान्त हैं, वे सदा ही परिपूर्ण देव हैं।

एवमेतज्जगत्सर्वमन्योन्यातिशय स्थितम्॥ 233॥
दुःखैराकुलितं ज्ञात्वा सर्वेदं परमं व्रजेत्।
निर्वेदाच्च विरागः स्याद्विरागाज्ज्ञान सम्भवः॥ 234॥

इस तरह यह समस्त जगत एक दूसरे के साथ अतिशय में स्थित कहा गया है। इस कारण दुखों से व्याकुल होकर सभी लोग इन परमदेव की ओर बढ़ते हैं। विराग से निर्वेद होता है और विराग से ज्ञान का होना सम्भव होता है।

ज्ञानेन तत्परं ज्ञात्वा शिववन्मुक्ति माप्नुयात्।
समस्त दुःखनिर्मुक्तः स्वस्थात्मासु सुखी सदा।
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च मुक्तं इत्युच्यते बुधैः॥ 235॥

ज्ञान के द्वारा ही साधक उस परमतत्त्व को जानकर शिव के समान मुक्ति को प्राप्त करते हैं। समस्त दुखों से विनिर्मुक्त होकर तथा अपनी ही आत्मा में स्थित होकर बहुत सुखी रहते हैं। ऐसे ही व्यक्ति को ज्ञानीजन सर्वज्ञ, परिपूर्ण और मुक्त कहते हैं।

इति शिवधर्मोत्तरे संसार प्रसवाख्यानं नामाष्टमोऽध्यायः॥ 8॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तर पुराण में संसार प्रसव आख्यान नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ।

*****

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अथ स्वर्गनरकचिह्नो नाम नवमोऽध्यायः ॥ 9 ॥

स्कन्दोवाच —

अथ स्वर्गे भोगमनुभूयनराः क्षीणपुण्यास्तद्वासनानुभवादिकं लोकमागत्ये शुभे देशे जाति कुल रूपवयः श्रुतप्रज्ञः शील शौच सत्य दम दान दाक्षिण्यारोग्य सत्व बलोत्साह प्रभाव प्रधान धनधान्य रत्न वाहन हर्म्य प्रासाद गीतनृत्तवाद्यकाव्य कला सुख शय्यासन मृष्टान्नपान सुगन्ध सुगन्धपान (वास?) स्त्रीपुत्रपशुवस्त्रालङ्कारहिरण्यमहिभोगाय संच्छन्नाः सततमायतनाव सघन सभासत्र प्रपाराम तटाकदीर्घिकावोद्यान देवद्विज गुरु विनीत साधु तपस्य पूजा सत्कारानुष्ठानाभिरताः तपः स्वाध्यायायना-मृतज्ञानापवर्ग कथाभिरामाश्च भवन्ति।

स्कन्द बोले— स्वर्गलोक में सुलभ भोगों को भोगने वाला मनुष्य पुण्यों के क्षीण होने पर वहाँ निवास के अनुभव इत्यादि के साथ इस लोक में आता है। यहाँ पर वह अच्छे देश में, शुभ जाति में, शुभ कुल में जन्म लेता है। वह रूपवान, आयुवान, श्रुतप्रज्ञ होता है। वह शील, शौच, सत्य, दम, दान, दया, दक्षिणा, आरोग्य, सत्त्व, बल, उत्साह, प्रभाव प्रधान होता है। वह धन-धान्य, रत्न, वाहन, हर्म्य-हवेली, राजप्रासाद का सुख उठाता है। वहाँ गीत, नृत्य, वाद्यवादन, काव्यकला, सुख-शय्या, आसन का आनन्द उठाता है। वह मिठान्न, पेय, सुगन्ध, सुगन्धित पेय (वास?), स्त्री, पुत्र, पशुधन, वस्त्र, अलंकार, सोना जैसे पृथ्वी के भोगों को उठाता हैं। सतत आच्छादित रहने वाले घरों, सघन सभासत्रों, प्याऊ-पौंसले, बगीचे, तालाब, दीर्घिका, उद्यान-बाग से लाभान्वित होते हैं और देव-द्विज, गुरु विनीत, साधु तपस्वीजनों के लिए पूजित, सत्कारकर्ता, अनुष्ठानाभिरत रहने वाले, तप, स्वाध्याय, अमृतज्ञान और स्वर्गिक-सुन्दर कथा में रुचिशील होते हैं।

तस्माद्युक्तं च— स्वर्गीय कर्म कर्तुं वक्तुं च सत्क्रियाम्।

इसीलिए कहा गया है कि स्वर्गीय कर्म करके और स्वर्गयोग्य वचनों का प्रयोग करके अच्छी क्रियाओं में लगे रहना चाहिए।

धर्माद्राज्यं धनं सौख्यं धर्मात् सम्प्राप्यते यतः।
धर्ममेव ततः कुर्यात् सर्व कामार्थ सिद्धये॥ 1॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

धर्म करने से ही राज्य, धन, सुख और धर्म को प्राप्त करते हैं। अतएव सभी कामों की सिद्धि के लिए यहाँ-वहाँ धर्म का ही सम्पादन किया जाना चाहिए।

मुहूर्तमपि जीवेत् नरः शुक्लेन कर्मणा।
न त्वल्पमपि कष्टेन लोकद्वयं विरोधः॥ 2॥

यदि कोई व्यक्ति शुभ कर्मों के साथ एक मुहूर्त तक भी जीवित रहे तो उसको इन दोनों ही लोकों में अल्पमात्र भी दुःख अथवा कष्ट नहीं होगा।

अथ नरकेषु नराः पापेन कर्मणा यातनाश्चित्राः। कष्टाश्चानुभूयः भूमि मागच्छन्ति। ततः पापविशेषैः। वृक्षकीट पक्षि मृग जातिलक्षणेषु। प्रत्यक्ष नीलेषु। पुनः दुःखान्यनुभवन्ति।

अब यह जानना चाहिए कि मनुष्य अपने पापों से, पाप कर्मों से ही नरक की नाना प्रकार की यातनाओं-कष्टों का अनुभव करते हैं। वे यदि भूमि पर भी आते हैं तो विशेष पापों में पड़ते हैं। इन पापों के फलस्वरूप वृक्ष, कीट, पक्षी, मृग, पशुजाति के लक्षणों से प्रत्यक्ष रूप में पुनः दुखों के घर में पड़ते हैं और पुनः कष्ट का अनुभव करते हैं।

ततः करुणावश पापास्तद्वासना मात्रानुभाव निवृतैर्लक्षणै-मनुष्या जातौ जायन्ते तद्यथा ब्रह्महा क्षयरोगस्यात्। सुराप श्वापदन्तकः। सुवर्णचोरः कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः।

तत्पश्चात् करुणावश होकर रहने पर उनके पाप केवल वासनामात्र अनुभव से निवृत्त होकर रहने पर उनमें मनुष्य जाति के लक्षणों का समावेश होता है किन्तु, वे वहाँ भी ब्रह्मघाती होते हैं। क्षयरोगी होते हैं। वे सुरापायी, शिकारी, सुवर्ण के चोरीकर्ता, कुलक्षणों वाले, दुश्चर्मा और गुरुपत्नीगामी जैसे पापाचारी होते हैं।

पङ्कश्च तत्परीवादः श्रवणाब्दधिर स्वयम्।
मनुकर्तनात् प्रखरस्वामिनिलब्धरेकपतिः॥ 3॥

वे लड़ाई-झगड़ों के कीचड़ में फंसते हैं और कभी सत्य को सुनने के लिए तत्पर नहीं होते हैं। मना करने पर भी बहरे बन जाते हैं। वे प्रखर स्वामी को पाकर भी कंगाल ही बने रहते हैं।

हस्ताङ्कुकोर अपस्मार तदाज्ञा भङ्ग शुभगन्धादीमपरीविट्क्रमः।

ऐसे लोग इतने आलसी होते हैं कि मानों उनके हाथों को लकवा मार गया हो

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अथवा अपस्मार-मिरगी रोगी हों। वे उस प्रखर स्वामी की आज्ञा को भंग करते हैं और शुभ गन्धादि से रहित हो जाते हैं।

अवज्ञा कार्यं कथामिः। गुरुकार्यापेक्षी। दुष्प्रज्ञस्तत् कर्मशिशिर कृकलासः। कुपितमक्ष्मापयतः गुरुमवकामतः शिरोरोगः।

अब मैं उनके अवज्ञा के कार्यों को कहता हूँ। गुरु के बताए कार्यों को नहीं करना अथवा बड़े-बड़े कार्योंकी अपेक्षा रखने वाले शेखचिल्ली जैसे दुर्बुद्धि सत्कर्म में सदा विचलित रहते हैं। वे गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले होते हैं। कुपित होकर किसी को क्षमा नहीं करते। ऐसे में वे गुरु की अवमानना करते हैं। चिढ़े रहने से उनको सदैव शिरोरोग होता है।

एते गुरुकर्मविपाकः। चण्डालपतित पापिष्ठ रजस्वला संव्यवहारान्त्य जातिश्वत्री। वस्त्राहारी अग्निदः ष्टीरजतापहारी दन्तुरः कूटसाक्षी मुखरोगी।

ये गुरु कर्म विपाक हैं— चण्डाल, पतित, पापीष्ठ, रजस्वला और अन्त्यज ज़ाति की स्त्रियों के साथ व्यवहार करने वाले कोढ़ी होते हैं। वस्त्र चुराने वाले, आग लगाने वाले, ईंटों की मिट्टी और ईंधन को चुराने वाले बाहर दाँत निकले होते हैं। झूठी गवाही देने वाले मुखरोगी होते हैं।

मातृपितृगुरुतपस्विन्यादितः। बालवृद्धातुरशरणागत्त्यागी अनिमित्ततः पादाक्षिरोगी प्रतिज्ञाय ब्राह्मणस्यान्नदानादल्पायुः। तद्दत्यपहारादाम गर्भान्नपाकी। प्रपारामनाशकः। नैष्ठिक व्रतं प्रतिनिवृत्तः। स सदारोगी।

माता, पिता, गुरु, तपस्वी आदि और बाल, वृद्ध, बीमार, शरणागत का त्याग करने वाले और किसी से मित्रता नहीं करने के कारण पाँवों और आँखों के रोगी बने रहते हैं। वचन देकर भी ब्राह्मण को अन्नदान नहीं करने वाले, अल्पायु और ऋतुकाल पूरा न हुए, ऐसे कच्चे अन्न को पकाकर खाने वाले, प्याऊ और बगीचे को उजाड़ने वाले तथा किसी भी प्रकार का नैष्ठिक व्रत नहीं रखने वाले सदा ही रोगी रहते हैं।

पत्नी बहुत्वेन सत्येकामभिरामः। क्लीबः। स्वामिराधर्मे नियुक्तस्तदानुष्ठान सत्कारपूजा प्रदानादिषु शाठ्यव्यवहारी जलरोगी दुर्बलवधे बलवतः समुपेक्षायां गही नित्यम्। अन्नाहार्य जीर्णी। व्यवहार पक्षपातिभिह्वारोगी।

बहुत सी पत्नियों के होते हुए नपुंसकता के कारण काम से अवकाश पाए हुए

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Āgam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

स्वामी द्वारा किसी धर्म के अनुष्ठान में सत्कार करने, पूजा और दानादि देने के काम में लगाए जाने पर उन सबमें काम की चोरी करने वाले, व्यवहार में नमकहराम जलोदर के रोगी होती हैं। दुर्बलों का वध करने वाले और बलवानों की धौंस की सदा उपेक्षा अर्थात् दरगुजर कर देने वाले, अनाहार से जीर्ण हुए, व्यवहार में पक्षपात करने वाले बहुत ही रोगी होते हैं।

स्वयंप्रवर्तित धर्मानुष्ठानछेदिनः प्रतिष्ठा नियोगः। स्वयमग्रभुग्गल-रोगी। अकृत पञ्चमहायज्ञः लोक दुर्व्यवहारः। पर्वमैथुनि प्रमेही। स्वदारा-दन्यत्र धीमतः कोशाल्पत्वम्। परिक्षीण मित्र बन्धुः साधुस्वज़नावमानात् परिभूतसीत्रक्षाः। क्षीणेन्द्रियवृत्तिश्च। अतिथीन् परित्यज्यागतः कपोल-पिलकः।

अपने ही चलाए धर्म-मतानुष्ठान को भी छेदन करने वाले, प्रतिष्ठा से रहित, सबसे पहले आप ही आप खा लेने वाले गले के रोगी होते हैं। पंच महायज्ञ नहीं करने वाले, लोक दुर्व्यवहारी, पर्वकाल में भी मैथुन करने वाले प्रमेह के रोगी होते हैं। अपनी पत्नी के होते हुए भी पराई स्त्रियों में बुद्धि लगाने वाले, सदा अपने कोश की अल्पता रखने वाले अतिव्ययी मित्र और बन्धु की कमी से ग्रस्त रहते हैं। साधुओं और स्वजनों का अपमान करने से तीनों से परिभूत या दृष्टि से गिरे हुए, इन्द्रियों की वृत्ति के क्षीण होने से, अतिथियों का त्याग करके आगन्तुकों की मिथ्या प्रशंसा करने वाले या कपोल पिलक होते हैं।

अथ सूर्यास्तमये प्रतिश्रयादानादिष्ट पत्नी वियोगः। क्षमसागुरु मित्रमुपचारतः प्राप्तार्थभ्रंशः विस्त्रम्भापहारी सर्वदुःखाश्रयम्। मिथ्या गुणैरात्मोत्कर्षी वामनः। गोपृष्ठदायाल कुटीलतिः। गोघ्नो जात्यन्धः। गोषु दुःखकारी गोनासः। गोर्निर्दयश्चिपिटिसानः। निस्त्रेहः स्वभार्यायां गलगुण्डी। क्रोधिनः चण्डालाः पिशुनः पूतिनासिकः।

अब (यह जाने कि) सूर्यास्त होने पर इच्छुक को विश्रान्तिगृह न देने पर पत्नी वियोग होता है। सक्षम होते हुए भी गुरु, मित्र के उपचार के लिए प्राप्त धन का अनुचित उपयोग करने वाला और विश्वासघाती समस्त दुखों का आश्रय होता है। मिथ्यागुणों का आत्मोत्कर्ष अर्थात् अपने मुँह मिया मिठू बनने वाला बौना होता है। गाय की पीठ पर लकड़ी मारने वाला और गोघाती जात्यन्ध होता है। गायों को दुःख देने वाला, गायों का विनाशक, गाय को निर्दयता से पीटने वाला, अपनी पत्नी से स्नेह नहीं करने वाला,

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उसके गले की गुण्डी (गले का तौक या भार) बना रहने वाला, क्रोधी, चण्डाल, ठग पवित्रता का नाश करने वाला दुर्गन्धयुक्त नाक वाला होता है।

पूतिवक्त्रश्च पूतिचिह्नः त्रपुताम्रसीसादि स्पृष्टम्। त्रपुताम्रसीस चामर विक्रयी अजैकशफ विक्रयान्मृगव्याधः। कुण्डाशी भ्रतकः। तेलिको नास्तिकः। अङ्गोपजीवी अभक्ष्याभक्षी। गण्डमाली। अप्रतिरूप व्यवहारी (न्यास) ज्ञानमन्यायतः प्रतिग्रहीता मूकः। पुस्तकापहारी। अन्धः पुण्य कथाक्षेपी।

इसी प्रकार दुर्गन्धयुक्त मुख वाला, अपवित्र चिह्न, पीतल, ताँबा, सीसादि पात्रों को छूने वाला, पीतल, ताँबा, सीसा जैसे धातु और चामर को बेचने वाला, बकरी व घोड़ों का विक्रय करने वाला, हरिणों का शिकारी, व्यभिचारिणी स्त्री के पुत्र का दिया खाने वाला, पेट भरने वाला, तेली, नास्तिक, अंगोपजीवी अर्थात् मजदूरी करने वाला, अभक्ष्य भक्षण करने वाला गर्दन के फोड़ा-फुँसी से पीड़ित होता है। नकली वस्तुओं को बेचने वाला, धरोहर के धन को अन्यायपूर्वक हड़प जाने वाला गूँगा होता है। पुस्तक चुराने वाला और पुण्य की कथा में विक्षेप करने वाला अन्धा होता है।

वक्रनासः शिष्टाचार धर्मनिन्दकः। काकाक्षः साधु तपस्वि देवद्विज गुरुज्ञानयोगद्वेष्टा। वक्रास्यः पुण्यदान प्रवृत्ति प्रतिषेधकः। कृमिदन्तकः देवद्विजस्वापहर्ता। पान पात्राशी। धर्मदूषकः क्रूराक्षः पुण्यकथापराङ्-मुखः। स्त्रीनिर्जितः तिल तैल घृतापहारी। सकलदेह जर्जरी सदास्त्रावित-दुपयोक्ता।

शिष्ट व्यवहार और धर्म का निन्दक टेढ़ी नाक वाला होता है। कौआ की तरह आँख बदल देने वाला, साधु, तपस्वी, देव, द्विज, गुरु, ज्ञान, योग से द्वेष करने वाला भी वैसा ही होता है। दान-पुण्य की प्रवृत्ति में बाधा पहुँचाने वाला टेढ़े मुख वाला होता है। देवता और द्विजों के अधिकार का हरण करने वाला कृमिदन्तक (पायरिया का रोगी) होता है। सुरा के पात्रों में खाने वाला व धर्मदूषक, क्रूर आँखों वाला, पुण्यकथा से परांगमुख रहने वाला, स्त्रियों का दास, तिल का तेल व घी को चुराने वाला पूरी देह से जर्जर होकर सदा घावों के रिसने वाला होता है।

तटाकारामभेत्ता चाङ्गहीनः। प्रभोरादिव्य व्यवस्था समभेदस्त-स्करः व्यवहारेष्वमध्यस्थ चलग्राही। अभीत भृत्यः सदा पुरुषो व्याधिभूतः। परदारा- भिगामी गुप्तदारः। स्वामिद्रोही वातरोगी। गोष्विकीर्णी दुश्चर्मी।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

खरात्वगामी प्रमेही। धर्म पत्नीष्वान्ये मैथुन प्रवर्तकः सूकरः। सगोत्र सवर्ण स्त्रीगामी शिपिविष्टः। कृतघ्नः सर्वारम्भी विफलश्च।

जलाशय और बगीचे को नष्ट करने वाला अंगहीन होता है। प्रभु की दिव्य व्यवस्था में भेद करने वाला तस्कर होता है। व्यवहार में मध्यस्थ रहकर चल सम्पत्ति को ग्रहण करने वाला, निडर होकर सदा नौकरों के लिए दुःखदायी बनने वाला, गुप्तद्वार से पराई स्त्री के पास जाने वाला, अपने स्वामी का विरोधी वातरोगी होता है। गोविक्रीणी खराब चमड़ी वाला, प्रमेह रोगी होता है। अपनी पत्नी के साथ अन्य को मैथुन करने में प्रवृत्त करने वाला शूकर होता है। सगोत्री, सवर्णा स्त्रीगामी कोढ़ी व गंजा होता और कृतघ्न सर्वारम्भों में विफल रहने वाला होता है।

ततः शेषाः। कुब्ज मुण्ड कुण्ड मण्डव्यङ्ग दरिद्रास्फाटित पाणि-पादाङ्गावयव धूसराश्छद्मिनः। परपिण्डोपजीविनश्चिर कप्पटधराश्चिर मलिन वाससः क्षुत्पिपासातुराः प्रेतरूपिणस्सततमुद्विग्न वासहृदयाः बहुल प्रलापिनः पुण्यकथा पराङ्मुखा स्त्रीजिता स्त्रीष्वासक्तहृदया स्त्रीभूत-मद्यमांसान्नपान पापार्थ (नानार्थ) निरताः नित्यकुद्धाः पाप निरताः स्मृति परिहीनाः पुण्यापुण्य द्वेष्टारः परकर्मकीर्तन निरताः हीनाङ्गास्विन्ननाना पावन वस्त्र शय्यासनाः स्वल्पायुषः स्वल्पबुद्धियः शठषण्डमुड्डुशैलूष तस्कर परप्रेष्य कर्मकर व्याधिदुःखिताः। खर्वोखग्रान्ध दासि सङ्कीर्ण-निरताः क्रूर कर्माणश्चोत्पद्यन्ते यस्मादानेन पाप प्रायश्चित्तं कर्तव्यं चिर्ण प्रायश्चितम्। परिशुद्धलक्षणा जायन्ते। गर्भनारकाश्च।

और शेष बातों को जानिये— कुबड़ा, मुण्ड, कुण्ड, मण्डव्य अंगों वाला, दारिद्र्य से फटे हाथ-पाँव जैसे अंगों वाला, आयु में धूसरा या मटमैला, दूसरे के अन्न पर गुजारा करने वाला, सर्वदा कपटी व्यवहार करने वाला, सदैव मैले-कुचैले वस्त्र धारण करने वाला, भूख-प्यास से दुखी और प्रेत रूपी उद्विग्नता को सदा हृदय में बसाए रखने वाला होता है। बहुत बोलने वाला, पुण्यकथा से मुँह मोड़कर रहने वाला, स्त्रियों द्वारा जीता गया, स्त्रियों में आसक्त हृदय वाला या स्त्री जैसा ही बना हुआ, मद्य-मांस, अन्न-पान की कमाई में निरत रहने वाला, सदा क्रोधी, पाप में निरत रहने वाला, स्मृतिहीन, पुण्य-पाप द्वेष्टा, पराए कामों की कीर्ति गाने में लगा रहने वाला, हीन अंगों वाला एवं नाना प्रकार के पावन वस्त्र, शय्या, आसन से रहित कम आयु वाला होता है। दुष्टबुद्धिवाला, षण्डमुड्डु, नट, तस्कर, नामर्द, मुण्डी, अभिनेता, चोर, दूसरे के बताए कामों को करने वाला व्याधियों से दुखी होता है। छोटे खंज अंगों वाला व अन्धा होकर

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

दासियों के घेरे में घिरा रहने वाला, क्रूर कर्मों को करने वाला, दान के पापों के प्रायश्चित में देरी करने वाला— ऐसे ही गर्भ में आए नारकियों के परिशुद्ध लक्षण होते हैं।

पुण्यापुण्य हेततुत्वादुभयरूपिणः सङ्कीर्ण फलाः तत्कर्माधिक्येन देहभोग व्यवहारचार निरता भवन्ति। तस्मात् कः। यस्मात् पापेन दुःखानि तीव्राणि सुहूनि च तस्मात् पापमकर्तव्यमात्मापीडाकरं हि तत्।

पुण्य और अपुण्य के हेतु से उभय रूपी संकीर्णफलाफल उन कर्मों के आधिक्य से देहभोग व्यवहार में निरत होते हैं। इससे क्या? जिस पाप से बहुत सी तेज पीड़ाएँ होती हैं, उससे उस पापकर्म कर्तव्य की अपेक्षा आत्मपीड़ा होना हितकर है।

यस्मिन् देशे च काले च वयसाः यादृशेन च।
कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तधा तेन भुज्यते॥ 4॥

जिस देश और काल में अपनी आयु से अथवा देखने से जो भी शुभाशुभ कार्य किए जाते हैं, उन-उनको वे अवश्य ही भोगते हैं।

तस्मात् सदैव दातव्यमविवच्छिन्न सुखार्थिभिः।
विच्छिद्यन्ते यथा भोगा ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥ 5॥

इसलिए सदा अविच्छिन्न सुख चाहने वाले लोगों को चाहिए कि वे दान करें। भोग वैसे ही समाप्त हो जाते हैं जैसे ग्रीष्मकाल में छोटे नदी-नाले सूख जाते हैं।

सत्यं वक्तुमशेषमस्ति सुलभा वाणीमनोध्याय तुं।
दातुं दानपरं शरण्यमभयं देयं पितृभ्योजलम्॥ 6॥

मैं सत्य कहता हूँ कि कुछ भी कम नहीं है। वाणी मन से ध्यान करे तो सब कुछ सुलभ है। अतः दाता को दान करके शरणागत को अभयदान देना, पितरों को जल देना चाहिए।

पूजार्थं सदाशिवस्य विमलः सध्यानयज्ञः परम्।
क्षुद्याधेः फलमूलमस्ति शमनं क्लेशात्मकैः किं धनैः॥ 7॥

साथ ही सदाशिव के निर्मल ध्यानयज्ञ पर दृढ़ रहकर पूजन और अपने पास धन है तो उससे भूखों को फल-मूल देकर उनके क्लेश का शमन करना चाहिए।

इति शिवधर्मोत्तरे स्वर्गनरकचिह्नो नाम नवमोऽध्यायः॥ 9॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तरपुराण में स्वर्गनरक चिह्न नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ।

*****

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अथ ज्ञानयोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ 10 ॥

अथ संसारचक्रात् मुक्त्योपायज्ञानयोगवर्णन। स्कन्दोवाच —

अथ संसार मुक्त्यर्थं ज्ञानयोगं ब्रवीमि ते।
शिवप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता॥ 1॥

अब मैं संसारचक्र से मुक्ति पाने के लिए उपाय रूप में ज्ञानयोग कहता हूँ। यह ज्ञान शिव (कल्याण) का प्रकाशक है। एकचित्तता (एकाग्रता, मन का निरोध) ही योग है।

स्वसिद्धान्ता विरोधेन यस्तर्केण विचायेत्।
अथ ज्ञानापवर्गार्थं स तत्वं वेदने रतः॥ 2॥

अपने मत-सिद्धान्तों के विरोध में तर्क-सम्मत विचार करना चाहिए और ज्ञान तथा अपवर्ग के तत्त्व को जानने में लगना चाहिए।

पूर्वोत्तर विरोधेनक्रोत्रार्थोभिमतो भवेत्।
इत्यादि व्यूहतस्तर्कं शुष्कतर्कं विवर्जयेत्॥ 3॥

प्रारम्भ और उत्तरवर्ती विरोध के साथ कोई यहाँ कोई आधा मत रखता है और कोई सहमत होता है। ऐसे ही तर्कों के व्यूह और बुनियाद विहीन बातों को त्याग देना चाहिए।

तस्मादागमयुक्तैव सूक्ष्मार्थं प्रविचारणम्।
कर्तव्यं नानुमानेन केवलेन विपश्चिता॥ 4॥

ऐसे में आगम-मान्यता से युक्त होकर ही सूक्ष्म अर्थ पर विचार करना चाहिए। अनुमान का काम तो केवल बुद्धिजनों के लिए छोड़ दें।

हीनमध्योत्तमफलं बहुद्वारं यतः शुभम्।
तस्मात् परीक्ष्यकुर्वीत पुण्यं साधुमहाफलम्॥ 5॥

प्रारम्भ, मध्य और उत्तम परिणामों के लिए कई अच्छे द्वार है, उनमें शुभ भी हैं। इसलिए उनकी परीक्षा करनी चाहिए और फिर पुण्य करें ताकि अच्छा फल मिल सके।

आदिमध्यान्तनिर्मुक्त स्वभाव विमल प्रभुः।
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयो शिवागमे॥ 6॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

स्वभाव से विमल प्रभु आदि, मध्य और अन्त से विमुक्त हैं। वे सर्वज्ञ और परिपूर्ण हैं— ऐसे भगवान् शिव को शिवागम से जानना चाहिए।

शिवशास्त्रप्रशंसाह —

सर्वार्थ भासकं ज्ञानं शिवयोगश्च शाश्वतम्।
प्रकाशयति मुक्त्यर्थं मुमुक्षुणामयं शिवः॥ 7॥

शिवागम सम्मत यह ज्ञान सब अर्थों का प्रकाशक है। शिवयोग शाश्वत है और मुमुक्षु लोगों की मुक्ति के लिए शिव इसको प्रकाशित करते हैं।

बहुत्वेन हि शास्त्राणां सर्वज्ञेन शिवेन यत्।
प्रणीतममलं शास्त्रं तत्प्रमाणं न संशयः॥ 8॥

सर्वज्ञ शिव के द्वारा बहुत से शास्त्रों में यह जो निर्मल शास्त्र प्रणीत हुआ है, उसके प्रमाण की बराबरी का निःसन्देह अन्य कोई शास्त्र नहीं है।

यः सर्वज्ञः सुखं पूर्णः स्वभावविमल प्रभुः।
सर्वदोष विनिर्मुक्तो ब्रूयात् सकथमन्यथा॥ 9॥

जो प्रभु के विमल स्वभाव का सर्वज्ञ पूर्ण सुख है, वह सब दोषों से रहित है, ऐसा अन्य के लिए मैं कैसे कह सकता हूँ।

अभावादीश्वरस्यैवं जगत्सृष्टिः कथं भवेत्।
अचैतन्यात् प्रभासस्या अज्ञात्वा पुरुषस्य च॥ 10॥

इस प्रकार के ईश्वर के अभाव में संसार की यह सृष्टि कैसे हो सकती है? अचैतन्य में इसकी प्रभा को पुरुष नहीं जान सकता है।

प्रधानपरमाण्वादि यावत् किञ्चिदचेतनम्।
तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना[1]॥ 11॥
तथा प्रज्ञास्य शुद्धभावेनसत्र निरोष्ठे सेवते।

प्रधान परमाणु आदि जो भी अचेतन हैं, चेतन सम्बद्ध बीज के बिना उनका सृष्टिरचना प्रकार किसी ने नहीं देखा है। प्रज्ञा के शुद्ध भाव से ही कोई बात अपने होठों तक लानी चाहिए।

---

1. अभावे तस्य विश्वस्य सृष्टिरेषां कथं भवेत्। अचेतनत्वादज्ञानादनयोः पशुपाशयोः॥ प्रधानपरमाण्वादि यावत् किञ्चिदचेतनम्। तत्कर्तृकं स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना॥ जगच्च कर्तृसापेक्षं कार्यं सावयवं यतः। तस्मात्कार्यस्य कर्तृत्वं पत्युर्न पशुपाशयोः॥ इति पाठः। शिव. वायवीय. पूर्व. 6, 3-5

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

त्रिस्यवयं धर्माधर्मोपदेशश्च बन्धमोक्ष विचारणम्।
न सर्वज्ञं विनापुण्यामादिगर्भर्न प्रसिध्यति॥ 12॥

तीनों बातों पर विचार करना आवश्यक होता है— धर्माधर्म और बन्धन तथा मोक्ष के उपदेश। बिना सर्वज्ञ के प्रारम्भ में ही कोई पुण्य प्रकट नहीं कर सकता है।

तत्र वेद्यं विनाक्रान्ताः कृश्यन्ते रोगिणो यथा।
शिवं विना नराक्रान्तं जगत्सर्वं सदा भवेत्॥ 13॥

जैसे वैद्यराज बिना कोई जोर जताए रोगियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वैसे ही शिव भी बिना किसी आग्रह के नरों को पूरे जगत में आकर्षित करते हैं।

असत्यमिस्मन् जगन्नाथे तमोभूतमिदं जगत्।
सूर्येणैव विहीनं हि निरालोक भविष्यति॥ 14॥

इन जगन्नाथ शिव के न होने पर यह सारा असत्य जगत वैसे ही तमोभूत या अन्धकारमय हो जाता, जैसे सूर्य के प्रकाश के अभाव में यह जगत प्रकाश रहित हो जाता।

यथानादि प्रवृत्तोयं घोरः संसारसागरः।
शिवोऽपि हि यथानादिः संसारान्मोचकः स्थितः॥ 15॥

जिस प्रकार यह घोर संसार सागर अनादि काल से ही प्रवृत्त हैं, वैसे ही शिव भी अनादि काल से इस संसार से मुक्ति दिलाने के लिए स्थित है।

व्याधीनां भेषजं यद्वत् प्रतिपक्ष स्वभावतः।
तद्वत् संसारदोषाणां शिव एव मुक्तिदा ततः॥ 16॥

बीमारियों के लिए जिस प्रकार दवा स्वभाव से ही प्रतिपक्ष का काम करती है, उसी प्रकार शिव ही संसार के दोषों से मुक्ति दिलाने वाले हैं।

तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णः परः शिवः।
अस्ति नाथः परित्राता पुंसां संसार सागरात्॥ 17॥

इसलिए अनादि, सर्वज्ञ, परिपूर्ण परम शिव ही नाथ हैं और वे मनुष्यों को इस संसार सागर से परित्राण देने वाले हैं।

शिवज्ञानप्रशंसाह —

येऽभ्यसन्ति शिवज्ञानं शिवोक्तं शिवभाविताः।
ते भवन्ति शिवाः शान्ताभक्त सातत्यभावितः॥ 18॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जो शिवोक्त शिवज्ञान का अभ्यास शिवभाव के साथ करते हैं, वे शिव के प्रति सतत भाव रखने से शान्त भक्त होते हैं।

यदि चेत प्रमाणस्या दानं सर्वत्र भाषितम्।
किं प्रमाणं ततो ग्राह्यं ब्रूत पश्यामहे बुधः॥ 19॥

यदि इस ज्ञान के प्रमाण के अनुसार दान सभी ओर कहा गया है तो फिर अन्य क्या प्रमाण ग्रहण किया जाए? जो हमने कहा है, वह बुद्धिमानों द्वारा कहा गया है।

वाक्यलिङ्गा हि वक्तारः क्रियालिङ्गाश्च कारकाः।
तस्मात् स्वेनैव लिङ्गेन विज्ञेयास्तद्गुणा बुधैः॥ 20॥

वक्ता तो केवल वाक्यलिंगा ही हैं, कहकर संकेत देने वाले हैं परन्तु उसके अनुसार करने वाले तो क्रियालिंग अर्थात् क्रिया से संकेत देने वाले हैं। इसलिए अपने ही लक्षण से समझदारों ने उसके गुणों को पहचाना है।

आगमत्वेऽपि सामान्ये कः प्रद्वेषः शिवागमे।
अनायासेन यत्रोक्ता मुक्तिरेकेन जन्मना॥ 21॥

आगम भी तो सामान्यतया शिवागम से कोई द्वेष नहीं रखते हैं। अनायास ही उनमें कही हुई मुक्ति एक ही जन्म में प्राप्त हो जाती है।

सर्वज्ञारागमुत्सृज्य गुणेष्वाधीयतां मनः।
यतो गुणस्ततः पुंसां कल्याणं सततं स्थितम्॥ 22॥

सर्वज्ञ राग से छुड़ाकर गुणों में अध्ययन का मन लगा देते हैं। जहाँ गुण हैं, वहाँ पुरुष रहे तो कल्याण लगातार स्थित समझना चाहिए।

युक्तं चैतद्गुणैः सर्वैर्यस्माद्गानं शिवात्मकम्।
तस्मात्तदेवयदभ्यस्त यद्यस्ति गुणगौरवम्॥ 23॥

इन सभी गुणों से युक्त रहते हुए जिनमें कि शिवात्मक गान होता है, अभ्यास किया हो तो वह इनके गुण गौरव को हुआ जान सकता है।

अन्यासन्यासी सुकरमितीव च महाफलम्।
कः प्राज्ञः कार्यमुत्सृज्य दीर्घसूत्रं समाचरेत्॥ 24॥

और अच्छी तरह किए जाने योग्य आसनों को बहुत करने का भी महाफल होता है। कौन बुद्धिमान ऐसा है जो कार्य को छोड़कर प्रमादी होना चाहता है!

मध्वर्थी पर्वतं कश्चिद्दूरं सम्प्रस्थितः शनैः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यद्यके मधु सम्पश्यत् किमर्थं पर्वतं व्रजेत्॥ 25॥

जो मधु का इच्छुक होता है, वह पर्वत कुछ दूर भी हो तो धीरे-धीरे प्रस्थान करने लगता है। यदि उसको मार्ग में ही मधु दीख जाए तो फिर उसके पर्वत पर जाने का क्या अर्थ रह जाता है!

एवमेकैक भाविकां विमुक्तिं परतः स्थिताम्।
विहायसैकभविकां कः प्राज्ञः प्रतिपत्स्यते॥ 26॥

इसी प्रकार से एक-एक भावना करने वाले को विमुक्ति तो आगे ही खड़ी मिलती है, फिर उसको छोड़कर कौन भावना करने वाला ऐसा होगा जिसका प्राज्ञ प्रतिपादन करें!

यद्यन्यत्रागतः कालस्तत्र तज्जन्म गच्छताम्।
जिज्ञास्यताध्यायन्तावन्मुक्तिरेकेन जन्मना॥ 27॥

यदि काल उनको दूसरे स्थान पर लेकर भी जाए तो वहाँ जाकर जन्म ग्रहण करते हैं और वहाँ भी अपनी जिज्ञासा और ध्यान करने ही से जन्म से मुक्ति पा जाते हैं।

यदि एनाम न मुक्तिस्यादेकेनै वात्र जन्मना।
अनेक भाविका मुक्तिर्भवतां केन वार्यते॥ 28॥

यदि उनको एक ही जन्म में मुक्ति यहाँ नहीं मिलती तो फिर उनको अनेक जन्मों की भावना करने पर भी मुक्ति का वरण किससे हो सकता है!

तस्माद्यत्रैक भविकां मुक्तिज्ञानेन निश्चिता।
तच्छ्रुत्वा क्रियतां नित्यमप्रत्यक्षासु मुक्तिषु।
यदा समीपे दूरे च सदृशं भोजनब्द्यम्॥ 29॥

इसलिए भावनापूर्वक प्राप्त मुक्ति एक ही जन्म में ज्ञान से निश्चित होती है। उस ज्ञान को सुनने से नित्य ही अप्रत्यक्ष मुक्ति से यदि समीप हो या दूर उन दोनों के भोग तो एक जैसे होते हैं।

सत्काले च विकाले च भोक्ता चाति भुभुक्षितः।
तयोर्गृह्णाति कर्तारः कथयन्ति विपश्चितः॥ 30॥

अच्छे या बुरे समय में भोक्ता तो अत्यन्त भूखा होता ही है। उसको तो भगवान् ही ग्रहण करते हैं, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं।

समीपे यदि मन्येत् मुक्तिं मुक्तिमेकां शिवात्मिकाम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सन्मार्गौषधदृष्टान्तः स्वयमुत्प्रेक्ष्य युक्तितः ॥ 31 ॥

मुक्ति को यदि समीप मानें तो वह एक मात्र शिवात्मा से प्राप्त मुक्ति ही है। सन्मार्ग की इस औषध को देखकर स्वयं को युक्तिपूर्वक उसकी उत्प्रेक्षा करनी होती है।

वक्तव्यं प्रतिबोधार्थं कार्याकार्य विवेकिनाम्।
इति ये परमं शान्तं प्रतिपन्ना महेश्वरम्॥ 32 ॥

विवेकीजनों के वक्तव्य तो कार्य और अकार्य के समझने के लिए होते हैं। इस तरह महेश्वर शिव के शरणागत होने पर ही परमशान्ति को प्राप्त होंगे।

ते लभन्ते सुखेनैव विमुक्तिं भवसागरात्।
अकर्ताज्ञः पशुः भोक्ता विभुर्निश्चितवान् प्रभुः ॥ 33 ॥

वे ही इस भवसागर से आसानी से सुखपूर्वक मुक्ति का लाभ लेते हैं। अकर्ता, अज्ञ, पशु, भोक्ता, विभु तो निश्चित प्रभु शिव ही हैं।

किञ्चित्कर्ता च किञ्चिज्ज्ञः पुरुषः पञ्चविंशकः।
स करोति सधनः सर्वं स्वभोग्यं य करोति च॥ 34 ॥

कतिपय कर्ता और किंचित् अज्ञेय पच्चीस पुरुष सर्वप्रकार धन सहित अपने भोग्य को करते हैं।

अस्वातन्त्र्यादकर्तायं किञ्चित्कर्ता निरन्धवत्।
न वेत्ति तत्वतः सर्वं तेनाज्ञः पुरुषः पशुः॥ 35 ॥

अस्वतन्त्र रहकर यह अकर्ता जो कुछ करता है, वह अन्धे की तरह व्यर्थ है। वह सब को तत्त्वपूर्वक नहीं जानता है। इसी से वह अज्ञानी पुरुष पशु के समान स्वीकारा जाता है।

बुध्याध्यवसितं ज्ञानं ज्ञानं तत् किञ्चिदुच्यते।
अचेतनं विभुं सूक्ष्मं भोग्यं साधारणं ध्रुवम्॥ 36 ॥

बुद्धि से ज्ञान का अध्यवसाय होता है तभी वह ज्ञान कहा जाता है। अचेतन रहने वाले के लिए तो परमात्मा सूक्ष्म व साधारण भोग्य ही देते हैं, यह निश्चित है।

चतुर्विंशत् कठोरं च प्रधानं गुणलक्षणम्।
पुंसां भोगापवर्गार्थमीश्वरेच्छा प्रचोदितम्॥ 37 ॥

प्रधान गुणों के चौबीस लक्षण हैं। उन्हें पुरुषों के भोग के लिए और अपवर्ग के लिए ईश्वर की इच्छानुसार चलाया गया है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

प्रधानार्थं भवद्रुद्रः ततो विष्णुः पितामहः।
सत्कार्यकरणोपेतास्सु विशुद्धो महाबलाः॥ 38॥

प्रधान के अर्थ में रुद्र है, तदोपरान्त विष्णु और पितामह होते हैं। ये सत्कर्म करने में सहायक बहुत ही शुद्ध और महाबली होते हैं।

जगतः कारणत्वं च त्रयो देहव्यवस्थिताः।
प्रधानादभवद्बुद्धिः जगद्धेतुः शिवेच्छया॥ 39॥

जगत के कारण रूप में ये तीनों ही देह में व्यवस्थित रहते हैं। प्रधानता से ही बुद्धि होती है जो जगत के हित के लिए भगवान् शिव की इच्छा से होती है।

बन्धेरपि च संक्षोभादहङ्कारस्त्रिधा भवेत्।
अहङ्काराच्च सूक्ष्माणि तस्मात्त्रीणीन्द्रियाणि च॥ 40॥
सूक्ष्मेभ्यः पञ्चभूतानि तेभ्यस्थूलमिदं जगत्।
चतुर्विंशकमव्यक्तं पुरुषः पञ्चविंशकः॥ 41॥

बन्धन के भी संक्षोभ या दुःख से अहंकार तीन प्रकार होता है। अहंकार से ही सूक्ष्म तीन इन्द्रियाँ होती हैं और इन सूक्ष्म इन्द्रियों से सूक्ष्म पाँच महाभूत है तथापि इस जगत के लिए तो वे भी स्थूल ही है जो चौबीस हैं और अव्यक्त पुरुष भगवान् उनमें पच्चीसवें हैं।

रुद्रः षड्विंशकः प्रोक्तः शिवश्च परमस्थितः।
सप्तविंशकः शात्तः सुसूक्ष्मः परमेश्वरः॥ 42॥

रुद्र इनमें छब्बीसवें कहे गए हैं और शिव तो परम स्थिति में है ही जो सत्ताइसवें सुसूक्ष्म रूप में परमेश्वर कहे गए हैं।

स्वर्गापवर्गयोर्दाता तं विज्ञाय विमुच्यते।
ज्ञानेन हि भवेन्मुक्तिर्न च यस्यास्ति संशयः॥ 43॥

जो स्वर्ग व अपवर्ग के दाता है, उनको जानकर ही लोग मुक्त होते हैं। ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

समुक्ति प्रत्ययार्थाय शिवयोगं समभ्यसेत्।
योगसिद्ध्यैकदेशेऽपि दृष्टमोक्षे भवेन्मतिः॥ 44॥

उस मुक्ति को प्राप्त करने के लिए शिवयोग का अभ्यास करना चाहिए। योगसिद्ध ऐसे साधक को भी देश में देखने से मोक्ष के लिए मति होने लगती है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

दृष्टमेतन्मया यद्वमोक्षस्तद्वद्ध्रुवं भवेत्।
न केवलं हि योगेन मुक्तिः सम्प्रत्ययो भवेत्॥ 45॥
तदक्षेगुणमैश्वर्यं योगाभ्यासात् प्रवर्तते।

मेरे द्वारा यह सब देखा गया अतः उसी के समान मोक्ष भी मेरा होगा ही, यह ध्रुव सत्य है— ऐसी मति हो जाती है। केवल योग से ही इस प्रकार की मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। यह गुण और ऐश्वर्य की धुरी योगाभ्यास से ही बनती है।

ध्याताध्यानध्येयप्रयोजनम् —

ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यद्वा ध्यानं प्रयोजनम्॥ 46॥
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगं युञ्जीत् योगवित्।

ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का प्रयोजन— इन चारों का ज्ञान करके ही योगविद् को योग से जुड़ना चाहिए।

ज्ञानवैराग्यसम्पन्नो श्रद्धाधान क्षमान्वितः॥ 47॥
शिवभक्तः सदोत्साही यातेर्थं पुरुषः स्मृतः।

ज्ञान, वैराग्य से युक्त होकर, श्रद्धा का आधान करते हुए क्षमा गुण को धारण करना चाहिए— ऐसा शिवभक्त सदा ही उत्साही होता है और इससे अर्थधारक पुरुष को जानना चाहिए।

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुः शिवचिन्ता मुहुर्मुहुः॥ 48॥
ज्ञानेन परिशुद्धेन ज्ञानध्यानमिदं स्मृतम्।
सकलः सतनुः शान्तः सर्वज्ञः सर्वतः प्रभुः॥ 49॥

ध्यान शब्द 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु से बना है। इसके द्वारा बारम्बार शिव का चिन्तन करना चाहिए। ज्ञान से परिशुद्ध होने से ही इसे ज्ञानध्यान कहा जाता है। इससे ही सारा शरीर शान्त होकर सर्वज्ञ प्रभु सर्वत्र है, ऐसा बोध करता है।

नानारूप विशुध्यर्थं नानासिध्यर्थमीश्वरः।
विमुक्तिः प्रत्ययः पूर्वमैश्वर्यं चाणिमादिकम्॥ 50॥

नाना रूपों की विशुद्धि और नाना ईश्वरीय सिद्धियों सहित विमुक्ति से पूर्व अणिमादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है।

इत्येद्विविधं ज्ञेयं शिवध्यान प्रयोजनम्।
युज्यते तेन पुरुषः शिवः संयोजकः स्मृतः॥ 51॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इसे भी शिव के ध्यान के प्रयोजन से विविध प्रकार का जानना चाहिए। जिससे पुरुष योग करता है, उसको ऐसा कराने में शिव को ही संयोजक माना जाता है।

फलेनयोजकः तस्माद्ध्ययेत् सततमीश्वरम्।
स्वदेहायतनस्यान्तः मनसा स्थाप्य शङ्करम्॥ 52॥
हृत् पद्मपीठिकामध्ये ध्यानज्ञानेन योजते।

इसलिए इस फल के योजक ईश्वर शिव का सतत ध्यान किया करें। इसके लिए अपने देहरूपी मन्दिर के भीतर और मन में शिव की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। अपने हृदय कमल रूपी पीठिका पर उनको ध्यान रूपी योग से योजित करना चाहिए।

अन्यदप्याह —

नाजीर्णाम्लरसोद्गारे न च विण्मूत्रदूषिते॥ 53॥
न छर्द्यामतिसारे वा नातिभुक्तौ श्रमान्विते।
न चाति कर्मनिरतचिन्ता व्याकुलितेन्द्रियः॥ 54॥

योग साधक के लिए यह आवश्यक है कि साधना उस समय नहीं की जाए जबकि अजीर्ण और खट्टे डकार आने जैसे रोग (अम्लपित्त) हो। साधक मल-मूत्र से मलिन नहीं होना चाहिए। उसको उलटी-दस्त न हो। अधिक आहार और श्रम से थकावट हो। काम करने की बहुत अधिक चिन्ता न हो और न ही इन्द्रियाँ व्याकुल हो।

न निद्रागुरुकार्ये वा न चाति क्षुत्पिपासितः।
न दंशमशकाकीर्णे न च प्राणि समन्विते॥ 55॥

अधिक नींद नहीं आती हो, गुरु ने किसी काम का आदेश नहीं किया हो और भूख-प्यास से पीड़ित नहीं हो। न डाँस या मच्छरों के काटने जैसी परेशानी हो और न ही किन्हीं प्राणियों के साथ हों।

श्मशानेचैत्यवल्मीके सर्पश्वापदसङ्कुले।
नदीसमुद्रतीरे वा च जलाश्रय सन्निधौ[2]॥ 56॥

साधना के लिए स्थान श्मशान न हो, चैत्य स्थल और साँप की बाँबी जैसा स्थान, नाग और हिंसक जीवों के समूह वहाँ नहीं होने चाहिए। वह स्थान नदी या समुद्र के तीर न हो और जलाशय के एकदम समीप भी नहीं होना चाहिए।

जीर्णोद्यानगृहावासे भयस्थाने न चिन्तयेत्।

---

2. तुल. — शिव. वायवीय, उत्तर, 38, 51-53; 38, 49-50

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सुस्निग्धाल्पान्नभोजी च पानिलाहारवर्जितः ॥ 57 ॥

खण्डहर उद्यान और पुराना गृहावास तथा भय जैसा स्थान भी विचारणीय नहीं होता है। साधना के काल में अधिक चिकना और अल्प भोजन हो किन्तु पान जैसा आहार नहीं होना चाहिए।

युक्ताहारविहारात्मा युक्तचेष्टः स्वकर्मसु।
युक्तनिद्राप्रबोधश्च युक्तायुक्तविवर्जितः ॥ 58 ॥[3]

साधक व्यक्ति उचित रूप से अपना आहार-विहार करने वाला, अपने कर्म में चेष्टापूर्वक लगा हुआ, उचित समय पर नींद लेने और जागने का ज्ञान रखने वाला और अन्य युक्तायुक्त को वर्जित करने वाला हो।

साधनायोग्यस्थलवर्णनम् —

श्रद्धानः क्षमासत्यं यावदर्थं परिच्छदः।
स्थितः शिवाश्रमे गुह्यनिः शब्दे जनवर्जिते ॥ 59 ॥

श्रद्धा का आधान कर क्षमा और सत्य जैसे अर्थों को धारण करके ऐसे गुह्य शिवाश्रम में स्थित होना चाहिए जो कि कोलाहल से दूर हो।

पुष्पाम्रादि तरुच्छन्ने पूर्वोक्ता वसुधान्विते।
सुप्रलिप्ते वने स्निग्धे गन्धपुष्पादि वासिते ॥ 60 ॥

पूर्वोक्त स्थान आम जैसे फलों और फूल उगाने वाली धरती वाला हो और वनभूमि जैसा सघन तथा उस लीपी-पुती स्निग्ध धरती पर सुगन्धित पुष्पों की सुवास फैली हो।

नानापुष्पसमाकीर्णे वितानध्वजशोभिते।
आसन्नतूलसम्पूर्णं सितवस्त्रावगुण्ठितम् ॥ 61 ॥

इसके लिए वह स्थान नाना प्रकार के पुष्पों से भरा हुआ और वहाँ पर ध्वज-वितानों की शोभा हो। ऐसे स्थान पर रुई से भरे हुए और सफेद चादर से ढका हुआ आसन हो।

व्याघ्रकृष्णाजिनं वाथ विन्यसे मृदुचर्मण।

---

3. स्कान्देऽपि — युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टोहि कर्मसु। युक्तनिद्रावबोधश्च योगीतत्त्वं प्रपश्यति॥ काशी. 41, 30तथा च श्रीमद्भवद्गीतायां— युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ गीता 6, 17

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

(मृदुचर्मपरिधानं मध्याद्युक्तं शुभं सुखम्।
कल्पयित्वा समारुह्य समं स्थिरमुखं यथा॥)

अथवा उस आसन पर व्याघ्र के चर्म या काले हरिण या अन्य किसी मृदु चर्म को बिछाया गया हो। साधक को मुलायम चर्म का ही सुन्दर परिधान धारण करना चाहिए और उसके बीच सुखपूर्वक समस्थिति में बैठकर मुख को स्थिर रखना चाहिए।

पद्मार्कस्वस्तिकादीनामभ्यसेदासने दृढे॥ 62॥
तथाचार्यं नमस्कृत्वा शिवं देवीं गणाधिपम्[4]।

ऐसे आसन पर योग इच्छुक व्यक्ति को पद्मासन, सूर्यासन, स्वस्तिकासन जैसे आसनों को दृढ़तापूर्वक लगाना चाहिए। इस अवसर पर योग की शिक्षा देने वाले आचार्य, भगवान् शिव, उमादेवी और गणपति को नमस्कार करना चाहिए।

ऋजुग्रीवशिरोवक्षो नातिष्ठेच्छिलष्टलोचनः॥ 63॥
किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत्[5]।

वहाँ पर गरदन और सिर तथा छाती को सीधा करें और आँखों को अधिक बन्द नहीं करें। साथ ही सिर को कुछ झुका हुआ रखें और दाँतों को दाँतों से न किटकिटाएँ।

दन्ताग्रसन्निधौ जिह्वामचलां सन्निवेश्य च॥ 64॥
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः[6]।

दाँतों के आगे जीभ को लगाकर उसको अचल रूप से निवेशित करें। एड़ियों से अपने अण्डकोशों और लिंग की सुरक्षा निश्चित करें।

ऊर्वोरुपरि संस्थाप्य बाहूतिर्यगयत्नततः॥ 65॥
दक्षिणं करपृष्ठं तु न्यसेद्वामतलोपरि।
उन्नाम्य शनकैः पृष्ठमुरोविठभ्यः चाग्रतः[7]॥ 66॥

इसी प्रकार जाँघों के ऊपर सावधानीपूर्वक तिरछी भुजा को रखकर दाहिने हाथ के पिछले भाग को बाँयें हाथ के ऊपर रखना चाहिए। धीरे-धीरे पीठ को उठाएँ और छाती को आगे की ओर तानने का प्रयास करें।

---

4. 'अभिवन्द्य स्वगुर्वन्तानभिवाद्याननुक्रमात्॥' इतिपाठः। शिव वायवीय. उत्तर., 38, 55
5. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर., 38, 56
6. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर., 38, 57
7. तुल.— शिव. वायवीय, उत्तर, 38, 58-59

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्र स्वं दिशश्चानवलोकयन्।
सम्भृतप्राणसञ्चारः पाषाण इव निश्चलः[8] ॥ 67 ॥

इसी क्रम में नासिका के आगे के भाग को देखें। अन्य किसी भी दिशा की ओर दृष्टि नहीं करनी करनी चाहिए। प्राण वायु के संचार को पूरी तरह रोकें और अन्दर ही भरने का प्रयास करें। इस तरह पत्थर की तरह निश्चल हो जाने का उपक्रम करना चाहिए।

मैत्रादिवासनायुक्तः परं वैराग्यमाश्रितः।
अमार्गेणापि यो योगं श्रद्धधानः समभ्यसेत् ॥ 68 ॥

साधक को इस काल में मैत्रादि वासना से युक्त होकर परम वैराग्य का आश्रय ग्रहण करना चाहिए और अन्य किसी भी मार्ग को ग्रहण नहीं कर श्रद्धापूर्वक योग का अभ्यास करते रहना चाहिए।

सोऽपि कालेन बहुना ध्रुवं योगमवाप्नुयात्।
गच्छन्तिष्ठन् स्वपन् चाग्नो निमिषन्तून्मुषन्नपि ॥ 69 ॥
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि शिवं सर्वत्र चिन्तयेत्।

ऐसे में बहुत काल तक साधना करने से निश्चय ही योग की प्राप्ति होती है। ऐसा साधक चलता हुआ, ठहरा हुआ, सोता हुआ, यज्ञ करता हुआ, पलक झपकते, पलक उठाते हुए भी और पवित्र या अपवित्रता में भी सर्वत्र शिव का चिन्तन करते हैं।

स्वदेहायतनस्यान्तः मनसा स्थाप्य शङ्करम् ॥ 70 ॥
हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानमार्गेण पूजयेत्[9]।

अपनी देह के अन्तःकरण में मनोयोग पूर्वक भगवान् शंकर की स्थापना करें और उनको अपने हृदयकमल की पीठिका के बीच में कल्पित कर ध्यान के मार्ग से पूजना चाहिए।

ध्यानयज्ञफलम् —

ध्यानं यज्ञः परः शुद्धः सर्वदोषविवर्जितः ॥ 71 ॥
इष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति बाह्यैः स्थूलैश्च साध्वकैः।
हिंदादिदोष मुक्त्वाद्विशुद्धं चित्तं साधनम् ॥ 72 ॥

---

8. तुल. — शिव. वायवीय., उत्तर., 38, 60
9. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर., 38, 60-61

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ऐसा ध्यान यज्ञ परम शुद्ध और सर्वदोष विवर्जित कहा जाता है। इससे साधक इष्ट मुक्ति को प्राप्त करते हैं। इसमें बाहर के स्थूल, साधु भावों सहित हिंसादि दोषों से रहित होकर विशुद्ध चित्त का साधन करना चाहिए।

ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्ग फलप्रदः।
तस्मादशुद्धं स्वर्गीयमनित्यं बाह्यसाधनम्॥ 73॥

यह ध्यानयज्ञ ऊपर उठाकर अपवर्ग जैसा फल प्रदान करने वाला है। इसलिए यह जानना चाहिए कि सभी बाहरी साधन अशुद्ध होते हैं, वे स्वर्गीय होकर भी अनित्य होते हैं।

यज्ञाद्यं कर्म सन्त्यज्य योगं मुक्त्यर्थमभ्यसेत्।
विकारयुक्तमव्यक्तं भोग्य भोग समन्वितम्॥ 74॥

अतएव यज्ञादि कर्मों को छोड़कर केवल योग का ही मुक्ति के लिए अभ्यास करना चाहिए क्योंकि यज्ञादि कर्म सभी विकारों वाले हो सकते हैं, अव्यक्त हैं और भोग्य भोग से समन्वित होते हैं।

गुणत्रयचिन्तननिर्देशाह —

चिन्तयेद्धृदये पूर्वं क्रमाद्वापि गुणत्रयम्।
तमः प्रच्छाद्य रजसा रजः सत्वेन छादयेत्॥ 75॥

ऐसे ध्यानयज्ञ के साधक को अपने हृदय में पूर्व में क्रमानुसार तम, रज और सत्व— इन तीनों गुणों का चिन्तन कर लेना चाहिए। इन गुणों में तमोगुण रजोगुण को ढक लेता और रजोगुण सतोगुण को ढक लेने वाला है (और विपरीत क्रम से, बढ़ने पर ये अन्योन्य को ढक लेते हैं)।

त्रयमण्डलपूर्वकं ध्यानम् —

ध्यायेत्त्रिमण्डलं पूर्वं कृष्ण रक्तं सितं क्रमात्।
सत्वोपरि गुणातीतं पुरुषं पञ्चविंशकम्$_{25}$॥ 76॥
ध्येय मे तद शुद्धं च त्यक्त्वाशुद्धं विचिन्येत्।
ऐश्वरं पङ्कजं दिव्यं पुरुषोपरि संस्थितम्॥ 77॥

इसके लिए ध्यानयज्ञ साधक तीन मण्डलों का ध्यान करें। इनमें से क्रमशः पहला कृष्ण, दूसरा रक्त और तीसरा श्वेत मण्डल है। इसमें सत्व के ऊपर गुणों से अतीत पच्चीसवाँ पुरुष है जिसका शुद्ध ध्यान करते हुए अशुद्ध को छोड़ने का चिन्तन

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

करना चाहिए। ईश्वर के दिव्य स्वरूप का कमलासन पर विराजित रूप में ध्यान करना चाहिए।

द्वादशाङ्गुल$_{12}$ विस्तीर्णं शुद्धं विकसितं सितम्।
नालमष्टाङ्गुलं$_{18}$ तस्य नाभिकन्द समुद्भवम्॥ 78॥

उक्त विकसित शुद्ध श्वेत कमल बारह अंगुल के विस्तार का होता है। इसकी नाल आठ अंगुल प्रमाण की है जो नाभिकन्द से उद्भूत होती है।

पद्मपत्राष्टकं$_{8}$ ज्ञेयमणिमादि गुणाष्टकम्।
तत्कर्णिका च वैराग्यं नालं ज्ञानं शिवात्मकम्॥ 79॥

उस पद्म में आठ पंखुड़ियाँ हैं जिनको अणिमादि आठ गुण स्वरूप समझना चाहिए। उस पद्म की कर्णिका को वैराग्य समझें और नाल को शिवात्मक ज्ञान समझना चाहिए।

शिवधर्मं च तत्कन्दमिति पद्मं विचिन्तयेत्।
तद्धर्मज्ञानवैराग्यं शिवधर्ममयं परम्॥ 80॥

शिवधर्म को उसका कन्द समझें— इस प्रकार उक्त कमल का चिन्तन करना चाहिए और उस धर्म, ज्ञान, वैराग्य को परम शिवधर्ममय स्वीकारना चाहिए।

ज्ञात्वा पद्मासने धार्यं सर्वदुःखान्तमाप्नुयात्।
तत्पद्मकर्णिकामध्ये शुद्ध दीपशिखाकृतिम्॥ 81॥

उस पद्मासन को जानकर, ध्यान और धारण करके सभी दुःखों का अन्त करना चाहिए। उस पद्म की कर्णिका के बीच में शुद्ध दीपशिखा की आकृति है।

अङ्गुष्ठमात्रमचलं ध्यायेदोङ्कारमीश्वरम्।
कदम्बगोलकाकारं तारूपमिव स्थितम्[10]॥ 82॥

---

10. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर., 38, 71 व 73; तत्र ज्ञेयं पृथकध्यानविधिः— तत्र सावरणं वापि निरावरणमेव वा। द्विदले षोडशारे वा द्वादशारे यथाविधिः॥ दशारे वा षडस्रे वा चतुरस्रे शिवं स्मरेत्॥ भ्रुवोरन्तरतः पद्मं द्विदलं तडिदुज्ज्वलम्॥ भ्रूमध्यस्थारविन्दस्य क्रमाद्वै दक्षिणोत्तरे। विद्युत्समानवर्णे च पर्णे वर्णावसानके॥ षोडशारस्य पत्राणि स्वराः षोडश तानि वै। पूर्वादीनि क्रमादेतत्पद्मं कन्दस्य मूलतः॥ ककारादि टकारान्ता वर्णाः पर्णान्यनुक्रमात्। भानुवर्णस्य पद्मस्य ध्येयं तद्धृदयान्तरे॥ वर्णाः पर्णानि पक्षस्य नाभेरुपरि पृष्ठतः। गोक्षीरधवलस्योक्ता डादिफान्ता यथाक्रमम्। अधो दलस्याम्बुजस्य एतस्य च दलानि षट्॥ विधूमाङ्गारवर्णस्य वर्णा वाद्याश्च लान्तिमाः। मूलाधारारविन्दस्य हेमाभस्य यथाक्रमम्। वकारादि सकारान्ता वर्णाः पर्णमयाः स्थिताः॥ एतेष्वथारविन्देषु यत्रैवाभिरतं मनः। तत्रैव देवं देवीं च चिन्तयेद्धीरया धिया॥ शिव. वायवीय. उत्तर. 38, 63-70

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वहाँ अंगूठे के प्रमाण के अचल ज्योति रूप में ओंकार-ईश्वर है। वह कदम्ब के गोलकाकार फल वाले, तारारूप की तरह अवस्थित है।

ध्यायेद्वा रश्मिजालेन दीपमानं समन्ततः।
ध्यात्वा वा सततं शान्तं वक्ष्यमाणैकरूपिणम्॥ 83॥

अथवा उसका किरणों के जाल के रूप में ध्यान करना चाहिए जो चारों ही ओर प्रदीपमान है अथवा उस ईश्वर को सतत शान्त भाव में रहते हुए वर्तमान में केवल एक ही रूप में दिखाई पड़ने वाला समझकर ध्यान करें।

प्रधान पुरुषातीतं सित पद्मस्थमीश्वरम्।
जपेद्ध्यायेच्च सततमोङ्कारं शिवरूपिणम्॥ 84॥

यह अतीत प्रधान पुरुष, श्वेत पद्मासन पर स्थित ईश्वर हैं। अतः उस अहर्निश ओंकार रूप में स्थित शिव को ही जपें, उसका ही ध्यान करें।

वाच्य वाचक भावेन मात्रा यत्र विभागतः।
मात्रास्तिस्त्रः समाख्याताः तथा देवीमहेश्वराः॥ 85॥

वाच्य और वाचक भाव से मात्रा जहाँ विभागानुसार है, उसमें तीस मात्रा की देवी महेश्वरा विख्यात कही गई है।

क्रमान् मात्राः समुद्दिष्टाः तत्पराश्चार्धमात्रया।
भावनामात्रगम्यत्वाद चिन्त्यः परमेश्वरः॥ 86॥
सकलं चिन्तयेत्तस्मात्सिध्यर्थं सतनुः शिवम्।
अथवा व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं चेन्नुक्रमात्॥ 87॥

क्रम से मात्रा उदिष्ट होकर केवल आधी मात्रा में भी तत्पर हो जाएँ अर्थात् उसमें लग जाएँ। इस तरह केवल भावना मात्रा में जाने से ही यह अचिन्त्य परमेश्वर सफल रूप में चिन्तन में आ जाता है। इसलिए सिद्धि प्राप्त करने के लिए सकल, शिव के तन के साथ अर्थात् साकार रूप में अथवा व्यक्त-अव्यक्त को एकता के क्रम में देखना चाहिए।

श्रीकण्ठनाथं वरदं चतुर्वेदपरं हरम्।
ध्यायमानस्य सततमैश्वर्यं सम्प्रवर्तते॥ 88॥
क्षित्यादितत्त्वानां जयमिच्छन्त्यमनमुक्रमात्।
अजित्वैव धरां भूमिमूर्ध्वं गच्छेत् कथं मुने॥ 89॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

भगवान् श्रीकण्ठनाथ वरदाता, चारों वेद से युक्त परम हर हैं। उनका सतत ध्यान करने से ऐश्वर्य होता है। लोग भूमि आदि पाँच तत्त्वों की ही क्रमशः विजय करते जाते हैं और यह मानते हैं कि इस धरा को जीते बिना भूमि से ऊपर स्वर्ग तक कैसे उत्थान होगा?

सिद्धे सर्वेश्वरे देवे युगपत् सम्प्रवर्तते।
ऐश्वर्यं सर्वतत्त्वेषु तज्ज्ञेयं च न संशयः॥ 90॥

ऐसे में यह जानना चाहिए कि सर्वेश्वर देव के सिद्ध होते ही सब युगपत् अर्थात् सब कुछ साथ-साथ हो जाता है। सभी तत्त्वों का ऐश्वर्य ज्ञान में आ जाता है, इसमें संशय नहीं है।

मनस्थित्यर्थमिच्छन्ति स्थूलध्यानमनुक्रमात्।
तत्र तं निश्चलीभूतल्लभेत् सूक्ष्मेति संस्थितम्॥ 91॥

मन को स्थित करने के लिए स्थूल ध्यान के क्रम से इच्छा रखनी चाहिए। इससे वे निश्चल होकर जो सूक्ष्म स्थिति हैं, उसे भी प्राप्त कर लेते हैं।

स्थित्यर्थं मनसा शर्वं स्थूलं पूर्वं विचिन्तयेत्।
नानारूपकृतैर्भेदैः न तत्तत्वमचेतनम्॥ 92॥

मन की स्थिति बनाए रखने के लिए पहले शिव को स्थूल रूप में साकार रूप में चिन्तन करें। इनके नाना प्रकार के रूप-कृतियों, मूर्तियों के भेद हैं, उनमें वे वहाँ अचेतन नहीं है अर्थात् चेतन ही है।

यच्छिवाधिष्ठितं रूपं तद्ध्यानं पापशुद्धिदम्।
मनस्थितिकरं चाशु न तत्तत्वमचेतनम्॥ 93॥

जो भी शिव के अधिष्ठित रूप है, वे सब ही पाप की शुद्धि करने वाले हैं और मनःस्थिति को दृढ़ करने वाले हैं जिससे विदित होता है कि वे वहां अचेतन नहीं हैं।

तस्माद्ध्येयानि सर्वाणि त्यक्त्वा ध्यायेन्महेश्वरम्।
तत्सिद्धा सर्वतः सिद्धिर्न सर्वैः सिध्यते शिवः॥ 94॥

इसलिए सभी ध्येयों को छोड़कर केवल महेश्वर को ही ध्यायें क्योंकि उनके सिद्ध होते ही सब ओर की सिद्धि हो जाती है। सभी शिव ही सिद्ध करते हैं।

यदा शिवात्मकं रूपं ध्यायन् प्राणैर्वियुज्यते।
तदा स शिवतां याति नान्यद्ध्यायेन् महेश्वरात्॥ 95॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यदि भगवान् के शिवात्मक रूप का ध्यान करते-करते प्राण छूट जाए तो वह ध्यानकर्ता शिवता को प्राप्त होता है। महेश्वर के अतिरिक्त ऐसा अन्य किसी का ध्यान करने से नहीं होता है।

यद्यत्तत्वं दैवतं वा ध्यायेदभ्यास कारणात्।
तत्तदीश्वररूपेण तत्तद्ध्यायेदधिष्ठितम्॥ 96॥

जिस-जिस तत्त्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और जीवात्मा) को दैवत मानकर अभ्यास के लिए ध्यान करें तो उस-उस तत्त्व को ईश्वर के रूप में ही अधिष्ठित मानकर ध्यान करना चाहिए।

शिवस्य दशमूर्तिध्यानम् —

मेरुसंस्थं क्षितौ शर्वं जलादद्भवमुमापतिम्।
अग्नेरधिष्ठितं रुद्रमुग्रं पवनमूर्तिकम्॥ 97॥
आकाशाधिपतिं भीममीशानं सूर्यसत्पतिम्।
चन्द्राधिपं महादेवं पुंसां पशुपतिं शुभम्॥ 98॥
अहङ्कारे स्मरेदीशं बुद्धौ सर्वज्ञमीश्वरम्।
प्रज्ञे प्रकृत्यासनं शान्तं ध्यायेत परमेश्वरम्॥ 99॥

(यह ध्यान करें कि) पृथ्वी पर मेरुपर्वतस्थ शर्व और जल में उमापति भव हैं। वे अग्नि में अधिष्ठित रुद्र और वायुमूर्ति के रूप में उग्र हैं। आकाशाधिपति के रूप में भीम और सूर्य सत्पति के रूप में ईशान हैं। चन्द्राधिपति के रूप में महादेव और (यजमान, जीवात्मा) पुरुषों में शुभ पशुपति हैं।[11] इसी प्रकार अहंकार में ईश के रूप में स्मरणीय है और बुद्धि में सर्वज्ञ ईश्वर हैं— इस प्रकार बुद्धिमान को प्रकृति के आसन में शान्त परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए।

भूतसिद्धौ भवेत् सिद्धिं मुनेस्तन्मात्र पञ्चके।
बुद्ध्यहङ्कार सिद्धस्य शिवत्वं प्रकृतं भवेत्॥ 100॥

यह ज्ञातव्य है कि महाभूतों के सिद्ध होने पर मुनि को पंचतन्मात्रा की सिद्धि होती है। अहंकार को समझ जाने पर सिद्ध की शिवत्व की प्रकृति जाग जाती है।

---

11. अष्टमूर्तिशिवस्य मन्त्रम् — ॐ शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः। ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः। ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः। ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः। ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः। ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः। ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः। ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

यत्रस्थं येन रूपेण शिव रूपमनुस्मरेत्।
लक्षयेन्मनसा धैर्यं तत्तद्ध्यायेत् पुनः पुनः ॥ 101 ॥

जहाँ भी जिस रूप में भी रहें, केवल अपने को शिवरूप में स्मरण करना चाहिए। मन में धैर्य से उसे लक्ष्य बनाएँ और उस लक्ष्य का बारम्बार ध्यान करें।

शिवध्यानम्—

शुद्धस्फटिकसङ्काशं जटामुकुटमण्डितम्।
प्रसन्नवदनं शान्तं भस्मनाचोप शोभितम्॥ 102 ॥

भगवान् शिव के स्वरूप का ध्यान करते समय उनको शुद्ध स्फटिक के समान गौरवर्ण और जटामुकुट से मण्डित कल्पित करना चाहिए। वे प्रसन्नमुख और शान्त हैं और भस्म मले हुए शोभायमान हैं।

सितपङ्कजमध्यस्थं समाधिस्थं त्रिलोचनम्।
पद्मासनस्थमचलमीषत् संवृतलोचनम्॥ 103 ॥

ध्यान करें कि त्रिलोचन भगवान् शिव सफेद कमलों के बीच समाधि में स्थित हैं। वे पद्मासन लगाए अचल हैं और ध्यान में उनके नेत्र आधे खुले हुए हैं।

सबीजपूरककरं वरदाभयापाणिकम्।
द्विपिचर्माम्बरधरमक्षमालाधरं हरम्॥ 104 ॥

वे हाथों में क्रमशः बीजपूरक, वरद और अभय की मुद्राएँ धारण किए हैं। वे हाथी के चर्म का वस्त्र धारण किए हैं। एक हाथ में रुद्राक्षमाला धारण किए हैं। (इस प्रकार चार हस्तायुध हैं)।

प्रभाकिरणवर्षन्तमाभासित दिगासनम्।
संसारार्णव पर्यन्त पुरुषातीतकारणम्॥ 105 ॥
इत्थं रूपं शिवं ध्यायेत् प्रति तत्वमनुक्रमात्।

प्रभा किरणों की वृष्टि करता हुआ उनका मुखमण्डल समस्त दिशाओं को आभासित कर रहा है। वे संसार सागर पर्यन्त अतीत पुरुष के रूप में कारण हैं— इसी रूप में शिव का प्रत्येक तत्त्व में क्रम में ध्यान करना चाहिए।

अष्टाङ्गुल प्रविस्तीर्णं यथास्यान्मनसि स्थितिः ॥ 106 ॥
रूपवर्णप्रमाणाभ्यां परिकल्प्यात्म बुद्धिना।
तथा स्मरेत्तु देवेशं यथा चित्तं स्थिरं भवेत्॥ 107 ॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

मन की जैसी स्थिति हो, उसमें आठ अंगुल विस्तार वाले देवेश शिव के रूप, वर्ण और प्रमाण की आत्मबुद्धि से परिकल्पना करनी चाहिए। उसी में भगवान शिव का जैसा भी स्थिर चित्त हो, उससे स्मरण करें।

शिवेनाधिष्ठितं यस्माज्जगतत्सर्वं चराचरम्।
सर्वरूपशिवस्तस्मादिति ज्ञात्वा स मुह्यति॥ 108॥

यह समस्त जलगत शिव में ही अधिष्ठित है, जो कुछ रूप है, वह सब शिव ही है। यह जानकर ही वह व्यक्ति शिव के प्रति मोहित होता है।

प्राणायामैः सुसम्पूर्णैः कुर्याद्वा निश्चलं मनः।
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः सेवेत विजनं पुनः॥ 109॥

प्राणायाम का सम्यक् प्रकार से साधन करें अथवा मन को निश्चल करें और फिर सब प्रकार के संगदोष से वर्जित होकर एकान्त वन का विचार करना चाहिए।

उत्साहा निश्चया धैर्यात् सन्तोषात्तत्वदर्शनात्।
मुने जनपद त्यागात् सुगन्धियोगं प्रसिध्यति॥ 110॥

इस कार्य में उत्साह रखने से, निश्चय, धैर्य, सन्तोष और तत्त्वदर्शन से मुनि के किसी भी जनपद को त्यागकर योग की सुगन्धि प्रसिद्धि को प्राप्त करती है।

षड्विधयोगवर्णनम् —

प्राणायामं प्रत्याहारः प्रतिस्थानं च धारणम्।
ध्यानं जपः समाधिश्च षड्विधो योग उच्यते॥ 111॥

1. प्राणायाम, 2. प्रत्याहार, 3. प्रत्येक स्थान पर धारणा, 4. ध्यान, 5. जप और 6. समाधि— यह छह प्रकार का योग कहा गया है।

प्राणो वायुः शरीरस्थस्तदायामो निरोधनम्।
तद्रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकश्च त्रिधोच्यते॥ 112॥

प्राणयाम के लिए शरीरस्थ प्राण वायु के आयाम और निरोध करने के लिए रेचक, पूरक और कुम्भक कहे गए हैं।

नासिकापुटमङ्गुल्या प्रपीड्येकमपरेण तु।
जठरं रेचयेद्वायुं रेचनाद्रेचकः स्मृतम्॥ 113॥

नासिका के पुटों को एक ओर से दबाकर दूसरी ओर से यदि पेट की हवा का रेचन करें अर्थात् निकालें तो इसको रेचना के कारण 'रेचक' कहा जाता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

बाह्येन वायुना देहं दृतिवत्पूरयेद्दशम्।
तथा पूर्णश्च सातिष्ठत् पूरणात्पूरकः स्मृतम्॥ 114॥

बाहर से वायु को देह में मशक की तरह पूरी तरह भरने के बाद उसी अवस्था में पूरित रखें तो इसको 'पूरक' के नाम से जाना जाता है।

न मुञ्चति न गृह्णाति वायुमन्तर्बहिः स्थितम्।
सम्पूर्णं कुम्भवत्तिष्ठेदचलः स तु कुम्भकः[12]॥ 115॥

फिर, वायु को न तो छोड़ा जाए और न ही ग्रहण किया जाए, बाहर के वायु बाहर और अन्दर के वायु को अन्दर ही स्थित रखा जाए और सम्पूर्ण भरे हुए कुम्भ की तरह अचल रहा जाए तो यह चरण 'कुम्भक' कहा जाता है।

कनिष्ठस्य सकृदुद्धूतः स च द्वादश$_{12}$ मात्रकम्।
मध्यमश्च द्विरुद्धूतः चतुर्विंशति$_{24}$ मात्रकः॥ 116॥

कनिष्ठ संज्ञक प्राणायाम में श्वांस को बारह मात्रा प्रमाण तक रोका जाता है। मध्यम प्राणायाम में इसका दोगुना, चौबीस मात्रा तक वायु को रोका जाता है।

उत्तमश्च त्रिरुद्धूतः षट्त्रिंशत्$_{36}$ कालमात्रकः।
स्वेदकम्पादिघातस्तु जननश्चोत्तमोत्तमः[13]॥ 117॥

उत्तम प्राणायाम के अन्तर्गत श्वांस की काल मात्रा छत्तीस तक निरोध की है। जिस प्राणायाम में घातपूर्वक पसीना होने लगे उसको उत्तम प्राणायाम समझा जाता है।

अजित्वा नारुहेद्भूमिं वायोरुत्तमकाङ्क्षया।
अजित्वारोहणाद्भूमे अंशुजायास्स्युपद्रवाः[14]॥ 118॥

उत्तम प्राणायाम की आकांक्षा में वायु को जीते बिना भूमि से आरोहण नहीं करना चाहिए अर्थात् इसका चरणबद्ध अभ्यास करना चाहिए क्योंकि उसे नहीं जीतने पर भूमि से आरोहण किया तो किरणोत्पन्न उपद्रव होने लगते हैं।

---

12. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 21-24
13. तथा च वायुपुराणे— स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा॥ प्राणानां च निरोधस्तु स प्राणयामसंज्ञितः। प्राणयामप्रमाणं तु मात्रा वै द्वादश स्मृताः॥ मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्घातो द्वादश स्मृताः। मध्यमश्च द्विरुद्घाताश्चतुर्विंशति मात्रिकः॥ उत्तमस्तत्त्रिविधं प्रोक्तं प्राणायामस्य लक्षणम्। स्वेदकम्पविषादानां जननो ह्युत्तमः स्मृतः॥ प्रकियापादे 10, 78-82
14. तुल. — सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते। एवं वै नियताहारः प्राणायामपरायणः॥ जित्वा जित्वा सदा भूमिमारोहेत्तु सदा मुनिः। अजिता हि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्बहुन्॥ वायु. प्रक्रिया. 11, 24-25

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

प्राणायामजन्यव्याधीनामाह —

हिक्काश्वासतिश्यायकर्णदन्ताक्षिवेदना ।
मूकताजडताकासः शिरोरोगश्रमज्वरः ॥ 119 ॥
इत्येवमादयो दोषा जायन्ते व्युत्क्रमेण तु।
सर्वरोग चिकित्सां तु संक्षेपाच्छृणु योगिनः[15] ॥ 120 ॥

इन रोगों में हिचकी, दमा, जुकाम-सर्दी, कर्णवेदना, दन्तवेदना, आँख की पीड़ा, मूकता, जड़ता, खाँसी, शिरोरोग, थकान, ज्वर इत्यादि आरम्भिक दोष होते हैं। ये रोग गलत ढँग से प्राणायाम करने से होते हैं। योगी को इन सभी रोगों की चिकित्सा संक्षेप में सुननी चाहिए।

व्याधिशमनार्थोपायमाह —

यस्मिन्यस्मिन् भवेदङ्गे व्याधीनामत्र सम्भवः।
ततस्तं व्याधिनां व्याप्तं धारयेदत्र धारणम् ॥ 121 ॥

योगी को चाहिए कि जिस-जिस अंग में व्याधि सम्भावित हो तो उस अंग की व्याधि में अपनी धारणा शक्ति को धारित-संयोजित करें।

अग्नेर्धींधारणाध्यायेद्रोगे वायव्य वारुणे।
वायव्याग्नेयदोषे च विषदोषे च सर्वतः ॥ 122 ॥
अमृतं चिन्तयेत्प्राज्ञः क्षुत्पिपासानुरतस्तथा।
अन्योन्याभिभवादेवं ज्ञात्वा युञ्जीत धारणाम् ॥ 123 ॥

वायुतत्त्वजन्य रोगों और जलतत्त्वजन्य रोगों के होने पर उन अंगों में अग्नि की धारणा करके ध्यान करें तथा वायु और अग्नि के दोषों और सभी प्रकार के विषदोषों में बुद्धिमान को अमृत का चिन्तन करना चाहिए। भूख और प्यास के होने पर इसी प्रकार अन्योन्य करें अर्थात् अमृत-विष को अग्नि आदि को देख रहा है, ऐसा जानते हुए धारण उस अंग में योजित करें।

ध्यानेनैव प्रणश्यन्ति ये रोगा रोगसम्भवाः।
भेषजैर्जपहोमैश्च नान्यैः पुण्यैश्च कर्मभिः ॥ 124 ॥

---

15. तथा च— प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिक्षयो भवेत्। अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधि समुद्भवः ॥ हिक्काश्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः। भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥ युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तञ्च पूरयेत्। युक्तं युक्तञ्च बध्नीयादित्थं सिध्यति योगवित् ॥ (स्कन्द. काशी. पूर्वा. 41, 98, 100)

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इस तरह से सभी रोग केवल ध्यान करने से ही नष्ट हो जाते हैं। जो रोग इस कारण से हुए हों, वे रोग औषध, जप से, होम से और अन्य किसी पुण्यकर्म से नष्ट नहीं होते हैं।

यदारण्ये गजेन्द्रोयं पुरुषैरप्रयोगतः।
नाशयेद्वार्यमाणोपि तथा वायुरबुद्धिभिः॥ 125॥

जिस प्रकार वनखण्ड में छूटा हुआ हाथी पुरुषों के उपाय से नहीं हथियाने के कारण रोकने के बावजूद वनखण्ड का नाश करता है, वैसे ही बुद्धिहीनों द्वारा प्राण की साधना करने पर विनाश होता है।

नचैवहि यथा नागाः प्रयोद्दम्यते शनैः।
निर्दोषश्च भवेत् कालाद्वभ्यः साम्यश्च जायते॥ 126॥
शनैः शनैस्तथा प्राणः प्रयोगाद्वभ्यवतां गतः।
स्वैच्छया धार्यते देहे न हि दोषं करोति च॥ 127॥

जैसे साँप और हाथी उपाय के फलस्वरूप पकड़ में आ जाते हैं और समय पर निर्दोष और साम्य हो जाते हैं, उसी तरह प्राणवायु भी शनै-शने अभ्यास करते रहने से वश में आ जाता है और वह अपनी इच्छानुसार देह में धारण होता है। तत्पश्चात् कोई रोग-दोष नहीं करता।

यथा प्रमोचितो नागः परसैन्यं विनाशयेत्।
रक्षते च प्रयोक्तारमारूढं स्वबलेन च॥ 128॥
तथा शरीरे सम्बद्धः प्राणः सम्यक् प्रचोदितः[16]।

जिस प्रकार रणांगन में छोड़ा गया हाथी शत्रु सेना का विनाश कर डालता है और अपने प्रयोक्ता और सवार की अपने बल से सुरक्षा करता है, उसी प्रकार शरीर से सम्बद्ध यह प्राण भी सम्यक् रीति से प्रेरित किया जाए तो वह सभी पापों का दहन करके शरीर की रक्षा करता है।

निर्दहत्यखिलं दोषं कर्तुदेहं च रक्षति॥ 129॥
प्राणे तु विजिते सम्यक् तच्चिह्नान्युपलक्षयेत्।
विण्मूत्रश्लेष्मणां तावदल्पभावः प्रजायते॥ 130॥

---

16. तुलनीयोदाहरणः — सिंहो वा कुञ्जरो वाऽपि तथाऽन्यो वा मृगो वने। गृहीतः सेव्यमानस्तु मृदुः समुपजायते॥ तथा प्राणो दुराधर्षः सर्वेषामकृतात्मनाम्। योगतः सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो व्रजेत्॥ स चैव हि यथा सिंहः कुञ्जरो वाऽपि दुर्बलः। कालान्तरवशाद्योगाद्गम्यते परिमर्दनात्॥ वायु. प्रकिया. 10, 83-85

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

बहुभोजनसामर्थ्यं चिरादुच्छ्वसतं पुनः[17]।

प्राणयाम की यह साधना सम्पूर्ण दोषों को भस्मीभूत करके साधक की देह की रक्षा करती है। प्राणवायु को अच्छी तरह से जीत लेने पर उसके शरीरस्थ चिह्नों का अवलोकन करना चाहिए। इस साधना से मल, मूत्र, कफ अति कम ही हो जाता है। बहुभोजन का सामर्थ्य विकसित होता है और श्वांस संचालन देर से होने लगता है।

आरोग्यं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम्॥ 131॥
तेजं बलं वर्णप्रसादश्च सर्वदोषक्षयस्तथा[18]।
एवमादीनि चिह्नानि सत्यस्थस्य भवन्ति हि॥ 132॥

आरोग्य की सिद्धि, शीघ्रगामिता, उत्साह, उच्चारण का सौष्ठव, तेज, बल, वर्ण की सुरूपता होती और सर्वदोषों का क्षय होता है। ये ही वे चिह्न है जो सचमुच योगस्थ में होते ही हैं।

यथा गच्छन्ति ते दोषाः प्राणयामसमुत्थिताः।
स्निग्धां यवागुमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रावधारयेत्॥ 133॥
एतेन क्रमयोगेन वातगुल्म प्रशाम्यति।
गुदावर्तप्रतीकारमिदं कुर्याच्चिकित्सितम्[19]॥ 134॥

प्राणायाम से जो दोष उत्पन्न होते हैं, उनके लिए यह ज्ञातव्य है कि स्निग्धद्रव्य मिश्रित गर्म यवागू का सेवन करके कुछ समय तक उस स्थान पर धारण करें। इससे वातगुल्म का क्षय होता है। गुदावर्त के शमन के लिए दही अथवा यवागू से चिकित्सा करनी चाहिए।

द्वैविधः प्राणायामाह —

अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः।
जपं ध्यानं विना गर्भः सगर्भस्तत्समन्वयात्[20]॥ 135॥

प्राणयाम दो प्रकार का कहा गया है— 1. अगर्भ और 2. सगर्भ प्राणयाम। जप ध्यान के बिना किया गया प्राणयाम अगर्भ संज्ञक और जप ध्यान सहित किया गया सगर्भ प्राणायाम होता है।

---

17. तुल. — शिवपुराणे वायवीय उत्तर. 37, 41-42
18. तुल.— शिव पुराण वायवीय उत्तर. 37, 43; तथा च वायुपुराणेऽपि — सत्त्वं तथाऽऽरोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च। गन्धः शुभो मूत्रपुरुषमल्पं योगप्रवृत्तिः प्रथमा शरीरे॥ प्रक्रिया. 11, 63
19. तुल. — वायु. प्रक्रिया. 11, 40-41
20. तुल. — शिव पुराण वायवीय उत्तर. 37, 33

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अगर्भाद्गर्भवान् श्रेष्ठो जपध्यान समन्वितः।
सगर्भं धारयेत्तस्मादिन्द्रियाणि यजेत् पुनः॥ 136॥

अगर्भ प्राणायाम से सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ है जो जप ध्यान के साथ किया जाता है। इसलिए सगर्भ प्राणायाम को धारण करके इन्द्रियों द्वारा यजन करना चाहिए।

समस्तेन्द्रियवृत्तिश्च प्राणो वायुः प्रकीर्तितः।
तज्जयादिन्द्रियाण्येव निर्जितानि भवन्ति हि॥ 137॥

सभी इन्द्रियों की वृत्ति प्राणवायु ही कही गई है अतः प्राणवायु को जीतकर ही इन्द्रियाँ भी जीती जा सकती है।

वृत्तिः प्रत्तिमयो यस्मादभेदः परिकीर्तितः।
तस्माद्वृत्तिजयादेव वृत्तिमान्विर्जितो भवेत्॥ 138॥

तदुपरान्त, तद्रूप हो जाने से अभेद कहा जाता है। इसलिए वृत्तियों के नियोग से ही वृत्ति वाली इन्द्रियाँ जीती जा सकती है।

ज्ञानवैराग्य योगाभ्यां प्राणायामङ्कुशेन च।
इन्द्रियाणि विनिर्जित्य सर्वमेवजितं भवेत्॥ 139॥

ज्ञातव्य है कि ज्ञान, वैराग्य, योग के अन्तर्गत प्राणयाम के अंकुश से इन्द्रियाँ जीत ली जाने पर सर्वजित हुआ जाता है।

इन्द्रियाण्येव तत्सर्वं यत्स्वर्ग नरकावुभौ।
निगृहीत विसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च॥ 140॥

यह समझ लेना चाहिए कि सब कुछ स्वर्ग और नरक ये इन्द्रियाँ ही हैं। अतः उनको निग्रह में रखने से स्वर्ग और निग्रह में नहीं रखने से नरक की प्राप्ति समझें।

शरीरं रथमित्याहुः इन्द्रियाण्यस्य वाजिनः।
सारथिः पुरुषः प्रोक्तः प्राणायामः कशा स्मृतः॥ 141॥

यह शरीर रथ कहा गया है और इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं। इस रथ का सारथी आत्मा पुरुष कहा गया है। प्राणायाम को उन घोड़ों की कशा या लगाम कहा गया है।

ज्ञानवैराग्यरज्जुभ्यां सुसंयम्य द्रुतं मनः।
शनैर्निश्चलतां याति प्राणायामकशाहताः॥ 142॥

ज्ञान और वैराग्य की रस्सियों से इस चंचल मन को बाँधकर प्राणायाम रूपी लगाम का प्रयोग करके सुसंयमित करने से धीरे-धीरे निश्चलता आती है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

मनोवाजिनमत्युग्रं निगृह्णीयात् पुनः पुनः।
स निर्वेदर्मुनिर्गच्छेत् कुर्यादेवात्मनो हितम्॥ 143॥

इस मन रूपी उग्र घोड़े को बार-बार निग्रह में लाएँ और मुनि निर्वेद होकर चले और इस प्रकार अपना हित साध लेना चाहिए।

प्राणायाममाहात्म्यम् —

जलबिन्दुन्कुशाग्रेण मासे मासे तु यः पिबेत्।
संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समः॥ 144॥

कुशा के अग्रभाग पर लगे जलबिन्दुओं अर्थात् ओस के कणों का जो एक मास तक पान करता है, उसके लिए यह प्राणायाम सौ वर्षों तक आगे जाने जैसा है।

तपांसि यानि कीर्त्यन्ते यज्ञदान व्रतानि च।
सर्वतीर्थाभिषेकश्च प्राणायामश्च तत्समः[21]॥ 145॥

तपपूर्वक जो भी यज्ञ, दान, व्रत आदि किए जाते हैं और सभी तीर्थों में स्नान किया जाता है, उन सभी के बराबर केवल प्राणायाम है।

प्राणस्यैव जयो योगः प्राणस्यैव जयस्तपः।
प्राणस्यैव जयात्सर्वं प्राप्यते नात्र संशयः॥ 146॥

प्राण से ही योग में जीत है। प्राण से ही तप में विजय होती है। प्राण को जीतने से ही सारी जय होती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

अथ प्रत्याहार वर्णनम् —

अथ प्रत्याहारेच्चितं प्रसृतं भोगतृष्णया।
भवदोष विकारेण कूर्माङ्गानीव सर्वतः[22]॥ 147॥

अब 'प्रत्याहार' कहा जाता है। इसके लिए चित्त का प्रत्याहार करना चाहिए। उसे भोग की तृष्णा की ओर जाने से रोकना चाहिए। अपने सभी भवदोषों और विकारों को कछुए के अंगों की तरह सब ओर से सिकोड़ लेना चाहिए।

उद्धरेदात्मनात्मानं मुह्यमानमनाथवत्।

---

21. तुल.— तपांसि यानि पापक्षयता यज्ञदानव्रतादयः। प्राणायामस्य तस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 44-45

22. तुल.— इन्द्रियाणां हि चरतां विषयेषु यदृच्छया। यत्प्रत्याहरणं युक्त्या प्रत्याहारः स उच्यते॥ प्रत्याहरति यः स्वानि कूर्मोङ्गानीव सर्वतः। प्रत्याहृति विधानेन सस्याद्विगत कल्मषः॥ स्कन्द. काशी. 41, 101-102

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

भोगस्त्वरते वेगेन ज्ञानप्लवनमाश्रितः ॥ 148 ॥

एक अनाथ की तरह मोहग्रस्तता से अपने आपका उद्धार कर लेना चाहिए। भोग में रत रहते वेगों का ज्ञान रूपेण तैरने का आश्रय लेकर नाश कर दें।

इन्द्रियाणि प्रसृक्तानि यथास्वं विषयेष्विह।
आहत्य यन्निगृह्णाति स प्रत्याहार उच्यते[23] ॥ 149 ॥

अपने कर्मानुसार विषयों में प्रसारित हुई मन सहित इन्द्रियों को जो बलपूर्वक रोकता है, उसको प्रत्याहार कहा जाता है।

एवं सशान्तचितात्मा प्रत्याहारमुपक्रमेत्।
स सर्वतीर्थ यज्ञानां फलं प्राप्य शिवं व्रजेत् ॥ 150 ॥

इस प्रकार प्रत्याहार के उपक्रम से शान्त चितात्मा होकर सभी तीर्थों, यज्ञों का फल प्राप्त करते हुए शिव (कल्याण) की ओर अग्रसर होना चाहिए।

अथ धारणा वर्णनम् —

यद्वा दावर्तयेल्लक्षं न तस्माच्चालयेत् पुनः।
तावत्कालं प्रवेशे च धारणा मनसः स्थितिः ॥ 151 ॥

योगकर्ता जो भी लक्ष्य निर्धारित कर लें, उससे फिर कभी विचलित नहीं होना चाहिए। ऐसी कालबद्ध क्रिया-साधना में प्रवेश करने की मनस्थिति 'धारणा' है।

कालावधि परिच्छिन्नं देशे संस्थापितं पुनः।
न च प्रच्यवते लक्ष्याद्धारणा साभिधीयते ॥ 152 ॥

काल की अवधि का ध्यान न रखकर जो देश या स्थान में मन को स्थित किए रहता है और उस लक्ष्य से विचलित नहीं होता, उसे ही धारणा कहा जाता है।

धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणम्।
ध्यानद्वादशकं यावत् समाधिरभिधीयते[24] ॥ 153 ॥

---

23. तुल.— शिव. तत्रैव 37, 45-46; स्कन्दपुराणेऽपि— इन्द्रियाणां हि चरतां विषयेषु यदृच्छया। यत्प्रयाहरणं युक्त्या प्रत्याहारः स उच्यते॥ प्रत्याहरति यः स्वानिकूर्मोङ्गानीव सर्वतः। प्रत्याहृति विधानेन सस्याद्विगत कल्मषः॥ स्कन्द. काशी. पूर्वा. 41, 101-102

24. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 60; तथा च स्कान्देऽपि— प्राणायाम द्विपट्केन प्रत्याहार उदाहृतः। प्रत्याहारैर्द्वादशभिर्धारणा परिकीर्तिता॥ भवेदीश्वरसङ्गत्यै ध्यानं द्वादश धारणम्। ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते॥ समाधेः परतोज्योतिरनन्तं स्वप्रकाशकम्। तस्मिन् दृष्टेक्रियाकाण्डं यातायातं निवर्तते। पवने व्योम सम्प्राप्ते ध्वनि रुत्पद्यते महान्। घण्टादीनां प्रवाद्यानां ततः सिद्धिरदूरतः॥ प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिक्षयो भवेत्। अयुक्ताभ्यास योगेन सर्वव्याधिसमुद्भवः॥ काशी. 41, 94-98

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

बारह प्राणायाम की धारण और बारह धारणा का ध्यान होता है। जब तक बारह ध्यान होते हैं, उसको समाधि के नाम से कहा जाता है।

अथ ध्यान वर्णनम् —

आत्मनस्यमनस्करस्यमुक्ता शेषोवधिस्थ च।
शिवचिन्ता समासक्ते ध्यानं नाम तदुच्यते॥ 154॥

अपनी अन्यमनस्कता (उहापोह) से शेष अवधि हेतु मुक्त होकर शिवचिन्तन की ओर आसक्त हो जाना 'ध्यान' कहा जाता है।

ध्यायेच्चलित चित्तस्य सदृश प्रत्ययस्य च।
प्रत्ययान्तर निर्मुक्तः प्रवाहो ध्यानमुच्यते॥ 155॥

ध्यान से चलित चित्त को उसके समान ही प्रत्यय से तथा प्रत्यय के अन्तर निर्मुक्ति के प्रवाह को ही ध्यान कहा जाता है।

ध्येयावस्थित चित्तस्य प्रदेशे यत्र कुत्रचित्।
ध्यानं ते व्रतमुद्दिष्टं (सकलं ध्यानं समाचरेत्)॥ 156॥

अपने ध्येय में स्थित चित्त को प्रदेश में कहीं भी स्थिति करके ध्यान के व्रत के उद्देश्य को साधना चाहिए। इस तरह समस्त ध्यान करना चाहिए।

एवं ध्यान समायुक्तः स्वदेहं यः परित्यजेत्।
कुलबन्धुजनमित्राद्याः समुद्धृत्य शिवं व्रजेत्॥ 157॥

इस प्रकार से ध्यान करते-करते जो अपने देह का त्याग करता है, वह अपने कुल, बन्धुजन, मित्रादि का उद्धार करके शिवलोक को जाता है।

एवं मुहूर्तमर्धं वा ध्यायते श्रद्धया शिवम्।
सोऽपि यां गति माप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः॥ 158॥

इस तरह से केवल एक मुहूर्त या आधे मुहूर्त भी श्रद्धापूर्वक शिव का ध्यान करता है, उसको जो गति मिलती है, वह महायज्ञों के आयोजन से भी नहीं मिलती।

जपयज्ञस्य माहात्म्याह —

यावन्तः कर्मयज्ञास्यु दारिद्राच्च तपांसि च।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ 159॥

जितने भी कर्म और यज्ञ हैं, उनको करते हुए दरिद्र हो जाएँ और तप किए जाएँ, वे सब जपयज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर नहीं हो सकते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

माहात्म्यं जपयज्ञस्य निकृष्टस्यैव कीर्तितम्।
उपांशुस्याच्छतगुणः सहस्रो मनसः स्मृतः॥ 160॥

सामान्य जपयज्ञ के महत्व को निकृष्ट ही कहा गया है किन्तु उपांशु जप का माहात्म्य उससे सौ गुना और मानसिक जप का महत्व हजार गुना जानना चाहिए।

यदुच्चनीच स्वरितैः शब्दै स्पृष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः॥ 161॥

जो उच्च-नीच, स्वरित शब्दों और स्पष्ट पदाक्षरों से युक्त मन्त्र को वाणी से उच्चारित किया जाए, उसको जप कहा जाता है। यह वाचिक जपयज्ञ है।

शनैरुच्चारयेन् मन्त्रमीषदोष्ठं प्रचालयेत्।
किञ्चिच्छब्दं स्वयं विद्यातदुपांशुः सजपः स्मृतः॥ 162॥

जो धीरे-धीरे और थोड़े खुले हुए होठों से उच्चारित हो ओर कुछ शब्द स्वयं सुने जाते हो तो उस जप को उपांशुजप जाना जाता है।

धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्।
शब्दार्थचिन्तयाभ्यन्तः स उक्तो मानसः स्मृतः॥ 163॥

यदि केवल बुद्धि से अक्षरों की श्रेणी वर्ण से वर्ण की और पद से पद की हो और शब्दार्थ का चिन्तन अपने अन्तस्थ में ही किया जाए तो उसे मानस जप कहते हैं।

त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयः स्यादुत्तरोत्तरम्।
जपेद्यस्तु विशेषाच्च विशेषस्तत्फलं स्मृतम्॥ 164॥

ये तीनों ही प्रकार के जपयज्ञ हैं। इनमें उत्तरोत्तर श्रेय को देने वाले हैं। अतः विशेष जप का विशेष फल लाभ कहा गया है।

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति।
प्रसन्नो विपुलान्भोगान्दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम्॥ 165॥

जप से देवता नित्य स्तुतिमान होकर प्रसन्न होते हैं। वे प्रसन्न होकर विपुल भोगों को प्रदान करते हैं। वे शाश्वत मुक्ति भी देते हैं।

यक्षरक्षः पिशाचाश्च ग्रहाः सर्पादि भीषणाः।
जापिनं नोपसर्पन्ति भयाद्भीताः समन्ततः॥ 166॥

यक्षगण, राक्षसगण, पिशाचगण, भीषण ग्रह, सर्पादि कभी जप करने वाले के पास नहीं फटकते हैं। वे सभी तरह से भयभीत बने रहते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जपात् पापं क्षयं यावदशेषं तत्कृतं भवेत्।
जपेन रोगा नश्यन्ति मृत्युरप्यपसर्पति॥ 167॥
जपेन सिद्धिं लभते मुक्तिं च जप तत्परः।

जप से पापों का क्षय होता है जब तक कि वे अशेष अर्थात सम्पूर्ण नाश को प्राप्त होते हैं, ऐसा जप करने से रोगों का नाश होता है और मृत्यु तक टल जाती है। जप से सिद्धि का लाभ होता है। जप के लिए तत्पर को मुक्ति मिलती है।

जपाच्छ्रान्तः शिवं ध्यायेत् ध्यानच्छान्तः पुनर्जपेत्॥ 168॥
जपध्यानाभियुक्तस्य शिवः क्षिप्रं प्रसीदति[25]।

जप करने से थक जाए तो शिव का ध्यान करना चाहिए। ध्यान से थकान हो तो पुनः जप करना चाहिए। जप और ध्यान के इस सह अभ्यास से शिव शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं।

यदर्थमात्रनिर्भासं स्तिमितोदधिवत्स्थितम्॥ 169॥
स्वरूपशून्यवद्भानं तत्समाधिरिहोच्यते[26]।

जब ध्येय अर्थ मात्र की तरह हृदय में आभासित होकर शान्त उदधि-सागर की तरह स्थिर होकर स्थित हो जाता है और उसका आभास स्वरूप रहित होने लगता है, उस स्थिति को समाधि कहा जाता है।

ध्येये मनः संनिवेश्य सन्निष्ठेदचलास्थिरम्॥ 170॥
निर्वाणानलवद्योगी समाधिस्थः प्रकीर्तितः[27]।

ध्येय में मन को सन्निवेशित करके अचल निष्ठा सहित स्थिर होकर योगी बुझी हुई अग्नि के समान शान्त होने पर समाधिस्थ कहा जाता है।

न शृणोति न चाघ्राति न जल्पति न पश्यति॥ 171॥
न च स्पर्शं विजानाति न सङ्कल्पयते मनः[28]।

तब वह न श्रवण करता है, न सूँघता है, न बोलता है, न देखता है, न उसको स्पर्श का ज्ञान होता है और न ही वह मन से ही कुछ संकल्प करता है।

न वाभिमन्यते किञ्चिद्बध्यते काष्ठवत्॥ 172॥

---

25. 'क्षिप्रं योगः प्रसिध्यति' इति पाठः। शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 59
26. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 62
27. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 63
28. तुल.— शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 64

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

एवमीश्वरः संल्लीनः समाधिस्थः प्रकीर्तितः[29]।

ऐसा योगी न तो कुछ मानता है, न ही काष्ठ के समान काटा ही जा सकता है। इस प्रकार ईश्वर में संलीन हुआ पुरुष समाधिस्थ कहा जाता है।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता॥ 173॥
ध्यायतः शिवमात्मस्थमात्म निष्ठस्य योगिनः[30]।

जैसे पवन रहित स्थान में दीपक की लौ कभी हिलती-डुलती नहीं, वैसी ही स्थिति शिवात्मस्थ निष्ठात्म योगी की जाननी चाहिए।

प्राणायामाद्भवेत्क्षिप्रं सर्वपाप परिक्षयः॥ 174॥
सर्वेन्द्रियवशीकारः प्रत्याहारेण जायते।
मनसः परमं धैर्यं धारणात्तत्प्रवर्तते॥ 175॥

प्राणायाम करने से योगी के समस्त पापों का शीघ्र ही क्षरण हो जाता है। प्रत्याहार से सभी इन्द्रियों का वशीकरण हो जाता है। धारणा से मन में परम धैर्य प्रवर्तित हो जाता है।

ध्यानेन प्रलयं गच्छेत् ज्ञानैश्वर्यगुणाधिकम्।
प्रासादाभिमुखा प्रीताः सन्ति जप्येन देवताः॥ 176॥

ध्यान से योगी लीनता में चला जाता है। ज्ञान से पर्याप्त ऐश्वर्य गुणों की अधिकता को प्राप्त करता है। इससे वह प्रासादाभिमुख होकर, प्रसन्नचित्त होकर जप के द्वारा देवता का प्रीतिपात्र हो जाता है।

समाधिना च सर्वत्र प्रज्ञालोकः प्रवर्तते।[31]
एवमभ्यस्यतः पुंसः षडङ्गं योगसाधनम्॥ 177॥
तस्यान्तराया नश्यन्ति मृगाः सिंह भयादि वा।

समाधि से ही सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश होता है। इस तरह से अभ्यास करते हुए पुरुष योग के छहों अंगों की साधना कर सकता है। उसके सभी अन्तरायों-विघ्नों का विनाश हो जाता है। उसे बाघों व सिंहों का भय भी नहीं रहता है।

---

29. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 65
30. यथा दीपो निवातस्थः स्पन्दते न कदाचन। तथा समाधिनिष्ठोऽपि तस्मात्र विचलेत्सुधीः॥ इति पाठः। शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 66; तथा च श्रीमद्भगवद्गीतायां— यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता। योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥ गीता. 6, 19
31. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर. 37, 61

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

योगमार्गगतविघ्नाह —

आलस्यं व्याधयस्तीव्राः प्रमादः स्थानसंशयः ॥ 178 ॥
अनवस्थितचित्तत्वमश्रद्धा भ्रान्तिदर्शनम्।
दुःखानि दौर्मनस्यं च विशेषेष्वति लोलता ॥ 179 ॥
इत्येवमादयः प्रोक्ताः योगविघ्नाः स्वभावतः।[32]

आलस्य, घोरतम व्याधियाँ, असावधानी (प्रमाद), स्थान को लेकर उहापोह, चित्त की अस्थिरता, अश्रद्धा, भ्रम का दिखाई देना, दुःख, दुर्बुद्धि, विषयभोग के प्रति चञ्चलता— इस प्रकार ये दस योग के विघ्न हैं जो योग साधना के मार्ग में स्वाभाविक रूप से आते हैं।

अत्यन्तोत्साहयुक्तस्य जपध्यानरतस्य च ॥ 180 ॥
तदन्तराया नश्यन्ति विघ्नाः सर्वे शनैः शनैः।

ऐसे विघ्नों को दृष्टिगत रखते हुए बहुत ही उत्साह से युक्त होकर जप और ध्यान के प्रति समर्पित होने से उक्त योग मार्ग के सभी विघ्न या अन्तराय धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।

शान्तेष्वेतेषु विघ्नेषु समाधिस्थस्य योगिनः ॥ 181 ॥
उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दिव्यास्ते सिद्धिसूचकाः[33]।

उक्त समस्त विघ्नों के शान्त होने पर समाधिस्थ रहने वाले योगी के जो लक्षण दिखाई देते हैं, वे दिव्य सिद्धियों के सूचक होते हैं।

सिद्धिसूचकलक्षणाह —

प्रतिभा श्रवणं वार्ता दर्शनास्वादवेदनाः ॥ 182 ॥
षट्सूपसर्गा योगस्य परित्यागश्च सिद्धयः।[34]

प्रतिभा, श्रवण, वार्ता, दर्शन, आस्वाद और वेदना— योग के ये छह उपसर्ग परित्याग (अर्थात् योग की अधिकता) से होने वाली सिद्धियों के सूचक कहे जाते हैं।

प्रार्थयन्ति च तं देवं दिव्यैर्भोगैश्च योगिनः ॥ 183 ॥
नृपाश्च वृद्धिपीठानैर्धनैश्चान्यैर्धनाधिपाः।

---

32. तुल. — शिव. वायवीय. उत्तर. 38, 1-2 अन्तपङ्क्त्यां 'दशैते युञ्जतां पुंसामन्तरायाः प्रकीर्तिताः' इति पाठः।
33. शिव. वायवीय. उत्तर. 38, 9
34. 'उपसर्गाः षडित्येते व्यये योगस्य सिद्धयः।' इतिपाठः। तत्रैव 38, 10

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उपतिष्ठन्ति रत्नानि धनानि च महान्ति च॥ 184॥

सिद्धियों के क्रम में योगसिद्ध की देवगण प्रार्थना करते हैं, वे उसके लिए दिव्य भोगों को जुटाते हैं। राजागण उनके लिए आसन प्रदान करते हैं, धनपति धनादि जुटाते हैं। उनके पास रत्नों और अतिशय धनों के भण्डार खड़े हो जाते हैं।

वेदाश्च सर्वशास्त्राणि स्वयमेव भवन्ति च।
ऋषयः सिद्धसङ्घाश्च वशेतिष्ठन्त्यभिष्टुताः॥ 185॥

वे वेदादि समस्त शास्त्रों के स्वयमेव ज्ञाता हो जाते हैं। ऋषिगण और सिद्धों के समूह उनके अभीष्ट के अनुसार बैठते हैं।

सदा महोदधिकृद्वज्जायन्तेऽपि नृपोङ्गतः।
योगैश्च योदधितस्तद्वद्विप्र सः प्रतिभादयः॥ 186॥

वे राजा के सुन्दर अंगों के महासागर के समान हो जाते हैं सदा जो योग का अध्ययन करते हैं, उनकी प्रतिभा आदि विप्रों के समान हो जाती है।

प्रतिभादिसेष्वशुद्धेषु गुणेष्वासक्त चेतसः।
न सिद्ध्येत्परमैश्वर्यमक्षयं सार्वकामिकम्॥ 187॥
तस्माद्गुणांश्च भोगांश्च देवासुरमहीभृताम्।
तृणवद्यस्त्यजेत्तस्य योगसिद्धिः परा भवेत्[35]॥ 1188॥

इस योग साधना के दौरान जिनका मन प्रतिभा इत्यादि की प्राप्ति जैसे अशुभ-अशुद्ध गुणों में ही लगा रहता है, उनको कभी क्षीण न होने वाले और सार्वकामिक परम ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं होती है। ऐसे में जो साधक इन सभी गुणोपलब्धियों और देवता, असुर और राजोचित भोगों को घास-पूस की तरह त्याग देता है, उसको परम योग की सिद्धि मिल जाती है।

ततः प्रदेशे देवेशे बुद्धिः सर्वे प्रवर्तते।
अणिमादि गुणैश्वर्यं सर्वज्ञत्वं च योगिनः॥ 189॥

इस प्रकार देवेश भगवान् शिव के प्रदेश में रहने से बुद्धि सर्वप्रकारेण बढ़ने लगती है। अणिमादि सिद्धियाँ, गुण और ऐश्वर्य तथा सर्वज्ञता योगियों को प्राप्त होती है।

सर्वज्ञः न तनुं त्यक्त्वा शुद्धः शान्तः सदा सुखी।
निर्द्वन्द्वः परिपूर्णश्च मुक्तः स्वात्मानि तिष्ठति॥ 190॥

---

35. 'तृणावद्यजातातीशस्तस्य च प्रसीदति॥' इति पाठः। शिव. वायवीय. उत्तर. 38, 43-44

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वह सर्वज्ञ होकर अपना तन त्यागे बिना ही शुद्ध, शान्त और सदा सुखी हो जाता है। वह निर्द्वन्द्व होकर परिपूर्ण स्वआत्मा में मुक्त होकर रहता है।

अनुग्रहाय लोकानां यदि भेदं न सन्त्यजेत्।
अणिमादि गुणैर्युक्तं स तिष्ठेच्छिवत् प्रभुः॥ 191॥

यदि वह लोकों पर अनुग्रह करके भेद को नहीं त्यागे तो वह अणिमादि गुणों से युक्त होकर शिव के समान प्रभु होकर रहता है।

तदा हर्ता च कर्ता च भोक्ता च प्रकृतेर्वशी।
ज्ञानं सदोपदेष्टा च सुज्ञाना प्रतिचेतना॥ 192॥

तब वह हर्ता, कर्ता और भोक्ता प्रकृति को वश में करके ज्ञान और श्रेष्ठ उपदेष्टा होकर अतिशय ज्ञान के प्रति चेतना जगाता है।

एवमिच्छया भोगान् भुक्त्वा ज्ञानं प्रकाश्य च।
प्रलयान्ते तनुं त्यक्त्वा स्वात्मन्येवाव तिष्ठति॥ 193॥

इस तरह से अपनी इच्छानुसार भोगों को भोगकर और ज्ञान का प्रकाश करके प्रलयान्त में अपना तन त्यागकर अपने आत्मस्वरूप में ठहर जाता है।

यस्मात् सौख्यं च मोक्षं च योगादुभमाप्नुयात्।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य जपेद्ध्याये च शङ्करम्॥ 194॥

इससे उसको सुख और मोक्ष दोनों ही योग से प्राप्त हो जाते हैं। अतएव सब कुछ छोड़कर केवल भगवान् शंकर का जप और उनका ध्यान करना चाहिए।

ये संश्रिता ज्ञानमयात्पुनः प्रयान्तिपारं भवसागरस्य।
तिष्ठन्तिमग्नाभवसागरेस्मिन् पुत्रेषु दारेषु गृहेषुऽऽसक्ताः॥ 195॥

इस तरह जो ज्ञान से परिपूर्ण होते हैं वे भवसागर के पार प्रयाण करते हैं और जो इस भवसागर में निमग्न रहते हैं, वे पुत्र, पत्नी, गृहादि में आसक्त रहते हैं।

ज्ञानेन सौख्यं परमं च मोक्षं विन्दन्ति सर्वे पुरुषास्त्रियश्च।
अनेनदेहेनः लभन्ति केचित्सिद्धाश्च योगान्प्रलयेशु मुक्तिम्॥ 196॥

ज्ञान से प्राप्त सुखों में परमसुख मोक्ष है। इसको सभी पुरुष और स्त्रियाँ जानती हैं। ऐसे ही इस देह में कितने ही लाभ मिल जाते हैं किन्तु योग को सिद्ध करके अन्त में मुक्ति में प्रवेश पाया जा सकता है।

इमं परं पापहरं पवित्रं ज्ञानामृतं मृत्युविनाशनं च।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

विज्ञाय यः प्राणिहिताय दद्याज्जगद्गुरुस्तेन समः कुतोऽन्यः॥ 197॥

यह ज्ञान परम है। यह पापहर है, पवित्र है, ज्ञानामृत है और मृत्यु जैसे भय का विनाश करने वाला है। इसको प्राणियों के हित के निमित्त जानकर ही जगद्गुरु शिव ने दिया है, अतः उनके समान अन्य कौन हो सकता है।

स एव सद्यः प्रतिपूजनीयः स एव माता जगतः पिता च।
स एव बन्धुः स गुरुः शिवश्च ज्ञानामृतं यः परमं विदद्यात्॥ 198॥

अतः वे शिव ही तत्काल पूजनीय है। वे ही जगत के मात और पिता हैं। वे ही भगवान् शिव बन्धु और वे ही गुरु हैं। उन्होंने ही यह परम ज्ञानामृत प्रदान किया है।

इति शिवधर्मोत्तरे ज्ञानयोगो नाम दशमोऽध्यायः॥ 10॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तर में ज्ञानयोग नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ 10॥

*****

अथ प्रायश्चित कथनं नामैकादशोऽध्यायः॥ 11॥

स्कन्दोवाच —

अथ पापविशुध्यर्थं प्रायश्चितं समाचरेत्।
कृत्वा शौचं तथा स्नानं शिवाग्निगुरुपूजनम्॥ 1॥

अब पापों की विशुद्धि के लिए प्रायश्चित-आचरण कहा जाता है। शौच तथा स्नान से निवृत्त होकर शिवाग्नि और गुरु का पूजन करना चाहिए।

उत्थापनमूत्रोत्सर्ग च विधिः —

उत्थाय पश्चिमे यामे सुगृहीत कमण्डलुः।
धौतपादुकमाक्रामन् मूत्रं कुर्याद्यथाक्रमः॥ 2॥

पिछले प्रहर (ब्राह्ममुहूर्त) में उठकर अपना कमण्डलु लेकर धोई हुई पादुकाएँ पहनकर क्रमानुसार मूत्र त्यागने के लिए जाना चाहिए।

दक्षो विनीतचित्तज्ञो भस्मोदक विधानवित्।
स्वभावशौच कार्येषु तदभावे कमण्डलुः॥ 3॥

दक्षता और विनीत चित्त से भस्म और जल विधान का ज्ञान रखकर स्वभाव

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

से होने वाले शौच कार्यों को करना चाहिए अर्थात् जलाशयों के जल से स्नान-शौच करें और जहाँ जलाशय नहीं हो, वहाँ अपने कमण्डलु के जल का प्रयोग करना चाहिए।

शौचाचारनियमाः —

वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः।
शिरः प्रावृत्य तत्कुर्यादन्तर्धाय तृणैर्महीम्[1] ॥ 4 ॥

वाणी के नियमों का पालन करते हुए अर्थात् मौन रहकर थूकने तथा श्वासक्रिया से रहित होकर, सिर को वस्त्र से आच्छादित कर शौचकार्य करें और भूमि को तृणों से ढँक देना चाहिए।

दिवासंध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः[2] ॥ 5 ॥

यज्ञोपवीत को कान पर चढ़ाकर दिन और सन्धकाल (सुबह-शाम) को उत्तर की ओर मुख करके और रात्रि का समय हो तो दक्षिण की ओर मुख करके मूत्र और मल का त्याग करना चाहिए।

मार्जनं वामहस्तेपि वारिणाद्यैरयाज्ञिकैः।
न विण्मूत्रमुदीक्षेत तच्छायामात्मनो न च ॥ 6 ॥

याज्ञिकों को अपने बायें हाथ को जल से पहले धोना चाहिए। उन्हें विष्ठा और मूत्र को नहीं देखना चाहिए और अपने ऊपर उनकी छाया नहीं पड़नी चाहिए।

नानिलानलदेवानां गोब्राह्मणजलं प्रति।
जन्तुशाद्वल भस्मास्थिकृषि छायां विनिर्जयेत् ॥ 7 ॥

न हवा में, न अग्नि में; न देवता, न गाय, न ब्राह्मण पर, न जल, न जन्तुओं, न दूब, न भस्म, न अस्थि और न कृषि इत्यादि पर ही उसकी छाया पड़नी चाहिए।

पादावलेपनं मूत्रपुरीषं विष्ठीवनं च यत्।
दूरादावसथात् कुर्याद्यच्चान्यद्विकृतं भवेत् ॥ 8 ॥

पाँवों का लेपन मसाज और मल-मूत्रादि का जो स्थान हो, उससे दूर ही अपना आवास करना चाहिए, अन्यथा अन्य सब स्थान अशुद्ध हो जाएँगे।

---

1. तुल. — अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा। वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥ देवीभागवत पुराण 11, 2, 9
2. याज्ञवल्क्यस्मृति आचार. 1, 16; वाधूलस्मृति 8

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

गृहीतशिश्नचोत्थाय समायुक्त कमण्डलुः।
शौचं कुर्यान्मृदम्भोभिः गन्धलेप विमुक्तये॥ 9॥

शिश्न को पकड़कर तथा उठाकर कमण्डलु को लेकर उसके पृथक् किए जल और मिट्टी (मल के) गन्ध एवं लेप को नष्ट करने वाला शौच प्रमाद रहित होकर करना चाहिए।

तिस्त्रोलिङ्गे मृदो योज्यात्स्वेका कान्तारमृत्तिका।
आमलीफलमात्रं तु शौचार्थमग्राह्य उत्तमम्॥ 10॥

तीन बार लिंग को मिट्टी से धोना चाहिए। उपयोग केलिए मिट्टी एक ही वनक्षेत्र की होनी चाहिए। वह मिट्टी हरे आँवले के फल के बराबर लेकर उत्तम शौच करना चाहिए।

मृदस्तिस्त्रः कराभ्यां तु मूत्रोत्सर्गे भवेच्छुचिः।
पञ्चपादे मृदो योज्याः तिस्त्रश्चान्तरमृत्तिकाः॥ 11॥

मूत्रत्याग करने पर भी तीन बार मिट्टी से हाथ धोने पर शुद्धि होती है। पाँच बार पाँवों को मिट्टी लगाकर धोयें और तीन बार भीतरी मिट्टी का उसके लिए प्रयोग करना चाहिए।

दशवामकरे योज्याः पाणयोः सप्त तयोभयोः।
उपस्पर्शनकाले तु तिसृभि क्षालयेत् करौ॥ 12॥

दस बार बायें हाथ में मिट्टी लगाकर धोयें और दोनों हाथों को सात बार मिट्टी लेकर धोयें। इधर-उधर छू लेने पर भी तीन बार हाथ को धोना चाहिए।

जङ्घाशौचे मृदः तिस्त्रो एकैकान्तरमृत्तिकाः।
अक्षिणीनासिकाकर्णौ तिस्त्रः संशोध्य हस्तयोः॥ 13॥

जँघा के शौच (धुलाई) के समय तीन तीन बार मिट्टी लगाएँ और धोयें और एकान्तर करके मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए। आँख, नाक, कान को तीन-तीन बार हाथों से धोकर शुद्ध करना चाहिए।

संवाह्यौ तिसृभिर्हस्तौ मृद्भिः सम्यक् जलेन तु।
कर्दमामेध्यमूत्राद्यैः दिन्धंगस्तवन्तं पञ्चवार॥ 14॥
क्षालिते वारिणामृद्भिस्तित्रश्चान्तर मृत्तिकाः।
आमणीबन्धाच्च करौ मृत्तोयेन विशोधयेत्॥ 15॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अन्तःकृत्वा बहिः सम्यक् बहिर्जान् निधाय च।

हाथों में यदि कर्दम (कीचड़), मेध, मूत्रादि लगा हो तो तीन बार जल के साथ मिट्टी लेकर धोना चाहिए और कोई गन्ध-द्रव्य लगा है तो उस अंग को पाँच बार जल व मिट्टी से धोना चाहिए। इसके बाद तीन बार पुनः मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए। अपनी कलाई तक पूरे हाथ मिट्टी से ही विशोधित करने चाहिए। ऐसे ही अपने जानुओं को भी भीतर-बाहर से अच्छी तरह धोना चाहिए।

उद्धृताभिरनुष्णाभि पूताभिर्वानं चक्षुषा॥ 16॥
हृद्गमाशिरसेनाभिस्त्रिचतुर्वा समाचरेत्।
परिमृज्येद्विद्वरास्यं च द्वादशाङ्गानि संस्पृशेत्॥ 17॥

यदि गर्मजल न हो तो ठण्डे पानी से अपनी आँखों को पवित्र करना चाहिए। हृदयप्रदेश को, सिर और नाभि को तीन या चार बार धोना चाहिए। मुख को रगड़-रगड़ कर धोयें और इस तरह बारहों अंगों को अच्छी तरह स्पर्श करना या मलना चाहिए।

तूष्णीमेव ततो भूयः शिवमन्त्रेण पूर्ववत्।
आचमेनद्ब्रह्मतीर्थेन ब्रह्मसूत्रीह्युदङ्मुखः॥ 18॥
शिरः प्रावृत्यकर्णो च तथा मुक्तशिखोपि वा।
अकृत्वा पादशौचं च नाचामेद्दक्षिणामुखः॥ 19॥

तत्पश्चात् अच्छी तरह शान्तमन होकर पहले की तरह शिवमन्त्र से आचमन करके ब्रह्मतीर्थ (हाथ की कलाई का भाग[3]) से ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को धारण किए उत्तर दिशा की ओर मुख करें। सिर को घूमाकर कान पकड़े और शिखा को खोल दें। पाँव धोए बिना तथा दक्षिणमुखी होकर ऐसा नहीं करें।

वस्त्रशौचमाह —

तदन्तरान्तरे पाणिमाप्लाव्याप्लाव्य चाम्भसा।
वस्त्रशौचं प्रवक्ष्यामि तच्छुद्धो शुध्यते यतः॥ 20॥
वस्त्रशौच विहीनात्मा शुचिरप्यशुचिर्भवेत्।

इसके अनन्तर अपने हाथों से पानी में भिगोये-नीचोड़े वस्त्र की शुद्धि के विषय में कहता हूँ। यह शुद्धि जल से ही सम्भव होती है। क्योंकि वस्त्रशौच विहीन जो व्यक्ति होता है, वह पवित्र होते हुए भी पवित्र नहीं होता है।

---

3. तथा च— पैत्र्यं मूले प्रदेशिन्याः कनिष्ठायाः प्रजापते। ब्राह्म्यमङ्गुष्ठमूलस्थं तीर्थं दैवं कराग्रतः॥ सव्यपाणितले वह्नेस्तीर्थं सोमस्य वामतः। ऋषीणां तु समग्रेषु अङ्गुलीपर्वसन्धिषु॥ अग्नि. 72, 32-33

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

देवकार्योपयुक्तानां प्रत्यहं शौचमिष्यते॥ 21॥
वाससामितरेषां च कार्यं शौचं मलागमे।

देवकार्यों में यह शुद्धि उपयुक्त रहती है अतः वस्त्रों की शुद्धि नियमित रखनी चाहिए। प्रायः वस्त्रों को मैले हो जाने पर धोया जाता है।

शुचिनां तोरणं कार्यं वंशदण्ड त्रयेण तु॥ 22॥
तत्र वासांसि निर्णिज्य सम्यक्बद्धवाप शोषयेत्।

धुले वस्त्रों को सूखाने के लिए बांस के तीन दण्डों से तोरण की रचना की जानी चाहिए। उसके ऊपर धुले हुए सुन्दर वस्त्रों को अच्छी तरह बाँधकर सूखने के लिए छोड़ देना चाहिए।

इदानीं स्थानशुद्धिमाह —

खगैर्वा दूषिते वृक्षे निर्मले वा शिलातले॥ 23॥
दूर्वाजले शुचौ वापि क्षालितेषु तृणेषु वा।
विण्मूत्रशुक्रादिन् धूलिं मृत्तोयेन विशोधयेत्॥ 24॥

(यदि वृक्ष, पाषाणादि पर सूखाने हो तो) पक्षियों के मल त्यागने से दूषित हुए वृक्षों अथवा शिलातलों को निर्मल करना चाहिए। उनको दूब के जल से शुद्ध करें अथवा झाड़ू से धो-रगड़कर शुद्ध करें। वहाँ जो भी विष्टा, मूत्र, शुक्र आदि और धूल, मिट्टी जमे हों तो उनको शुद्ध करें।

कार्दमादीनां शुद्धिमाह —

कार्दमादौ ततः क्षारैः गोमूत्राद्यैर्विशोधयेत्।
मृद्वारिनौषद्यदेयं गन्धदेवौ हि तद्गतौ॥ 25॥

यदि कीचड़ हो तो उसकी सफाई करें और फिर क्षार, गोमूत्रादि से उस स्थान को विशोधित करें। यथावश्यकता मिट्टी, जल, औषध का प्रयोग करें और पूरी तरह गन्ध को दूर करने का प्रयत्न करें।

तस्य साद्धिकतो यावत् सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु।
कौशेयविक्रयोः रूक्षैः क्षौमाणां गौरसर्षपैः॥ 26॥

जहाँ जल से शुद्धि होती हो, उन सभी द्रव्यों की उससे शुद्धि करनी चाहिए। गन्दे हुए कौशेय जैसे बिक्रीयोग्य वस्त्रों और अतसी के सूत से बने हुए वस्त्रों को पीले सरसों मिले जल से शुद्ध करने चाहिए।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

श्रीफलैरंशुपट्टानां कुम्भः पानीयरिष्टकैः।
चेलावद्रज्जुवेत्राणां वत्याशुद्ध पात्राणाम्॥ 27॥
वल्कलानां च सर्वेषां शुद्धिः कार्या विजानता।
द्विदकालाञ्चपात्राणां वस्त्रवच्छुद्धिरिष्यते॥ 28॥

मलमल के कपड़ों को कलश के जल में नारियल और अरीठा मिलाकर साफ करना चाहिए। ऐसे ही कपास के बने सूती कपड़ों, धागों और रस्सियों, अन्य अशुद्ध पात्रों और वल्कल वस्त्रों की शुद्धि करने के कार्यों को भी जानना चाहिए। हाथीदाँत आदि के पात्रों की शुद्धि वस्त्रशुद्धि की तरह ही जानें।

गोबालैर्घर्षणं चैषां विशेष अश्वादिक वर्त्ततः।
कांस्यार्घस्ताम्ररौप्याणां त्रपुसीसकयोरपि॥ 29॥
शुद्धिः शौचार्थिनाकार्या भस्मक्षाराम्बुवर्षिणा।

कुछ पात्रों को गाय के बालों से रगड़ने पर अथवा अश्व के बालों से रगड़ने से शुद्ध किया जाता है। काँसे के अर्घ्यपात्रों, ताँबा, चाँदी, पीतल और सीसे के बने पात्रों की सफाई व्यक्ति को भस्म से मांजकर, क्षार और वर्षाजल से करनी चाहिए।

निर्लेपं काञ्चनं रौप्यमद्भिः पात्रं विशुध्यते॥ 30॥
मण्यश्मशङ्खशुक्तीनां शौचं तैजसवत् स्मृतम्[4]।

घृत आदि के लेप से रहित और जो जूठे न हो, ऐसे सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र धोने मात्र से शुद्ध हो जाते हैं। सुवर्ण की उक्त शुद्धि की तरह ही मणियों, रत्नों, शंख, सीप आदि की शुद्धि जाननी चाहिए।

रजस्वलासूतिकाद्यैः मूत्राद्यैश्चापि दूषितम्॥ 31॥
अग्नेरपां च संयोगाः तैजसं शुद्धिमाप्नुयात्[5]।
शूद्रोच्छिष्टस्य पात्रस्य त्रिःकृत्वा परिमार्जनम्॥ 32॥

रजस्वला और सूतिका स्त्री आदि के स्पर्श और मूत्रादि गिरने से पात्र दूषित हो जाते हैं। जल और अग्नि के संयोग से सोना आदि तैजस पदार्थ की शुद्धि की जाती है। शूद्र द्वारा जूठा किए पात्र को तीन बार मांजकर स्वच्छ करें।

---

4. तुल.— तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च। भस्मनाऽद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः॥ निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति। अब्जमश्ममयं चैव राजसं चानुपस्कृतम्॥ मनु. 5, 111-112
5. तुल.—अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ। तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः॥ मनु. 5, 113

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शोधनं भूमिकापेन कर्तव्यं तैजसस्य तु।
द्रव्याणामिह सर्वेषां शुद्धिरुत्पवनं स्मृतम्॥ 33॥

सोना जैसे तैजस पदार्थों का शोधन मिट्टी और पानी से करनी चाहिए। अन्य समस्त द्रव्यों की शुद्धि हवा से जाननी चाहिए।

पालाशतृणकाष्ठानां प्रोक्षणाच्छुद्धिमाप्नुयात्।
स्रुवादिदारुपात्राणां मुसलोलूखलस्य च॥ 34॥
शूर्पगौरभाण्डानां शुद्धिरुष्णेन वारिणा।

पलाश के तिनकों और लकड़ी के बने पात्रों की शुद्धि धोने मात्र से हो जाती है। इसी प्रकार स्रुवा जैसे काष्ठ पात्रों, मुसल, ओखली, सूप, मिट्टी के भण्डारों की शुद्धि गर्म पानी से होती है।

शृङ्गास्थिदारुदन्तानां तक्षणैः परिशोधनम्॥ 35॥
अन्त्यजो पगतानां च गोमूत्रेणोदकेन च।
संहतानां च द्रव्याणां प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते॥ 36॥

सींग, हड्डी और लकड़ी, हाथीदाँत के पात्रों की खुरचने से शुद्धि हो जाती है। अन्त्यजों के आने से होने वाले दोष की शुद्धि गोमूत्र और जल से होती है। चुराये गए द्रव्यों की शुद्धि पानी से धोने से हो जाती है।

असंहत द्रव्यशौचं कार्यं प्रत्यात्मकं सदा।
वसुधान्यादि राशीनामेकदेशस्य दूषणे॥ 37॥
तावन्मात्रं समुद्धृत्य शेषं प्राक्षि तु मर्हति।
अम्भसालेपीय सा कार्यं भस्मना च विशोधनम्॥ 38॥

अपने पास रखे द्रव्यों की शुद्धि स्वयं को करते रहने चाहिए। धान्यादि के ढेर के एक ही स्थान पर पड़े रहने से दोष हो जाता है। उनकी शुद्धि उलटफेर करने या केवल देखरेख करने से होती है। इनकी शुद्धि के लिए जल से, लेपन और भस्म का प्रयोग करना चाहिए।

शाकादीनां शुद्धिमाह —

शाकमूलफलाद्याना धान्यवच्छुद्धिरिष्यते।
गोजीयमक्षिकौ कीटकृमि संस्पर्शनेषु च॥ 39॥
छागोपजिघ्रणाच्छुद्धिः अन्नस्याद्भिश्च प्रोक्षणात्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शाक और मूल-फल आदि वनौपज की शुद्धि धान्य की तरह देखरेख से करनी चाहिए। छिपकली, मक्खियों, कीट, कृमि, लटों आदि के स्पर्श से अशुद्ध और बकरियों के सूंघे अन्न की शुद्धि धोने से होती है।

खराश्वोष्ट्रसृगालाद्यैः विड्वराहैर्विमोयोहने॥ 40॥
तावन्मात्रं समुद्धृत्य शेषं संस्कारयेद्बुधः।
दीप्तोदकेन संस्पृश्य पवित्रि छागो घृतमेव च॥ 41॥
सुवर्णतोय संस्पृष्टं शुद्धमेव न संशयः।

गदहा, घोड़ा, ऊँट, सियार, सूअर-शूकर के छुए हुए अन्न का उतना ही भाग निकाल दें और समझदार लोग शेष भाग को संस्कारित कर लें। इस कार्य के लिए गर्मजल के छींटे देने से शुद्धि होती है। स्वर्णजल के छींटे देने से भी शुद्धि होती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

मक्षिकाकेश सम्मिश्रं पादेनोपहतं च यत्॥ 42॥
रजः पिपीलिकायुक्तं भुञ्जानोन्नं न भक्षयेत्।
तावन्मात्रं समुद्धृत्य प्रोक्ष्य शेषं तदम्भसा॥ 43॥
आन्याभिधारणाच्छुद्धिः भस्मक्षेपेण वा भवेत्।

मक्खियाँ पड़े हुए, केश गिरे हुए और पाँव से ठुकराये हुए, धूल और चींटियों से युक्त आहार को नहीं खाना चाहिए। उसमें से उतना भाग निकालकर शेष को पानी से धोकर शुद्ध कर लेना चाहिए। अन्य सभी द्रव्यों की शुद्धि धारणा मात्र से अथवा भस्म छिड़कने से होती है।

जलशुद्धिमाह —

भूमिस्थमुदकं शुद्धं वैतृष्ण्यं यत्र गोव्रजेत्॥ 44॥
अव्याप्तं यदमेध्येन गन्धपर्णरसान्वितम्।
न मुख्या विप्रुषोच्छिष्टं कुर्युरङ्गं च ते गताः॥ 45॥
याश्मश्रूणिगताप्यास्यान्नदन्तात्तरसंस्थिताः ।
पादा स्पृशन्ति ये चापिपराचमन बिन्दवः॥ 46॥
ते पार्थिवैः समाः ज्ञेयाः न तैरप्य शुचिर्भवेत्॥ 47॥

भूमि में स्थित जो जल है और जहाँ प्यासी गायें जाती हों, उस जल को शुद्ध समझें। जिस जल में कोई अयज्ञीय वस्तु न पड़ी हों, जो पत्तों के गिरने से सड़ान्ध नहीं

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

मारता हो और मुख्य रूप से विप्रुष (मुख से गिरने वाले छोटे-छोटे जलकण) से जूठा नहीं किया गया हो, जिस जल में दाढ़ी-मूँछ के बाल पड़े हों और जिसमें अन्न और दाँतों की जूठन का रस पड़ा हो और पाँवों से ठुकराया हो तथा जिसमें आचमन या कुल्ले किए गए हों व थूँका गया हो, उन सब को पार्थिव मात्र (वैसा ही) समझना चाहिए, उसकी शुचिता नहीं होती है।

क्षुत्वा सुप्त्वा च पीत्वा च सम्भाष्य चाधमैः सह।
इष्ठीवित्वाध्यायनादौ च शुचिरप्याचमेत् पुनः॥ 48॥[6]

छींककर, सोकर, पीकर, बोलकर और अधमों के साथ पूजा एवं अध्ययन इत्यादि करने पर पवित्रता के लिए आचमन करना चाहिए।

द्रव्यहस्तः समुच्छिष्टः संनिधायाद्धिराचमेत्।
द्रव्यशुद्धिश्च पूर्वोक्ता कार्या द्रव्यानुरूपतः॥ 49॥

इसके लिए हाथ में द्रव्य लेकर जूठे के सान्निध्य को जल का आचमन करें। इस तरह द्रव्यशुद्धि पूर्वोक्त द्रव्यों के अनुसार करनी चाहिए।

गोशकृन्मूत्रवल्मीकमृत्तिकाभस्मवारिभिः ।
वेश्मायतऽलिन्दानां कार्यमेभिर्विशोधनम्॥ 50॥

गाय के गोबर, मूत्र, बाँबी की मिट्टी, भस्म और जल अदि से घरों, निवासों और उनके अलिन्दों (बरामदों) का विशोधन करना चाहिए।

पञ्चविध शुद्धिमाह —

मार्जनैर्लेखनैः सेकैः गोनिवासाज्जनेन च।
इति पञ्चविधा शुद्धिः कार्या भूमेर्विजानता॥ 51॥

1. मार्जन से, 2. लेखन या खोदने, 3. छिड़काव, 4. गायों के निवास करने से और 5. जनता के बसकर (सफाई का ध्यान रखने से)—इन पाँच प्रकार से शुद्धि से सम्बन्धित कार्य भूमि के जानकारों ने कहे है।

ग्रामाद्धस्तशतं गत्वा नगरात्तच्चतुगुणम्।
मही सर्वाप्य मेध्याः सान्निर्लेपा यत्र दृश्यते॥ 52॥

ग्राम के बाहर सौ गज की दूरी तक की भूमि तथा नगर के बाहर की इससे

---

6. तुल. — मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्यमः। रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत्॥ सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतानि च। पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि सन्॥ मनु. 5, 133;145

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

चार गुनी अर्थात् चार सौ गज की भूमि जल से पवित्र होती है, जो निर्लेप दिखाई देती है।

द्रव्यशुद्धिमाह —

शुचिरापणज द्रव्यं कारुहस्तः सदाशुचिः।
प्रस्त्रवे च शुचिर्वत्सः शकुनिः फलपातने॥ 53॥

बाजार में बिक्री के लिए फैलाकर रखी गई वस्तुएँ और कारीगरों के हाथ सदा शुद्ध होते हैं। प्रसवकाल में बछड़ा शुद्ध होता है। फल गिराने में पक्षी अर्थात् पक्षी का काटकर गिराया हुआ फल शुद्ध होता है।

विप्रगोमक्षिकाश्वाजाच्छाया च सूर्यरश्मयः।
रजोभूर्वायुरापश्च स्पर्शे मेध्यानि सर्वदा[7]॥ 54॥

विप्र, गाय, मक्खी, अश्व और बकरी की छाया, सूर्य की किरणें शुद्ध होते हैं। इसी प्रकार मिट्टी, वायु, जल ये सर्वदा ही स्पर्शमात्र से मेध्य या पवित्र होते हैं।

नगरं ग्राम रथ्या वा परिभ्राम्य गृहाद्बहिः।
पादौ प्रक्षाल्य मृत्तोयैः गृहान्तः प्रविशेत्ततः॥ 55॥

नगर में, ग्राम की गलियों-मार्गों में, गृह के बाहर घूमने के बाद, अपने पाँवों को मिट्टी और जल से धोकर घर के भीतर प्रवेश करना चाहिए।

शिरस्नानविधिं —

शिरस्नानं प्रकुर्वीत स्त्रवन्तीषु विशेषतः।
मृद्गोमयैः समुद्धृत्य त्रिः शरीरं समन्ततः॥ 56॥

नहाते समय पहले सिर से स्नान करें और विशेष तौर से झरनों-स्रोतों में स्नान करें। इस दौरान मिट्टी लगाकर पूरे शरीर को तीन बार मल-मलकर नहाना चाहिए।

स्नानवस्त्रं परित्यज्य द्वितीयं परिधाय च।
तेन स्नात्वा काषायाद्यैर्वस्त्रमन्यत् समाचरेत्॥ 57॥

स्नान के समय पहने हुए जो वस्त्र भीगे हों उनको त्यागकर दूसरे वस्त्र धारण करने चाहिए। उतारे गए वस्त्रों को धोकर काषाय-पीताम्बर आदि वस्त्र धारण करने चाहिए।

---

7. तुल. — मनुस्मृति 5, 129-130, बृहत्पराशरस्मृति 6, 341, मार्कण्डेयपुराण 35, 22, ब्रह्मपुराण 221, 129-130, स्कन्दपुराण काशी. पूर्व. 40, 45-46 इत्यादौ।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उपवीताचरणम् —

सोपवीतः समाचम्य पानीयमभिमन्त्रयेत्।
एकविंशतिवारं तु शिवमन्त्रेण भक्तितः॥ 58॥

उपवीत के साथ आचमन करने के लिए पानी को अभिमन्त्रित करना चाहिए। इसके लिए इक्कीस बार शिवमन्त्र का भक्तिपूर्वक जाप करना चाहिए।

ध्यायमानः शिवं शान्तं शनैः स्नानं समाचरेत्।
आचम्य चात्मनः कुर्यादभिषेकं ततः पुनः॥ 59॥

तदनन्तर शान्तचित्त शिव का ध्यान करना चाहिए और धीरे-धीरे पुनः स्नान का आचरण करना चाहिए। पुनः आचमन करके अपना अभिषेक करना चाहिए।

कुम्भेन पर्णपुटकैः करद्वयपुटेन वा।
शिवेनैकादशात्मानं स्वयमन्येन वा पुनः॥ 60॥
निर्विघ्नलक्ष्मीविशुध्यर्थमभीष्टं चेत्समन्ततः।
आचम्य प्रोक्षयेद्भूयस्तावदेवात्मनः शिरः॥ 61॥

इसके लिए कुम्भ या कलश के जल से अथवा पत्ते से बने दौने या दोनों हाथों को मिलाकर (धोबा बनाकर) शिव के एकादश नामों को लेना चाहिए। निर्विघ्न अभीष्ट लक्ष्मी की विशुद्धि के लिए अच्छी तरह आचमन करके प्रोक्षण करें और सिर झुकाकर नमस्कार करना चाहिए।

ग्रहे च परिजप्तेन स्नानं कुम्भे निवारयेत्।
एवं भवति सुस्नातः सर्वपाप विवर्जितः॥ 62॥
सर्वतीर्थाभिषेकस्य श्रद्धधानः फलं भवेत्।

ग्रह का जप करते हुए कुम्भों से स्नान करें और उनके दोष का निवारण करें। इस तरह अच्छा स्नान होता है। इससे सब पापों का विसर्जन होता है और सभी तीर्थों में स्नानाभिषेक का जो फल मिलता है, वह इस तरह की श्रद्धा से सुलभ होता है।

संध्याभ्रष्टदोषनिवारणार्थं प्रायश्चितमाह —

संध्या यत्र परिभ्रष्टः शिवैकादशक त्रयम्॥ 63॥
जप्त्वा विशुद्धिमाप्नोति स्नानहीनश्च तज्जपेत्।
पूर्वण्यपूज्यदेवेशं गुरुमग्निं च भक्तितः॥ 64॥
अदत्वा च बलिं तत्र शिवाष्टास्य शतं जपेत्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जहाँ शिव के नाम पर एकादशी की तीन संध्याएँ परिभ्रष्ट हुई हो अर्थात् नहीं कर पाए हों तो शिवनाम के जप से विशुद्धि हो जाती है चाहे वह जप बिना स्नान किए ही क्यों न किया गया हो। देवेश शिव का, गुरु का और अग्नि का भक्तिपूर्वक पूजन पूर्वाभिमुख होकर करना चाहिए। वहाँ पर कोई बलि दिए बिना ही शिव का एक सौ आठ नाम-जप करें।

अनिवेद्यभोजप्रायश्चितमाह —

पत्रं पुष्पं फलं मूलमन्नपानाद्यमौषधम्॥ 65॥
अनिवेद्य न भुञ्जीत यदाहाराय कल्पितम्।
अनिवेद्य प्रभुञ्जानो प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ 66॥
शिवाष्टशतजप्तेन पूजयाच्च विशुध्यति।

पत्र, पुष्प, फल, मूल, अन्न-पान औषधियों का जो भी कुछ आहार बनाया गया हो, तो उसे भगवान् को निवेदित किए बिना ग्रहण नहीं करना चाहिए। बिना नैवेद्य के उक्त भोजन ग्रहण करने पर प्रायश्चित करना पड़ता है।

प्राणिहत्याप्रायश्चितमाह —

अनस्थिप्राणि सङ्घातं हत्वैकादशकं जपेत्॥ 67॥
हत्वा च पक्षिणः सर्वाः त्रिरैकादशकं जपेत्।

यदि कोई बिना अस्थि वाला प्राणी अपने हाथ से मारा जाए तो ग्यारह शिवमन्त्र का जाप करना चाहिए। यदि किसी भी प्रकार का कोई पक्षी मारा जाए तो तैतीस बार जाप करना चाहिए।

सर्पमार्जारनकुलान् श्वानमुष्ट्रं खरं हयम्॥ 68॥
अजाद्याश्च मृगान्सर्वान् हत्वा चाष्टशतं जपेत्।

इसी प्रकार साँप, बिल्ली, नेवला, श्वान, ऊँट, गदहा, घोड़ा, बकरी और विभिन्न जातियों के मृग मारे जाएँ तो एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए।

जपेदष्टसहस्रं तु क्षत्रविट् गोवधेषु च॥ 69॥
शिवाग्निगुरुपूजां च योगीन्द्र द्विज भोजनम्।

किसी क्षत्रिय, वैश्य और गाय के मारे जाने पर एक हजार आठ बार जाप करें और शिव, अग्नि तथा गुरुपूजा करके योगीराज और द्विज को भोजन करवाना चाहिए।

हत्वा शूद्रं स्त्रियं बालं शिवमष्टशतं जपेत्॥ 70॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जपे च तत्सहस्रं तु सच्छूद्रस्य प्रमाणे।

किसी शूद्र, स्त्री और बालक की हत्या हो जाने पर एक सौ आठ शिवमन्त्र का जाप करें और किसी सद्शूद्र के मारे जाने पर हजार के प्रमाण में शिव नाम का जाप करना चाहिए।

मृतकसूतकाह —

सद्वृत्तः शिवभक्तश्च नान्यं मृतकसूतके॥ 71॥
संस्कारेषु च सर्वेषु गृहेषु किमुतान्यतः।
सूतकेन्यत्र भोक्तव्यं नित्यं किञ्चिद्विवर्जयेत्॥ 72॥
भुक्त्वा प्रमादतः स्नेहात् शिवस्याष्टशतं जपेत्।

सद्वृत्ति वाले, शिवभक्त और अन्य किसी के दिवंगत हो जाने पर सूतक (मरणाशौच) में, ऐसे ही सभी प्रकारों के संस्कारों में, गृहों में अथवा अन्यत्र सूतकों में भोजन नहीं करना चाहिए। यदि नित्यक्रम में थोड़ा बहुत भी दोषादि हो तो वर्जित कर देना चाहिए। प्रमाद अथवा स्नेहाग्रह से सूतक में खाने से शिव के नाम का एक सौ आठ जाप करना चाहिए।

न स्पृशेत्पाण्यात्र भक्षयेत् —

श्वानवाराहचण्डालैर्दुर्जनैः कपिकुक्कुटैः॥ 73॥
चक्रवाकगृध्रकाकाद्यैः स्पृष्टमन्नं न भक्षयेत्।
शिवैकादशजप्तेन गव्येन हविषा पुनः॥ 74॥
पीतेन शुध्यते क्षिप्रमभोज्याहारदूषितः।

कुत्ता, सूअर, चाण्डाल, दुर्जन, बन्दर, मुर्गा, चकवा, गीध, कौआ आदि का छुआ गया अन्न नहीं खाना चाहिए। ऐसा होने पर शिवमन्त्र का ग्यारह बार जप करें, पंचगव्यों का सेवन करें और फिर हवन करना चाहिए। ऐसा करके जल पीने वाला अभोज्य आहार से दूषित व्यक्ति शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है।

तीर्थयात्रा विशुद्धात्मा च सद्वृत्तः शिवभावितः॥ 75॥
पुत्रैरपि न भुञ्जीत सार्धं क्रूरैरधार्मिकैः।
महापातकशुध्यर्थं सहस्राणि जपेद्दश॥ 76॥
प्राणायामैस्त्रिसंध्यं च शिवमग्निं च पूजयेत्।

तीर्थयात्रा से विशुद्धात्मा हुए और सद्वृत्त व शिवभावित हुए व्यक्ति को क्रूरकर्मा और अधार्मिक व्यक्ति, चाहे वह पुत्र ही क्यों न हो, उसके साथ आधा भोजन

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

भी नहीं करना चाहिए। ऐसे महापातक से शुद्ध होने के लिए दस हजार शिवमन्त्र का जाप करें। साथ ही तीनों ही संध्याओं में प्राणायाम करें और शिव, अग्नि का पूजन करें।

रेतोमूत्रपुरीषाणि प्राश्च पीत्वा च वारुणीम्॥ 77॥
भुक्त्वा चान्नं न भोज्यान्नं गत्वा चाप्यन्तिमस्त्रियम्।
जप्त्वा शिवायुतं सम्यक् पूर्वोक्तविधिना पुनः॥ 78॥

वीर्य, मूत्र, मल का प्राशन कर लेने, सुरापान करने, नहीं खाने योग्य भोजन कर लेने और अन्त्य की स्त्री के साथ गमन करने पर पूर्वोक्त विधि से दस हजार शिव मन्त्र का सम्यक् जाप करना चाहिए।

ब्रह्मकूर्चफलमाह —

पञ्चगव्यं सकृत्पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिरनुक्रमात्॥ 79॥
जपं च पञ्चभिर्वर्णैः ओङ्कारेण कुशोदकम्।
पालाशपद्मपत्रे वा ताम्रे वाप्यथवा स्थितः॥ 80॥
कृत्वैकस्थं शिवेनैव जपमष्टशतं पुनः।
अहोरात्रोषितः स्नातः शिवस्य पुरतः स्थितः॥ 81॥
ओङ्काराद्येव मन्त्रेण प्राङ्मुखस्तच्छनैर्जपेत्।
पीतमात्रे भवेत्पूतः सम्पूर्णः शिवनिर्मलः॥ 82॥

पंचगव्य और गोमूत्र का पान करने पर सभी पाप छूट जाते हैं। (ब्रह्मकूर्च के अर्थ में) साधक गोमूत्र, गोबर, दूध, दही तथा घी का अनुक्रम से पान करें। फिर वह पंचाक्षर मन्त्र का ओंकार सहित (ॐ नमः शिवाय) जाप करें। कुशोदक, पलाशपत्र अथवा पद्मपत्र या ताम्रपात्र में स्थित जल के प्रयोग और शिव के एक सौ आठ जपों के साथ एकत्व करके शिव के आगे स्थित होकर दिन-रात उपवास करके स्नान, पूर्वमुख होकर ओंकार का आदि में प्रयोग करके शिवमन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का शनै-शनै जाप और उक्त जल का पान करने से शिव जैसा निर्मल हो जाता है।[8]

---

8. ब्रह्मकूर्चेति व्रतविशेषः पञ्चगव्यपानं व्रतरूपं तेनोपवासः। ब्रह्मकूर्चमाह जाबालः—अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः। पञ्चगव्यं पिबेत् प्रातर्ब्रह्मकूर्च्चविधिः स्मृतः। तथा च लिङ्गपुराणे अघोरेशमाहात्म्ये— रुद्रगायत्रिया ग्राह्यं गोमूत्रं कापिलं द्विजाः॥ गन्धद्वारेति तस्या वै गोमयं स्वस्थमाहरेत्। तेजोसि शुक्रमित्याज्यं कापिलं संहरेद्बुधः॥ आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति चाहरेत्। गव्यं दधि नवं साक्षात्कापिलं वै पितामह॥ देवस्य त्वेतिमन्त्रेण संग्रहेद्वै कुशोदकम्। एकस्थं होमपात्रे वा कृत्वाघोरेण राजते॥ ताम्र वा पद्मपत्रे वा पालाशे वा दले शुभे। सकूर्च सर्वरत्नाढ्यं क्षिप्त्वा तत्रैद काञ्चनम्॥ जपेल्लक्ष्यमघोराख्यं हुत्वा चैव घृतादिभिः। घृतेन चरुणा चैव समिद्भिश्च तिलैस्तथा॥ यवैश्च व्रीहिभिश्चै च जुहुयाद्वै पृथक्पृथक्। प्रत्येकं

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ब्रह्महत्यादिभिः पापैः सर्वैरपि विमुच्यते।
मातृपितृ समुद्भूतं सहसागन्तुकं च यत्॥ 83॥
अस्थिमज्जागतं पापं ब्रह्मकूर्चः क्षणाद्दहेत्।
अष्टम्यां ब्रह्मकूर्चेन स्नापयित्वा सकृच्छिवम्॥ 84॥

उसके ब्रह्महत्यादि सभी पाप छूट जाते हैं। माता-पिता से उत्पन्न हुए या सहसा होने वाले अस्थि-मज्जागत पाप इस ब्रह्मकूर्च के प्रयोग से क्षणभर में जल जाते हैं। अष्टमी के दिन ब्रह्मकूर्च की विधि से एक ही बार स्नान करने से वह शिव स्वरूप हो जाता है।

अशौचत्वा च पातकैर्मुक्तः शिवलोके महीयते।
तस्मादेतत्परं गुह्यं महापाप विनाशनम्॥ 85॥

वह अशौच और पाप से मुक्त होकर शिवलोक को जाता है। इसलिए जानना चाहिए कि यह परमगुह्य और महापापों का विनाशक है।

प्रायश्चित्तं शिवेनोक्तं न देयं यस्य कस्यचित्।
एतद्रहस्यं परमं प्रायश्चित्तं स्वयं ब्रुवः॥ 86॥

यह प्रायश्चित विषयक वर्णन भगवान् शिव द्वारा प्रोक्त है, इसे अन्य किसी ऐसे-वैसे को नहीं बताना चाहिए। कहा गया है कि यह विवरण अपने आपमें परम प्रायश्चित-रहस्य है।

कुर्यात् प्रच्छन्नपापेषु प्रकाशेष्वर्चयेद्गुरुम्।
शिवज्ञानमिदं शान्तं महापातक नाशनम्॥ 87॥
प्रणिपत्य गुरुं प्राज्ञः प्रार्थयेच्छुद्धिमात्मनः।

यदि कोई गुप्त पाप भी छिपकर कर लिया हो तो उसको गुरु के सम्मुख कहना चाहिए। प्रायश्चित विषयक यह शिवज्ञान शान्त और महापापों का विनाश करने वाला है। इसके लिए बुद्धिमान को स्वयं शुद्ध होकर गुरु को प्रणाम करना चाहिए।

इति श्रीशिवधर्मोत्तरे प्रायश्चित्तकथनं नामैकादशोऽध्यायः॥ 11॥

इस प्रकार श्रीशिवधर्मोत्तरपुराण में प्रायश्चित कथन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

*****

सप्तवारं तु द्रव्यालाभे घृतेन तु॥ हुत्वाघोरेण देवेशं स्नात्वाऽघोरेण वै द्विजाः। अष्टद्रोणघृतेनैव स्नाप्य पञ्चाद्विशोध्य च॥ अहोरात्रोपितः स्नातः पिबेत्कूर्चं शिवाग्रतः। ब्राह्मां ब्रह्मजपं कुर्यादाचम्य च यथाविधि॥ लिंग. पूर्व. 15, 18-26

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अथ पातालादि शिवलोकपर्यन्तानां लोकानां निरूपणं द्वादशोऽध्यायः ॥ 12 ॥

अगस्त्योवाच —

श्रुत्वैतत्परमं गुह्यं गवां देहसमुद्भवम्।
ब्रह्मकूर्चस्य माहात्म्यमगस्त्यः पुनरब्रवीत्॥ 1॥

महात्मा अगस्त्य ने पुनः कहा कि गायों की देह से उपजने वाले ब्रह्मकूर्च के माहात्म्य को सुनाएँ जो कि परम गोपनीय है।

भवन्भुवनां चा गोलोकः कीदृशः स्मृतः।
प्राप्यते कर्मणा तेन कियत्यध्वनि संस्थितः॥ 2॥

हे भगवान्! भुवनों में गोलोक किस प्रकार का कहा गया है? कर्म के द्वारा उसे प्राप्त करने के लिए उसमें किस प्रकार के अध्व या मार्ग हैं?

स्कन्दोवाच —

श्रूयतामभिधास्यामि नमस्कृत्वा महेश्वरम्।
गोमातृलोकं परमं सर्वकाम समन्वितम्॥ 3॥

स्कन्द बोले कि मैं भगवान् महेश्वर को नमस्कार करके कहता हूँ, सुनिये। गो माता का लोक सभी कामनाएँ पूरी करने वाला हैं।

अधोधः सर्वलोकानां नरकाः क्रमशः स्थिताः।
पातालानि ततः सप्त पातालपतयस्तथा[1]॥ 4॥

इस सभी लोकों के एक दूसरे के नीचे क्रम से नरक हैं। उसमें सात पाताल है और उन सातों ही पातालों के सात अधिपति कहे गए हैं।

यावत् प्रमाणं सुस्वादु परिच्छिन्नं महीतलम्।
तावत्प्रमाणान्येवाधः कूपाकाराणि तानि तु॥ 5॥

इस पृथ्वीतल पर जहाँ तक सुस्वाद जल घिरा हुआ है, उस प्रमाण तक नीचे की ओर वे लोक कूपाकार हैं।

---

1. शिवपुराणे— दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम!। अतलं वितलं चैव सुतलं च रसातलम्॥ तलं तलातलं चाग्र्यं पातालं सप्तमं मतम्॥ भूमेरधः सप्तलोका इमे ज्ञेया विचक्षणैः॥ उच्छ्रायो द्विगुणश्चैषां सर्वेषां रत्नभूमयः। शिव. उमा. 15, 22-24

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तेषां प्रत्येकमुत्सेधं प्रमाणं परिकीर्तितम्।
योजनानां सहस्राणि दश तत्वार्थवित्तमैः॥ 6॥

उनमें से प्रत्येक लोक का विस्तार प्रमाण तत्व के जानने वालों द्वारा दस हजार योजन के बराबर कहा गया है।

सहस्र योजनान्येषां तलाभ्यन्तरनेमयः।
सुषिकाणां प्रमाणं तु सहस्राणि नवैकशः॥ 7॥

इन दस-दस हजार योजनों के तलों के भीतर अन्य हजारों प्रकार के सुषिकान (एक प्रकार के साँप) के प्रमाण कहे गए हैं।

तेषां रुचिरधामस्य नामतस्तं महातलम्।
दिव्यद्रव्योपसम्पन्नं श्रीमच्चामीकराकृतिम्॥ 8॥
नागराजः सदैवास्ते तस्मिन्कृत निकेतनः।
अनन्तोऽनन्तधामा च मुचुकुन्दो नृपो बलिम्॥ 9॥

महातल के अन्तर्गत उनके सुन्दर-सुन्दर आवास बने हैं जो दिव्य द्रव्यों से परिपूर्ण हैं और सोने की आकृतियों वाले हैं। उनमें बने भवन में उन साँपों के देवता नागराज सदा रहते हैं। उनमें अनन्त और अनन्तधामा के राजा बलवान मुचुकुन्द हैं।

ततो रसातलं नाम शिलासङ्ख्यात भूमिकम्।
वासुकेर्नागराजस्य तत्र चारुमहापुरम्॥ 10॥

उसके बाद रसातल नामक असंख्यात शिलाओं वाली भूमि कही गई है जहाँ का नागराज वासुकी है उसका महापुर बहुत सुन्दर बना हुआ है।

पुरं पुलोम्नस्तत्रैव दानवाधिपतेः महत्।
सुपर्णस्य च दैत्यानामन्येषां च महात्मनाम्॥ 11॥

वहाँ पर पुलोमा नाम का पुर बताया गया है जो कि महादानव अधिपति है। अन्य महान् सुपर्ण दैत्यों का धाम है।

ततः तलाचलं नाम शक्तिरार्चितभूमिकम्।
नागानां स्वस्तिकादीनां निवास्तत्र कीर्तितः॥ 12॥

उसका नाम तलातल है जो शक्तिरार्चित भूमि हैं। वहाँ पर स्वस्तिक आदि नागों का निवास कहा गया है।

दानवादिपतीनां च तत्रैव निलयाः कृताः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

विरोचनहिरण्याक्षतक्षकादीनां महात्मान्॥ 13॥

दानव आदिकों के स्वामी राजाओं के तलातल में आवास बने हुए हैं जिनमें विरोचन, हिरण्याक्ष और तक्षक आदि महान दानवराज हैं।

ततः सुतलमित्युक्तं पातालं पीठ भूतलम्।
तस्य चोर्ध्वं तु सर्वेषां भ्रमयन्वितलं स्थितिः॥ 14॥

उसको सुतल कहा जाता है। वह भूतल की पीठ का पाताल है। उसके ऊपर सभी दृष्टि से भ्रमणशील वितल स्थित है।

असुराधिपतिस्तत्र कालनेमिर्महत्पुरम्।
चारुचामीकरमयं वैनतेयस्यावासं च सुन्दरम्॥ 15॥

उसका स्वामी असुराधिप कालनेमि है जो उस महत्पुर में रहता है। वहाँ सुन्दर सोने के बने हुए वैनतेय या गरुड़ के निवास है।

ततश्च निश्चलं नाम पातालं रत्नभूमिकम्।
तस्मिन् महान्तको नाम च्यवनश्च कृतालयः॥ 16॥

इसके बाद निश्चल नामक पाताल है जो रत्नों की भूमि कहा हैं। उसमें महान्तक नामक च्यवन द्वारा बनाया हुआ आवास है।

तारकोग्निमुखस्तस्मिन् नाम्ना दुर्दान्त दानवः।
दिवसं निकृतावासाः वह्लादस्तुतथैव च॥ 17॥

उसमें तारक और अग्निमुख नामक दुर्दान्त दानव दिनमें अपने आवासों से निकलकर अट्टहास करते हुए धावा बोलते हैं।

पातालं वितलं नाम शुक्लक्षितितलं ततः।
कम्बलाश्वतरानागौ सहितौ यत्र तिष्ठतः॥ 18॥

इसके आगे वितल नामक पाताल है, जिसकी भूमि सफेद है। कम्बल और अश्वतर नामक नाग वहाँ पर साथ-साथ रहते हैं।

महाजृम्भहयग्रीव प्रभृतीनां महात्मनाम्।
वीराणामसुरेन्द्राणां निवासस्तत्र कीर्तितः॥ 19॥

महाजृम्भ, हयग्रीव आदि महान् असुरेन्द्रों के वीरवरों का वहाँ पर निवास कहा गया है।

कृष्णं क्षितितलं तस्मात् पाताल तल सञ्ज्ञितम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शङ्कुकर्ण महाकर्ण नमुचीनां निकेतनम्॥ 20॥

काली भूमितल वाला पाताल तल नाम वाला है। वहाँ शंकुकर्ण, महाकर्ण और नमुची नामक दैत्यों के महल बने हैं।

सप्तद्वीपापृथ्वीवर्णनम् —

पातालसप्तकादूर्ध्वं सप्तद्वीपा महीस्थिता।
समुद्रैः सप्तभिर्युक्ता पर्वतैः समलङ्कृता॥ 21॥

उक्त सात पातालों के ऊपर सात द्वीपों वाली पृथ्वी स्थित है। यह सात समुद्रों और पर्वतों से सुशोभित है।

जम्बूद्वीपः प्रथमर्मध्ये प्लक्षद्वीपस्ततो बहिः।
तृतीयः शाल्मलीद्वीपः कुशद्वीपश्च तद्बहिः॥ 22॥
क्रौञ्चद्वीपश्च परतः शाकद्वीपश्च तद्बहिः।
परतः पुष्करद्वीपः सप्तमः परिकीर्तितः[2]॥ 23॥

इस पृथ्वी के मध्य में प्रथम जम्बूद्वीप है। उसके बाहर द्वितीय प्लक्षद्वीप है। तीसरा शाल्मलीद्वीप है। उसके बाहर चौथा कुशद्वीप है। आगे पाँचवाँ क्रौंचद्वीप है और उसके बाद छठवाँ शाकद्वीप है। तदनन्तर पुष्करद्वीप है जो सातवाँ कहा गया है।

क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदधिः।
दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादुतः सप्तमः स्मृतः[3]॥ 24॥

इस पृथ्वी पर 1. क्षारसमुद्र, 2. इक्षुसमुद्र, 3. रससमुद्र, 5. सुकोदयसमुद्र, 6. घृतसमुद्र, इसके बाद 7. क्षीरपूर्ण अद्भुत स्वाद लिए सातवाँ समुद्र जानना चाहिए।

सप्तद्वीपसमुद्राणां द्विगुणं द्विगुणोत्तरम्।
आयामविस्तारौ ज्ञेयौ नियुक्तः परमः स्मृतः॥ 25॥

उक्त सातों ही द्वीप सातों समुद्रों से दुगुना आयाम और दुगुना ही विस्तार लिए परम जानने चाहिए।

---

2. देवीभागवते— यत आसंस्ततः सप्त भुवो द्वीपा हि ते स्मृताः। जम्बुद्वीपः प्लक्षद्वीपः शाल्मलीद्वीप संज्ञकः॥ कुशद्वीपः क्रौञ्चद्वीपः शाकद्वीपश्च पुष्करः। तेषां च परिमाणं तु द्विगुणं चोत्तरोत्तरम्॥ देवीभागवत 8, 4, 16-17
3. देवीभागवते— क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदकः॥ क्षीरोदो दधिमण्डोदः शुद्धोदश्चेति ते स्मृताः। सप्तैते प्रतिविख्याताः पृथिव्यां सिन्धवस्तदा॥ तत्रैव 8, 4, 18-19; कौर्मे— क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदकः। दध्योदः क्षीरसलितः स्वादूदश्चेति सागराः॥ कूर्म. पू. 43, 4

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चेति दक्षिणः।
नीलः श्वेतस्त्रिशृङ्गी च मेरुरुत्तरतस्त्रियः[4] ॥ 26 ॥

इनमें से जम्बूद्वीप के मध्य में हिमवान, हेमकूट और निषध नामक पर्वत दक्षिण में हैं। नील, श्वेत और त्रिशृंगी ये (तीनों वर्षपर्वत) मेरुपर्वत उत्तर में हैं।

मध्येमेरुः स्थितः षण्णां जम्बूद्वीपस्य मध्यतः।
माल्यवान् पुरतो ज्ञेयः पश्चिमे गन्धमादनः ॥ 27 ॥
एते पर्वतराजानो जम्बूद्वीपे नवस्थिताः।

इनके बीच में मध्यमेरु भी है— ये छह पर्वत जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हैं। पूर्व में माल्यवान पर्वत जानना चाहिए और पश्चिम में गन्धमादन हैं— ये नौ पर्वताधिराज जम्बूद्वीप में स्थित है।

प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयाः सप्तसप्तैव पर्वताः ॥ 28 ॥
पुष्कराद्वीपमध्यस्थ पर्वतो वलयाकृतिः।
एकस्थित समन्ताच्च नामतो मानसोत्तरः[5] ॥ 29 ॥

प्लक्ष नामक द्वीप में सात-सात पर्वत हैं। पुष्कर द्वीप के मध्य में जो पर्वत है, वह वलयाकार है और एकस्थिति में चारों ओर से घेरा किए हुए है। उसका नाम मानसोत्तर है।

बहिरेक शिलानामस्यादुदस्य व्यवस्थितः।
उर्वीकरतलाकारा काञ्चनी परिमण्डली ॥ 30 ॥

उसके बाहर एक शिला अदुद के नाम से स्थित है। वह पृथ्वी रूपी हाथ पर हथेली जैसे आकार वाली और सोने के परिमण्डल वाली है।

आरुद्रसन्निवेशां तु निविष्टा विविधा क्षितौ।
तस्य प्रमाणा निर्दिष्टा दशयोजनकोटयः ॥ 31 ॥
लोकालोक इति ख्यातः तत्पर्यन्ते समन्ततः।

रुद्र सहित विविध देवताओं की वह निवासभूमि है। उसका प्रमाण दस करोड़ योजन बताया गया है। उसको लोकालोक कहा गया है जो चारों ही ओर प्रसारित है।

---

4. तथा च कौर्मे— हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे। नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥ कूर्म. पू. वि. 43, 9
5. तुल.— मत्स्यपुराणे 124, 80

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

स्थितो हेममय श्रीमान् अचलः परिमण्डितः ॥ 32 ॥
योजनानां सहस्राणि दशैवूर्ध्वं समुच्छ्रितः।
तावदेव हि विस्तीर्णं तदर्धं आनुमान्यतः ॥ 33 ॥
प्रकाशय ततोतमभिः परितापे विहन्यते।
लोकालोक इति प्रोक्तः अयं अचलो महान् ॥ 34 ॥
लोकालोकं समाम्नोर्यः भूलोकः परिकीर्तितः।

वह सुवर्णमय श्रीमान् अचल पर्वत से परिमण्डित होकर स्थित है। वह दस हजार योजन की ऊँचाई का है और उसका आधा उतना ही विस्तीर्ण है। इससे अन्धकार में भी प्रकाश हो जाता है। इसलिए इसको लोकालोक पर्वत कहा जाता है। इस महान अचल पर्वत को और इस भूलोक को भी लोकालोक कहा जाता है।

गन्धर्वयक्षरक्षोभिः पिशाचैश्च निषेवितः ॥ 35 ॥
मानुषैः पशुभिश्चैव मृगैः पक्षिसरीसृपैः।
स्थावरैर्विविधाकारैः भूतैरेतैस्तु षड्विधैः ॥ 36 ॥

गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच, मनुष्य, पशु और वैसे ही मृग, पक्षी, सरीसृप और विविध आकार वाले छह प्रकार के स्थावर भूतप्राणियों से यह निषेवित है।

भूलोकतो भुवर्लोको यावदादित्यमण्डलम्।
अन्तरेता वन्त्यस्मिन् वसुरुद्रदिवाकरः ॥ 37 ॥

भूलोक से भुवर्लोक का परिमाण वहाँ तक है जहाँ तक कि सूर्य का मण्डल स्थित है। उसके अन्तर्गत अष्ट वसु, एकादश रुद्र और द्वादश दिवाकर हैं।

आदित्यमण्डलादूर्ध्वं प्रोक्तं स्वर्लोकमध्रुव्वात्।
विमानकोट्य तस्मिन् अष्टाविंशतिरासते ॥ 38 ॥

सूर्यमण्डल से ऊपर की ओर जहाँ तक ध्रुव की स्थिति है, वहाँ के मण्डल को स्वर्लोक कहा गया है। वहाँ वायु (की नेमियाँ[6]) है। वहाँ अट्ठाईस करोड़ के बराबर विमान रहते हैं (अथवा परिमाण हैं)।

मेढीभूतो[7] विमानां सर्वेषामुपरि ध्रुवः।

---

6. तुल.— ऊर्ध्वं मण्डलाद् व्योम ध्रुवो यावद् व्यवस्थितः। स्वर्लोकः स समाख्यातस्तत्र वायोस्तु नेमयः ॥ कूर्म. पूर्व. 39, 5
7. 'मेदीभूतो' इतिमूलपाठः। शिवपुराणे— मेढीभूतः स यस्तस्यय ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः। भूभुर्वः स्वरिति ज्ञेयं ऊर्ध्वं ध्रुवादवाक् ॥ उमा. 19, 7

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उद्वहन्ती यत्र बन्धानि क्रमेणानिलमण्डलैः ॥ 39 ॥

उक्त मेढीभूत (भेड़ के सींग के समान घुमावदार, ग्रहचक्रीय) विमानों के सबसे ऊपर ध्रुव है जहाँ पर वायुमण्डल में वे विमान क्रम से बन्धे हुए हैं और उड़ते रहते हैं।

योजनानां महीपृष्ठादूर्ध्वं पञ्चादश ध्रुवात्।
नियुतान्यनिलस्कन्धाः सप्तास्मिन्नन्तरे स्थितेः ॥ 40 ॥

पृथ्वी की पीठ से पन्द्रह योजन ध्रुव से ऊपर सात नियुत प्रमाण अन्य अनिल स्कन्ध स्थित है।

पृथिव्यां प्रथमस्कन्धः स्थितश्चा मेघमण्डलान्।
आवहो नाम मेघानां व्यूहानां वाहनानि कृत् ॥ 41 ॥

पृथ्वी के ऊपर का जो प्रथम स्कन्ध है उसमें मेघमण्डल स्थित है। वहाँ पर आवह नामक मेघों के व्यूह वहन करते हैं।

द्वितीयः प्रथमं प्रवहं नाम निबन्धः सूर्यमण्डले।
तृतीयश्चोद्वहोपायः स्कन्ध इन्द्रोः प्रतिष्ठितः ॥ 42 ॥

द्वितीय स्कन्ध का पहला प्रवह नामक निबन्ध है जो सूर्यमण्डल में है। तीसरा स्कन्ध उद्वहोपाय (अनुवह) नामक है जहाँ पर इन्द्र प्रतिष्ठित हैं।

चतुर्थः संवहस्कन्धः स्थिरो नक्षत्रमण्डले।
ग्रहेषु पञ्चमस्कन्धो विवहः परिकीर्तितः ॥ 43 ॥

चतुर्थ स्कन्ध संवह नामक है जो नक्षत्र मण्डल में स्थित है। ग्रहों के मण्डल में पंचम स्कन्ध है जिसको विवह कहा गया है।

स्कन्धः परिवहः षट् सुस्थितः सप्तर्षिमण्डले।
वायुः परिग्रहो नाम निबन्धः सप्तमे ध्रुवे ॥ 44 ॥

छठवाँ परिवह (? परावह) नामक स्कन्ध है जो सप्तर्षि मण्डल में सुस्थित है। सातवाँ निबन्ध वायु मण्डल में स्थित है जिसका नाम परिग्रह (परिवह) है[8]।

करोत्युत्पतनादीनां वर्षण्यादीनिचावहः।
उपरिष्टान् पुनः षण्णां विमानावाहनक्रिया ॥ 45 ॥

---

8. तुल.— आवाहः प्रवहश्चैव तथैवानुवहः परः। संवहो विवहश्चाथ तदूर्ध्वं स्यात् परावहः ॥ तथा परिवहश्चोर्ध्वं वायोर्वै तप्त नेमयः ॥ कूर्म. पूर्व. 39, 6-7

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ये आवहादि सब नेमियों से पतनादि करते हैं और वहन करने से वर्षादि सम्भव होती है। इन छहों के ऊपर की ओर विमानों की वाहन क्रिया होती रहती है।

योजनानां ध्रुवान् कोटिं महर्लोक समुच्छ्रितः।
विनिवृत्ताधिकाराणामधिवासो महात्मनान्॥ 46॥

करोड़ों योजनों की महर्लोक की ऊँचाई हैं जहाँ पर अपने अधिकारों से निवृत्त होकर महात्मा अधिवास करते हैं।

विंशतिः कोटयोष्टौ च सुरणामधिकारिणाम्।
जनाः स्वर्लोकमागत्य नियोगात् पद्मजन्मनः॥ 47॥

अट्ठाइस करोड़ योजन ऊँचाई के अधिकारी देवतागण हैं जहाँ ब्रह्मा के द्वारा भेजे जाने से लोग स्वर्गलोक में आकर रहते हैं।

स्थित्वा मन्वन्तरं तत्र स्वव्यापारे वसाधिते।
आरोहति महालोकमागच्छन्ति परे जनाः॥ 48॥

वे वहाँ पर मन्वन्तर काल पर्यन्त स्थित रहकर अपने कामकाज का साधन करते हैं और फिर ये जन महालोक में आरोहण करते हैं।

ब्रह्मणो दिवसेनोक्त देवमार्गाश्चतुर्दश।
क्रमेण कृत्वा कर्माणि महालोके वसन्ति ते॥ 49॥

ब्रह्मा के एक दिन में चौदह देवमार्ग (देवराज इन्द्र) कहे गए हैं। वे क्रम से कर्मों को करते हैं और फिर महालोक में निवास करते हैं।

कोटिद्वयं महालोकाः जनलोकं समुच्छ्रतः।
साध्यानाम्सुरा तस्मिन् वसन्ति सुखिनः सदा॥ 50॥

महालोक के ऊपर दो करोड़ योजन ऊँचा जनलोक हैं जहाँ पर साध्यगणों के देवता सदा सुखपूर्वक निवास करते हैं।

योजनानां तपोलोकश्चतस्त्रः कोटियोजनाः।
प्रजानां पतयस्तत्र मानसां ब्रह्मणः सुताः॥ 51॥

इसके बाद, चार करोड़ योजन ऊंचा तपोलोक है जहाँ पर प्रजा के स्वामी ब्रह्माजी के मानसपुत्र सनन्दन आदि हैं।

सत्यलोकस्तपोलोकात् कोटिषट्कं समुच्छ्रितः।
आस्ते उदवृत्तस्तत्र सुराणामीश्वरैः विराट्॥ 52॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

तपोलोक से छह करोड़ योजन ऊँचाई तक सत्यलोक है। वहाँ पद देवताओं के ईश्वर उदवृत्त विराट रहते हैं।

ब्राह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणेन समुच्छ्रितः।
विस्तारेण तदर्धश्च दिव्यभोग समन्वितः॥ 53॥

ब्रह्मलोक से दुगुनी ऊँचाई पर विष्णुलोक हैं। वह विस्तार में इसका आधा है। वह दिव्यभोगों से समन्वित है।

शिवपुरवर्णनम् —

विष्णुलोकाच्चिरतः श्रीमच्छिवपुरं महत्।
द्वात्रिंशत्कोटिविस्तीर्णं तदर्धेन समुच्छ्रितम्॥ 54॥

विष्णुलोक से भी ऊँचा महान् श्रीमान् शिवपुर है जो बत्तीस करोड़ योजन में विस्तीर्ण हैं और इसकी आधी अर्थात् सोलह करोड़ योजन ऊँचाई लिए हैं।

सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वका(?गा)मिकैः।
अनेकाकार विन्यास रचनान्युपशोभितैः॥ 55॥

वहाँ अयुत सूर्यों की आभा जैसे विमान (मन्दिर) हैं जो सर्वत्र आ-जा सकते हैं (अथवा समस्त कामनाएँ पूरी करते हैं)। वे अनेकाकार हैं और विविध रचनाओं से शोभायमान हैं।

मणिमुक्तादिभिः दिव्यैः तप्तजम्बूनदप्रभैः।
सहस्त्रशतहोमैश्च तदर्धगुणभूमिकैः॥ 56॥

उनमें दिव्य मणि-मुक्तादि जड़े होते हैं और उनकी चमक तपे हुए सोने जैसी होती है। वे सैकड़ों-हजारों प्रकारेण विस्तार और उनके आधे मंजिल वाले होते हैं।

अप्सरोगणैसङ्कीर्णैः सर्ववाद्य समन्वितैः।
गीतनृत्तरसोपेतैरप्रमेय गुणान्वितैः[9]॥ 57॥

---

9. तुल.— कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते। तरुणादित्यसङ्काशे तप्तचारीकरप्रभे॥ वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपट्टशिलातले। जाम्बूनदमये दिव्ये नानाधातुविचित्रिते॥ नानाद्रुमलताकीर्णे चक्रवाकोपशोभिते। षट्पदोद्गीत बहुले धारासम्पात नादिते। मत्तक्रौञ्चमयूराणां नादैरुद्घृष्टकन्दरे॥ अप्सरोगणसङ्कीर्णे किंनरैश्चोपशोभिते। जीवजीवकजातीनां वीरुद्भिरुपशोभिते॥ कोकिलारावमधुरे सिद्धचारणसेविते। सौरभेयी निनादाढ्ये मेघस्तनितनिस्वने॥ विनायकभयोद्विग्नैः कुञ्जरैर्मुक्तकन्दरे। वीणावादित्रनिर्घोषैः श्रोत्रेन्द्रियमनोरमैः॥ दोलालम्बित सम्पाते वनितासङ्गसेविते। ध्वजैर्लम्बितदोलानां घण्टानां निनदाकुले। मुखमर्दलवादित्रर्बलिनां स्फोटितैस्तथा। क्रीडारवविचारणां निर्घोषः पूर्णमन्दिरे॥ हासैः सन्त्रासजननैर्विकरालमुखैस्तथा। देहगन्धैर्विचित्रैश्च प्रकीडित गणेश्वरैः॥ वज्रस्फटिक सोपानचित्रपट्टशिलातलैः। व्याघ्रसिंहमुखैश्चान्यैर्गजवाजिमुखैस्तथा॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वे अप्सराओं के गणों से घिरे हुए होते है। ये अप्सराएँ समस्त वाद्यों को लिए होती हैं। वे गीत, नृत आदि रसमय प्रस्तुतियों सहित अप्रमेय गुणों से युक्त होती हैं।

मनोजवैरसङ्ख्येयैः परिवार समन्वितैः।
बुद्बुदैरर्धचन्द्रैश्च घण्टाचामर भूषितैः॥ 58॥

वे अंसख्य कामदेवों के परिवारों के साथ अरबों अर्धचन्द्रों व घण्टा-चामरों से विभूषित होते हैं।

मणिमुक्तावितानैश्च छत्रैश्चर्मणि दण्डकैः।
सर्वरत्नचितैर्दिव्यैर्मुक्ताहारैश्च शोभितैः॥ 59॥

वे मणि-मुक्ता जड़े वितान व चमड़े के जड़े दण्डों वाले छत्रों सहित होते हैं और समस्त रत्नों से खचित और दिव्य मोतियों के हारों से शोभायमान होते हैं।

महासिंहासनैर्दिव्यैः सर्वरत्नविभूषितैः।
क्वचित् पुष्पगृहैर्व्याप्तमसङ्ख्येन गुणाधिकम्॥ 60॥

उसमें दिव्य महासिंहासन होते हैं जो समस्त रत्नों से विभूषित होते हैं। कहीं-कहीं पुष्पगृह भी व्याप्ति लिए होते हैं जो संख्या में कईगुना होते हैं।

सदापुष्पफलैर्वृक्षैः क्वचिद्व्याप्तं मनोरथैः।
पुष्पोद्यानैः मनोरम्यैर्दिव्यगन्धगुणान्वितैः॥ 61॥

उस शिवपुर में सदा-सर्वदा फलित रहने वाले पुष्पों और फलों के वृक्षों की व्याप्ति हैं जो मनोरथ पूरे करने वाले हैं। वहाँ के पुष्पोद्यान मनोरम और दिव्यगन्ध-गुणों से युक्त हैं।

अमृतस्यन्दिनीभिश्च नदीभिरुपशोभितम्।
हेमरत्नशिलावाप्यो सोपानैः स्फटिकप्रभैः॥ 62॥

वहाँ पर अमृत की नदियों जैसी सरिताओं की शोभा है और सोने तथा रत्नों की शिलाओं से जटित बावड़ियाँ हैं जिनकी सीढ़ियाँ स्फटिक के समान प्रभा वाली हैं।

सितरत्नासितैः पीतैः शुक्लवर्णैः सुगन्धिभिः।
पञ्चवर्णैस्तु मृदुभिः पद्मैः शोभन्ति काञ्चनैः॥ 63॥

विडालवदनश्चोग्रैः क्रोष्टुकाकारमूर्तिभिः। ह्रस्वदीर्घैः कृशैः स्थूलैर्लम्बोदरमहोदरैः॥ ह्रस्वजङ्घैश्च लम्बोष्ठैस्ताल जङ्घैस्तथा परैः। गोकर्णैरेककर्णैश्च महाकर्णैरकर्णकैः॥ बहुपादैर्महापादैरेकपादैरपादकैः। बहुशीर्षैर्महाशीर्षैरेकशीर्षैरशीर्षैकैः॥ बहुनेत्रैर्महानेत्रैरेकनेत्रैरनेत्रकैः तथा। एवंविधैर्महायोगी भूतैर्भूतपतिर्वृतः॥ वायु. 45, 30-43; ब्रह्माण्डपुराणे पूर्व. द्वितीय अनुषङ्ग. 25, 24-39

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

उनमें सफेद, असित रत्न, पीले और शुक्ल वर्ण सहित सुगन्ध लिए पाँच वर्णों के मुलायम कमल हैं जिनकी शोभा सुवर्ण जैसी होती है।

सदाविकसिताम्लानैः श्रीमद्भिः पञ्चहस्तकैः।
दशद्वादशहस्तैश्च विंशद्धस्तैश्च शोभनैः॥ 64॥

वे कमल सदा ही विकसित रहते हैं, कभी मुरझाते नहीं हैं। वे श्री के पुष्प पाँच हाथ विस्तार वाले हैं। कोई दस, कोई बारह तो कोई बीस हाथ विस्तार में शोभादायक लगते हैं।

नीलैर्मरकत प्रख्यैः पत्रैश्च सुमनोहरैः।
पूर्णानीलोत्पलैश्चान्यैः दीर्घिकाश्च क्वचित् क्वचित्॥ 65॥

नील मरकतमणि जैसे उनके सुमनोहर पत्र हैं। अन्यत्र पूरी तरह नीले कमलों से भरी-पूरी दीर्घिकाएँ (वापिकाएँ या लघु हौद) भी कहीं-कहीं हैं।

तत्रैव नानाप्राणिस्वरूपमाह —

सिंहव्याघ्रमृगैर्दिव्यै गजवाजिखराननैः।
गोमुखैरुष्ट्रवदनैः नानाविहगरूपिभिः॥ 66॥

वहाँ पर पाए जाने वाले प्राणियों में सिंह, व्याघ्र, दिव्यमृग, अश्व और गधों के मुख वाले, गाय के मुख वाले, ऊँट के मुख वाले और तरह-तरह के पक्षियों के मुख वाले हैं।

एकं वक्त्रैर्द्विवक्त्रैश्च बहुवक्त्रैरवक्त्रकैः।
एकपादैर्द्विपादैश्च बहुपादैरपादकैः॥ 67॥
एकहस्तैर्द्विहस्तैश्च बहुहस्तैरहस्तकैः।
एकनेत्रैर्द्विनेत्रैश्च बहुनेत्रैरनेत्रकैः॥ 68॥

यही नहीं, वहाँ एक मुख वाले, दो मुख वाले और अनेक मुख वाले तथा बिना मुख वाले प्राणी हैं। एक पाँव वाले, दो पाँव वाले, बहुत से पाँव वाले और बिना पाँव वाले भी हैं। एक हाथ वाले, दो हाथ वाले, बहुत से हाथ वाले और हाथ विहीन भी हैं। इसी प्रकार एक आँख वाले, दो आँख वाले, बहुत सी आँखों वाले और नेत्रविहीन प्राणी भी हैं।

वामनैर्जटिलैर्मुण्डैर्दीर्घग्रीवैर्महोदरैः ।
महाकायैर्महानासैर्महाकर्णैरकर्णकैः ॥ 69॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

नानारूपाकृतिधरैर्नानाभरणभूषितैः ।
नानावेशधरैर्दिव्यैः कामरूपैर्महाबलैः ॥ 70 ॥

इसी प्रकार बौने, जटाजूट वाले, घुटे हुए सिर वाले, लम्बी गर्दन वाले, बड़े पेट वाले, बड़े डीलडौल वाले, बड़ी नाक वाले, बड़े कानों वाले और बिना कानों वाले, तरह-तरह के आकार वाले, मनचाहे आकार धारण करने वाले और नाना आभूषणों से विभूषित, नाना प्रकार के दिव्य वेशों को पहने हुए और इच्छित रूप बनाने वाले महान बलवाले हैं।

नानाप्रवाह संयुक्तैर्नानाशास्त्रविशारदैः ।
असङ्ख्यातैर्गणैर्व्याप्तः स्त्रियश्चान्यैस्तथाविधाः ॥ 71 ॥

वहाँ पर तरह-तरह के प्रवाह के साथ नाना शास्त्रों के ज्ञानियों को साथ लिए असंख्यगणों से घिरे हुए और ऐसे ही अन्य अनेक स्त्रियों के साथ मिलते हैं।

कुब्जा वामनका दीर्घाः वरदेहा वराननाः ।
मुण्डाश्च विकटाः स्थूलाः कराला: विरनासिकाः ॥ 72 ॥
लम्बोदरा ह्रस्वभुजाः ह्रस्वजङ्घोरुजानुकाः ।
मृगेन्द्रवदनाश्चान्ये गजवाजिमुखास्तथा ॥ 73 ॥
ह्रस्वाकुञ्चितकेशाश्च सुन्दरा प्रियदर्शनाः ।
अन्याश्च कामरूपिण्यः कोटिशः परिचारकाः ॥ 74 ॥
बहिरन्तः प्रकाराश्च रमन्ते सर्वभूमिषु ।

उनमें से कोई कुब्जा (कूबड़ी), वामनका (बौनी), लम्बी, सुन्दर देहवाली और सुन्दर मुखड़े वाली, मुण्डित सिर वाली, भयानक रूप वाली, मोटी, डरावनी तो कोई बिना नासिका वाली हैं। कोई लम्बे पेट वाली है तो कोई छोटे हाथ वाली, कोई छोटी जंघा-उरु वाली, कोई सिंह जैसे मुख वाली तो कोई हाथी और घोड़े जैसे मुख वाली है। कोई ठिगनी, कोई घुंघराले केशों वाली सुन्दरी और प्रिय दीखने वाली है। अन्य इच्छानुसार रूप धरने वाली हैं। उनके साथ करोड़ों परिचारिकाएँ हैं जो बाहर और अन्तःपुर में काम करने वाली और चारों ओर रमण करने वाली हैं।

तत्र भूमिवर्णनमाह —

विचित्र भूमयस्तत्र वज्रवैडूर्य सप्रभाः ॥ 75 ॥
क्वचित्सुवर्ण सङ्काशाः क्वचिन्मरकतप्रभाः ।
स्फटिकाश्चेन्द्रनीलाश्च पद्मरागनिभाः क्वचित् ॥ 76 ॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वहाँ की भूमि बड़ी विचित्र है जो हीरे और वैडूर्य के समान दीप्तिमान है। कहीं-कहीं सुवर्ण के समान प्रभामय तो कहीं-कहीं मरकत या पन्ने जैसी आभा वाली है। कहीं पर स्फटिक-बिल्लौर तो कहीं इन्द्रनील और कहीं पर पद्मराग के समान आभा है।

चन्द्रमण्डलसङ्काशाः क्वचिदिन्दीवरप्रभाः।
अम्लानैः पञ्चवर्णैश्च महापद्मैरलङ्कृताः॥ 77॥
क्वचिच्चविविधैरन्यैः कुसुमैरुपशोभिताः।
एवं विचित्रवर्णानां भूमयोतीव शोभिताः॥ 78॥

कहीं पर चन्द्रमा के मण्डल जैसी आभा है तो कहीं पर इन्दीवर या कमल जैसी प्रभा है। कहीं पर उन पाँच वर्णों वाले महापद्मों की आभा है जो बिना मुरझाए खिले रहते हैं। कहीं पर अनेकानेक प्रकार के पुष्पों की शोभा दिखाई देती है— इस प्रकार विचित्र वर्णों वाली वहाँ की भूमियाँ-आलय के स्तर बहुत प्रकार से शोभायमान है।

तत्राङ्गनारूपवर्णनम् —

रमन्ते यासुस्तुमिताः स्त्रीभिः सार्धं शिवाश्रिताः।
नीलोत्पलदलश्यामाः पद्मपत्रायतेक्षणाः॥ 79॥
तप्तचामीकराकाराः शुद्धश्यामास्तथापराः।
प्रियङ्गु श्यामगौराश्च दिव्यगन्धामनोरमाः॥ 80॥

वहाँ पर स्तुति करती हुई देवस्त्रियाँ अपनी सेविकाओं के साथ रमण करती हुई टहलती हैं। वे नीलकमल जैसी श्यामवर्ण वाली हैं। उनकी आँखें पद्मपत्र जैसी विशालता लिए हैं। कोई तपे हुए सोने जैसी रचनाएँ लिए गौर वर्ण वाली और अन्य शुद्ध श्याम वर्ण वाली, कोई प्रियंगु के समान श्याम व गौरी स्त्रियाँ दिव्य गन्ध को लगाए मनोरमा लगती हैं।

कृशोदर्याः सुजघनाः स्वरूपाः सुप्रियः प्रियाः।
मत्तमातङ्गगामिन्यः स्तनभार विनम्रिताः॥ 81॥
मदालसाः सुकेशाश्च सर्वावयवशोभनाः।
चित्रवस्त्रपरीधानाः दिव्याभरणभूषिताः॥ 82॥
सल्लापोल्लापकुशलाः गीतवाद्यरतिप्रियाः।

उनमें से कोई पतली कमर वाली, कोई सुन्दर जँघाओं वाली, कोई अपने ही

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

रूप वाली अच्छी दिखाई देने वाली प्रिया है। कोई गजगामिनियाँ अपने विशाल स्तनों के भार से झुककर चलने वाली है। उनमें मदालसा और सुकेशा सभी अंगों-अवयवों से शोभायमान हैं। वे विचित्र प्रकारेण वस्त्र-पोशाकें और दिव्य आभूषणों से विभूषित हैं। बातचीत करने या आलाप सहित गीत और वाद्य वादन में कुशल तथा रतिप्रिया हैं।

दन्तां च वा रंजितगण्डदेशा स्वात्मप्रभाभावित गात्रयष्टयः।
स्वाभाविकैर्युपजनात्सुरतप्रभावै प्रहृष्टचित्तारमयन्ति नार्याः॥ 83॥

उनके दाँत और कपोल प्रदेश रंगे हैं। उनके मुख और छरहरी देहयष्टि अपनी ही प्रभा से प्रेरित-पूरित हैं। वे नारियाँ स्वभाव से ही उपजनों-नागरकों के प्रति अपनी सुरत क्रीड़ा के प्रभाव का हंस-हंस कर प्रदर्शित करती हैं और उनके चित्त में रमण करती हैं।

नृत्तप्रयोगैर्मधुरैश्च गेयैस्तत्रासिबन्धैर्विविधैश्च वाद्यैः।
हास्यैस्मितैर्लोचनविभ्रमैश्च क्रीडाप्रयोगैर्विविधैस्तथान्यैः॥ 84॥

वे नृत्त के प्रयोग करती हैं। मधुर गीतों का गान करती हैं। कमरबन्ध में नाना प्रकार के वाद्यों को लिए रहती हैं। जब-तब मुस्कान बिखेरती हैं, आँखें विभ्रमित करती हैं और तरह-तरह के क्रीड़ा-प्रयोग से अनुरंजन करती हैं।

इति सर्वगुणोपेतैः स्त्रीविशेषैर्मनोरमैः।
असङ्ख्यातैः पुरं व्याप्तमीश्वरस्य समन्ततः॥ 85॥

इस प्रकार के संमस्त गुणों और विशेषताओं से युक्त वे मनोरम स्त्रियाँ बड़ी संख्या में भगवान् शिव के पुर में चारों ही ओर व्याप्त हैं।

तस्माद्येन कृतो भद्रमीश्वरायतनं महत्।
शुद्धस्फटिक सङ्काशं स्थानमाद्यमुमापतेः॥ 86॥

इसलिए जिसने भी इस महान् शिवायतन को बनाया, उसने भद्र ही बनाया है। यह आद्यमुमापते अर्थात् आदि-उमापति का स्थान शुद्ध स्फटिक की आभा वाला है।

तत्रास्ति भगवानस्यः पूज्यमानो गणेश्वरैः।
सिद्धैश्च स्थान सम्प्राप्तैः ब्रह्मविष्ण्वग्निवायुभिः॥ 87॥

वहाँ पर भगवान् शिव स्वयं निवास करते हैं और गणेश्वरों के द्वारा पूजे जाते हैं। सिद्धों द्वारा पूजनीय स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु, अग्निदेव, वायुदेव आदि आते रहते हैं।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ईश्वरायतनस्याग्रे श्रीमान्धर्मवृषस्थितः।
यस्मिन् वृष परः सर्वतः समस्त गोमातरस्तथा॥ 88॥

ईश्वर के निवास के आगे श्रीमान् धर्मवृष अवस्थित है तथा इस वृष के सर्वतः निर्भर हैं गोमाताएँ।

गोलोकशिवलोकश्चाप्येक एव ततः स्मृताः।
महिमा रुद्रलोकस्य गोलोकस्यापि तद्गुणाः॥ 89॥
नन्दाभद्रा च सुरभिः सुशीलासर्वकामदा।
इति गोमातरः पञ्च शिवलोके व्यवस्थिता॥ 90॥

गोलोक और शिवलोक दोनों एक है, यह जानना चाहिए। इनमें रुद्रलोक की महिमा गोलोक की अपेक्षा अधिक गुना है। नन्दा, भद्रा, सुरभि, सुशीला और सर्वकामदा[10]— ये पाँच गौमाताएँ शिवलोक में विराजित रहती हैं।

एता समस्ता धात्र्या सर्वलोकस्य मातरः।
तर्पयन्ति जगत्कृत्स्नं दिव्यमात्मरसामृतः॥ 91॥

ये गायें सभी की धाय अर्थात् धात्री (दूध पिलाने वाली) हैं और सर्वलोक की माताएँ हैं। ये अपने दूध रूपी अमृतरस से सारे ही जगत को तृप्त करती हैं।

तपतीर्य शिवस्थानादीश्वरेच्छावशानुगाः।
उपकाराय सर्वेषामिमं लोकं समाश्रिताः॥ 92॥

ये सभी शिवस्थान में ईश्वर की इच्छा की अनुगमन करती हुई तपस्या कर रही हैं और इस लोक में रहती हुई सभी के उपकार करने के लिए समाश्रित हैं।

तृणानि खादन्ति वसन्त्यरण्ये पिबन्ति तोयान्यपरिगृहाणि।
द्रुह्यन्ति वाह्यन्ति पुनन्ति पापं गवां रसैर्जीवति जीवलोकः[11]॥ 93॥

ये केवल घास खाती हैं, अरण्य में रहती हैं, पानी पीती हैं और अपरिग्रह व्रत वाली हैं। ये दूध देती हैं, वाहन देती हैं, पवित्र करती हैं। गोरस पिलाती हैं जिससे यह जीवलोक जीवित रहता है।

---

10. शिवपुराणे— ततः ऊर्ध्वं न लोकाश्च गोलोकस्तत्समीपतः। गोमातरः सुशीलाख्यस्तत्र सन्ति शिवप्रियाः॥ शिव. उमा. 19, 40; लिङ्गपुराणे— शिवभक्ता तु या नन्दा सा मे पापं व्यपोहतु॥ भद्रा भद्रपदा देवी शिवलोके व्यवस्थिता। माता गवां महाभागा सा मे पापं व्यपोहतु॥ सुरभि सर्वतोभद्रा सर्वपापप्रणाशनी। रुद्रपूजारता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु॥ सुशीला शीलसम्पन्ना श्रीप्रदा शिवभाविता। शिवलोके स्थिता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु॥ लिङ्ग. पूर्व. 82, 88-91

11. तुल. — चतुवर्गचिन्तामणौ दानखण्डे अध्या. 7, पृष्ठ 446

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

कुतस्तेषां हि पापानि येषां गृहमलङ्कृतम्।
सततं बालवत्साभिः गोमयश्रीभिरिव स्वयम्॥ 94॥

उन व्यक्तियों के पाप कैसे रह सकते हैं जिनके घरों को इन गायों ने अलंकृत कर रखा है[12] और जहाँ पर लगातार छोटे-छोटे बाल-बछड़े होते हैं। गोमय में स्वयं श्री लक्ष्मी का निवास रहता है।

ये कुर्वन्ति गवां भक्तिं तृणतोय प्रदानतः।
प्राण संगोपणाद्यैश्च गवां लोकं व्रजन्ति ते॥ 95॥

जो व्यक्ति जल और घास के द्वारा गायों की भक्ति करता है तथा उनके प्राणों की सुरक्षा के लिए विविध उपाय करता है[13], वह अन्त में गोलोक को जाता है।

तृणतोय प्रदेशेषु नीत्वा यत्रैव गोमातरम्।
ये रक्षन्ति सदा गोपाः शिवलोकं व्रजन्ति ते॥ 96॥

जो प्रदेश घास और जल से परिपूर्ण हो और जहाँ गोमाताएँ हों, ऐसे प्रदेश की जो ग्वालबाल सर्वदा सुरक्षा सुनिश्चित करता है, वह शिवलोक को जाता है।

ये शिवाय गुरोर्वापि गां प्रयच्छन्ति भक्तितः।
ते मोदन्ते शिवलोके भोगैः कल्पायुतं नरा॥ 97॥

जो भगवान् शिव अथवा गुरु के प्रति भक्तिपूर्वक गाय का दान करता है, वह शिवलोक में प्राप्त भोगों का अयुत काल तक उपभोग करता है।

निवेद्य गोरसं भक्त्या शिवाय शिवयोगिने।
सर्वान् लोकानवाप्नोति शिवलोके महीयते॥ 98॥

जो गोरस (दूध) का भक्तिपूर्वक शिव और शिवयोगियों को नैवेद्य प्रदान करता है, वह लोकों के सभी सुखों का लाभ उठाकर अन्त में शिवलोक को जाता है।

इहलोकं सुखार्थाय परलोक सुखाय च।
सर्वस्वेनापि गास्तस्मादधीतः विपश्चितः॥ 99॥

इस लोक में सुख के लिए और परलोक में सुख के लिए सर्वस्व गाय ही है। इसलिए बुद्धिमान लोग उसकी सेवा करते हैं।

---

12. गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः। तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान्॥ गोषु भक्तश्च लभते यद् यदिच्छति मानवः। स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च काममवाप्नुयुः॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नुयात्। धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्॥ विद्यार्थी चाप्नुयाद् विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात् सुखम्। न किञ्चिद्दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत॥ महाभारत अनु. 81, 33; अनु. 83, 50-52

13. तुल. — गावो देयाः सदा रक्ष्याः पाल्याः पोष्याश्च सर्वदा। बृहत्पराशरस्मृति 5, 23

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

गोसुभाषितम् —

अहो! सुमहदाश्चर्यं महोसुष्ठु सुभाषितम्।
यत् पवित्रं चामृतं गोरसं पुष्टिविवर्धनम्॥ 100॥

अहो! यह महान् आश्चर्य है और महान् सुन्दर सुभाषित है कि यह गोरस दूध पवित्र है, अमृत है, पुष्टिविवर्धन है।

गोमात्रनिर्जितो लोकोमृष्टाशागोमलार्जिताः।
गोमात्रनिर्जितं स्वर्गं समस्तं गोमयं जगतम्॥ 101॥
गावो धनं मनुष्याणां गवां च धनमुत्तमम्।
गावो येषां गृहेतस्युः अबन्धुरिव तद्गृहम्॥ 102॥

मात्र गाय ने लोक को जीत रखा है। इसके गोबर ने सभी लोक स्वच्छ कर दिए हैं। मात्र गो ने स्वर्ग को जीत रखा है। यह समस्त जगत गोमय है और गायों का ही स्वरूप है। गायें मनुष्य का धन हैं, गायें ही उत्तम धन है। जिसके घर में गाय नहीं है, वह व्यक्ति ऐसा है मानो उसके घर में भाई-बन्धु ही नहीं है।

तुष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं दत्तास्तु गावस्त्रिदिवन्नयन्ति।
संरक्षिताश्चोपनयन्ति वित्तं गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित्[14]॥ 103॥

गायों को सन्तुष्ट करने मात्र से पापों का विनाश होता है। गायदान करने से ब्रह्मा, विष्णु और शिव— तीनों देवों को नमन हो जाता है। गायों के संरक्षण से वित्त की सुरक्षा होती है अतएव गायों के समान अन्य कोई सम्पत्ति नहीं है।

शष्पसमश्नाति ददाति नित्यं पापापहं मित्रविवर्धनं च।
स एव साम्यं परिभुज्यते व गोभिर्न तुल्यं शिवमस्ति किञ्चित्[15]॥ 104॥

जो गायों को नित्य नवीन घास खिलाते हैं वह उनके पापों का विनाश करती है और मित्रों का संवर्धन करती हैं। ऐसे गोपालक जन ही समता के साथ रहकर भोगों का लाभ उठाते हैं। गायों के समान कल्याणकारक कुछ भी नहीं है।

तृणानि शुष्काणि वन चरित्वा पीत्वापि तोयान्यमृतं श्रवन्ति।
यद्गोमयाद्याश्च पुनन्ति लोकान्गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित्[16]॥ 105॥

गायें वन में सूखे तिनके चरकर और पानी पीकर भी अमृत का स्राव करती

---

14. तुल. — चतुवर्ग्गचिन्तामणौ दानखण्डे अध्या. 7, पृष्ठ 447
15. तुल. — चतुवर्ग्गचिन्तामणौ दानखण्डे अध्या. 7, तत्रैव
16. तुल. — चतुवर्ग्गचिन्तामणौ दानखण्डे अध्या. 7, तत्रैव

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

हैं। वह गोमय आदि से लोकों को पवित्रतम करती हैं। सचमुच गाय के समान अन्य कोई कल्याणकारक नहीं है।

सदा च लोके परमं पवित्रं गवां रसं पुष्टिविवर्धनञ्च।
अग्रातियुक्ताविव धान्ययुक्तमिष्टं शिवं ये शिवमल्पयत्नाः॥ 106॥

गाय लोक में सदा ही परम पवित्र है। गाय कर दूध पुष्टिवर्धन करने वाला है। वह अपने जीवनचक्र में जूए में संलग्न धान्यों से युक्त मीठी है। वह कल्याणकारी है और पालन के अल्पप्रयत्न से ही शिव तुल्य (कल्याणकारी) हैं।

गोशालानिर्माणं सफलमाह —

गोमातृशालां यः कुर्यात्सुदृढामिष्टामयम्।
मृत्पिण्डकाष्ठाकुड्याभ्यां सार्गलान्विताम्॥ 107॥

जो व्यक्ति गोशाला[17] बनवाना चाहे, उसको निर्माणकार्य में सुदृढ़ ईंटों का प्रयोग करना चाहिए। मिट्टी के पिण्डों अथवा लकड़ियों से बाड़ या कोट बनाकर उसको (द्वार को) काठ की कुण्डी सहित बनाना चाहिए।

सापिधानैर्गवाक्षैश्च अलिन्दः समलङ्कृतम्।
पश्चाद्रुमद्रैवकर्तव्यं उच्चैर्देवगवाक्षकम्॥ 108॥

यही नहीं, उसको बहुत से कक्षों, गवाक्ष, अलिन्द आदि से अलंकृत करना चाहिए। उसके पीछे वृक्ष व पत्थरों की भित्ति हों और उसमें ऊँचाई पर देव गवाक्षों की रचना करनी चाहिए।

वक्रैश्च वंशविद्यत्तैः कोटिं कृत्वा समं दृढम्।
तमधः प्रदातव्यं येन मूत्रमधो व्रजेत्[18]॥ 109॥

---

17. इत्यर्थे भोजराजीय वास्तुशास्त्रमतेन— वृषं तुरगशालासु गोशालागोकुलेषु च। गजाश्ववृषशालासु सिंहं यत्नेन वर्जयेत्॥ अर्थात्—अश्वशाला, गोशाला और गोकुलों का निर्माण करना हो तो भूमिपरिग्रहणावसर पर गणितसम्मत वृष नामक आय देय है। गजशाला, अश्वशाला और वृष-गोशाला आदि में सिंह संज्ञक आय का प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए। समराङ्गणसूत्रधार 26, 32
गोस्थानस्वरूपमाह— गोव्रजं गोरुतं रम्यं गोपनारीभिरावृतम्। हम्भारवैश्च वत्सानां सर्वतः कृतनिःस्वनम्॥ शकटावर्तविपुलं कण्टकीवाटसङ्कुलम्। पर्यन्तेष्वावृतं वन्यैर्वृहद्भिः पतितैर्द्रुमैः॥ वत्सानां रोपितैः कीलैर्दामभिश्च विभूषितम्। करीषाकीर्णवसुधं कटच्छन्नकुटीमठम्॥ क्षेम्यप्रचारबहुलं हृष्टपुष्टजनावृतम्। दामनीपाशबहुलं गर्गरोद्गार निःस्वनम्॥ तक्रनिःस्रावबहुलं दधिमण्डार्द्रमृत्तिकम्। मन्थानवलोयाद्गारैर्गोपीनां जनितस्वनम्॥ काकपक्षधरैर्बालैः गोपालक्रीडनाकुलम्। सार्गलद्वारगोवाटं मध्ये गोस्थान सङ्कुलम्॥ सर्पिषां पच्यमानेन सुरभीकृतमारुतम्। नील पीताम्बराभिश्च तरुणीभिरलङ्कृतम्॥ हरिवंश. विष्णु. 5, 22-28

18. स्कन्दपुराणे— यः कारयित्वा सुदृढं विस्तीर्णं सुसमस्थलं। शीतवातातपहरं सिकताभिर्भृदुत्तरम्॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इसके लिए बाँके बाँसों को लाकर उनकी भुजाओं पर अन्य बाँसों को समान रूप से लगाकर छबना बनाएँ। उनके नीचे की ओर मूत्र के प्रवाह के लिए प्रणालमार्ग की रचना करें।

गोशालाप्रबन्धमाह —

गोमयं तद्गवाकैश्च क्षिप्त्वा दूरं पुनर्नयेत्।
अवकीर्याम्भसा सर्वं धूपयित्वा समन्ततः॥ 110॥

ऐसी गोशाला से गायों के गोबर को लेकर दूर डालने का प्रबन्ध करना चाहिए। इसके साथ ही वहाँ पर जल का छिड़काव कर चारों ओर सर्वविध धूप करनी चाहिए।

कृशा वृद्धातुराणां च पृथक् पाकं प्रकल्पयेत्।
हित्वा च बालवत्सानामितरेषां पृथक् भवेत्॥ 111॥

गोशाला में दुबली, वृद्ध और बीमार गायों को खिलाने के लिए पाक का पृथक् प्रबन्ध करना चाहिए। छोटे बछड़ों के लिए हितकारी भोजन भी पृथक् ही रखना चाहिए।

दुग्ध्या सुस्वाद भद्राणां निवासश्च प्रकल्पयेत्।
परिधवन्ति सौख्येन वसन्ति च रमन्ति च॥ 112॥

उन बछड़ों के स्वादिष्ट दूध पीने के लिए भद्रों, निवासों की रचना की जानी चाहिए। वहाँ पर वे दौड़ सकें, सुखपूर्वक रह सकें और उछल-कूद कर सकें।

तत्र पूजाकार्यमाह —

ब्रह्माणमीश्वरं विष्णु गोशालायां सदा यजेत्।
विन्यस्य पूर्ववदनं वशात्कुर्ये गवाक्षरे॥ 113॥

गोशाला में ब्रह्मा, शिव और विष्णु की सदा पूजा करनी चाहिए। वहाँ पूर्वाभिमुख होकर बैठें और गाय को गोशाला में जाते हुए देखना चाहिए।

शरीरकण्डूतिहरं स्तम्भसम्भारसङ्कुलम्। भक्ष्यप्रकल्पितानेक तृणाधारदण्डकम्॥ अतीक्ष्णाग्रसुखस्पर्शदामनी शङ्कुसङ्कुलम्। हर्तुं धर्मौश्च दंशादीन् प्रकृष्टासनमाश्रयम्। कृतकूपनिपानादि जलाशयनिवेशनम्। अवकरतिरस्कारकारिकर्म्मकरान्वितम्॥ तृणोदकादि निर्वाहक्षमकल्पितवृत्तिकम्। एवं विधं महारम्य प्राकारद्वारभूषितम्। कृत्वा गृहं गवामर्थे यः पर्व्वणि निवेदयेत्॥ स राजराजो भवति भाग्यारोग्यसमन्वितः। सुरभीलोकमासाद्य दिव्यभोगसमन्वितम्॥ क्रीडित्वा सुचिरं कालं ततोमानुष्यमागतः। धनरूपसमायुक्तः कुले महति जायते॥ दानखण्डे अध्या. 8, पृष्ठ 664-665

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

सिंहारूढां महादुर्गां पञ्चसन्घाति मातरम्।
विघ्नेशं सोमनन्दी च पूर्वादभ्यर्च्य विन्यसेत्॥ 114॥

वहाँ पर सिंहारूढ़ महादुर्गा, पंचसंघाती (पांच संघों की माता नन्दा, भद्रादि), विघ्नेश या विनायक, सोम, नन्दी को पूर्वाभिमुख बैठकर पूजना चाहिए।

नदीतटद्वयाश्वत्थबिल्वं वल्मीकमृत्तिकाः।
पञ्चगव्येन संयोज्य देवात्पिण्डे प्रकल्पेत्॥ 115॥

प्रायः दो नदियों के तटों, पीपलमूल, बिल्ववृक्ष के मूल और बाँबी की मृत्तिका लाकर पंचगव्य मिलाकर देवताओं के पिण्डों (पिण्डोलों) का सृजन करना चाहिए।

द्वारे गवां गवाक्षाभ्यां मृदाकार्यौ सुशोभनौ।
सन्धीश्वर महाकालौ वृषंच्चोच्चैर्बहिः स्थितम्॥ 116॥

गोशाला के द्वार पर गायों और गवाक्षों को मिट्टी के सुन्दर कार्य के साथ बनाएँ। सन्धीश्वर महाकाल के बड़े-बड़े बैलों को गोशाला के बाहर ही रखना चाहिए।

गोप्रवेशकार्यमाह —

ईदृशः सवृषेन्द्रः स्यात् सर्वानय विशोभनौ।
प्रीतौ दर्शनभावेन गवां स्युस्तादृशाः प्रजाः॥ 117॥

इसी तरह गोशाला में वृषेन्द्रों को सर्वविध सुन्दर रूप में लाने का प्रबन्ध करना चाहिए। उनको प्रेमभाव से गायों और अपनी प्रजा को अपने जैसी ही दिखाएँ।

अष्टम्यास्तम समस्तकृत्वा भोजनं च प्रकामतः।
स्वस्तिवाक्यं ततश्चाग्रे प्रधानानि निवेशयेत्॥ 118॥

अष्टमी के दिन उनको नमस्कार करके यथाकाम प्रेम से भोजन करवाएँ। वहाँ स्वस्तिवाचन करें और प्रधान गायों को आगे बढ़ाएँ।

गोशालानिर्माणफलम् —

इति यः कारयेद्भक्त्या गोमातृगृहमीदृशम्।
स विधूयाशु पापानि शिवलोके महीयते[19]॥ 119॥

---

19. तथा च महाभारते— गोकुलस्य तृषार्त्तस्य जलान्ते वसुधाधिप। उत्पादयति यो विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। कृत्वा गवार्थे शरणं शीत-वात-क्षमं महत्। आसप्तमन्तारयति कुलं भरतसत्तम॥ चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे अध्या. 13, पृष्ठ 963

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक गोमाताओं के लिए गोशाला का निवेश करता है, वह अपने समस्त पापों को धोकर शिवलोक को प्राप्त होता है।

बालसूर्य प्रतीकाशैः सर्वकाम समन्वितैः।
काञ्चनैर्भवनैः दिव्यैः सर्वरत्नोपशोभिते॥ 120॥
सप्तभूमैः पुरवरैः शत सङ्ख्यैर्यथेप्सितैः।
प्रत्येकमपि दिव्येन स्त्रीसहस्त्रेण संयुतैः॥ 121॥
एतैरन्यैश्च विपुलैर्महाभोगैर्यथेप्सितैः।
क्रीडते तत्र पुण्यात्मा यावदाचन्द्रतारकम्॥ 122॥

वह शिवलोक उदित होते हुए सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाशमान और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। वह दिव्य सोने के भवनों वाला और समस्त रत्नों से शोभायमान है। वहाँ सात-सात भूमिकाओं वाले सैकड़ों भवनों के बड़े-बड़े सुन्दर पुर हैं। उनमें से प्रत्येक पुर हजारों दिव्य स्त्रियों से भरे-पूरे होते हैं। उक्त समस्त वैभव सहित अन्य मनचाहे भोगों को वह पुण्यात्मा भोगता है और वहाँ सूर्य, चन्द्रमा और तारों की आयु तक क्रीड़ारत रहता है।

ततः कालात्परिभ्रष्टः क्रमाल्लोकमवाप्नुयात्।
हरिब्रह्मादि लोकेषु तेदन्ते मेरुमूर्धनि॥ 123॥
तस्मादपि च्युत कालात् प्राप्नुयादुत्तरान् कुरुन्।
ततो भारतवर्षेऽस्मिन् राजा भवति धार्मिकः॥ 124॥

कालक्रम से वह पुण्यात्मा पुण्य के क्षीण होने पर नाना लोकों को क्रमशः प्राप्त होता है। वह विष्णुलोक, ब्रह्मलोक आदि से होता हुआ मेरुपर्वत के शिखर पर आता है। वहाँ से भी कालानुसार च्युत होकर उत्तरकुरु क्षेत्र में आता है और फिर इस भारतवर्ष में धार्मिक राजा होता है।

स्वरूप अवलम्बगः श्रीमान्सर्वकाम समन्वितः।
ततः पाकोपासनयोज्य पुण्यमायाति ते पुनः॥ 125॥

वह श्रीमान् सुन्दर स्वरूप पाता है, अन्यजनों का सहारा बनता है और समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है। वहाँ अपनी उपासना के फलीभूत होने पर उनके पुण्य में वृद्धि होती है और वे पुनः पुण्याढ्य होते हैं।

यस्मिन् ग्रीष्मे गवां गोष्ठे जलाशय समीपतः।
कुर्याद्वृक्षाकुलस्थाने तत्रैकात्मा चिरं नयेत्॥ 126॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

गवामेकत्र सं[तिष्ठन्ति सवत्सं ग्वालश्चिरम्]।
तस्मादेकत्र वसतिश्चिरं ग्रीष्म प्रकल्पयेत्॥ 127॥

जो ग्रीष्मकाल के संकट को जानकर जलाशय के निकट गोष्ठ या गोशाला बनवाता है और वहाँ पर वृक्षों के समूह का विकास करके गायों को चिरकाल तक रखने का प्रयास करता है, वहाँ गायों के समूह सहित बछड़े और ग्वाल-बाल रहते (यथातृष्णा जल पीते है) तथा कठिन ग्रीष्मकाल को वहीं व्यतीत करते हैं।

गोशालाशोधनफलमाह —

नान्यस्थानं यदा पश्येत् गवां ग्रीष्म सुशोभनम्।
पूर्वमेव गवां स्थानं शोध्य यत्नाद्दिने दिने॥ 128॥

यदि ग्रीष्मकाल में गायों के लिए अन्य कोई भी उपयुक्त सुन्दर स्थान नहीं मिलता हो तो पूर्वोक्त गोशाला को ही प्रयास करके दिन-ब-दिन शोधित-प्रबन्धित रखना चाहिए।

विशोधयेत गोवासमात्मीयं वा परस्य वा।
सम्प्रदाय गवां सौख्यं शिवलोके महीयते॥ 129॥

अपने और दूसरे स्थान अर्थात् पास-पड़ौस की गोशाला को नियमित विशोधित करके गायों को सुख पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने वाला शिवलोक को प्राप्त होता है।

दुःखं कृत्वा लभेद्दुःखं सुखं कृत्वा सुखं लभेत्।
तस्माद्धित सर्वसत्त्वेषु सुखार्थी सुखमाचरेत्॥ 130॥

यह जानना चाहिए कि दुखी करने से दुःख मिलेगा और सुखी करने पर सुख मिलता है। इसलिए समस्त सत्त्व-प्राणियों के हित में सुख चाहने वाले को सुख के उपायों का आचरण ही करना चाहिए।

अप्येक क्षणमुत्पाद्य सुखमार्तस्य देहिनः।
प्राप्नोति सुमहत् सौख्यमब्दकोटि शिवपुरे॥ 131॥

एक क्षण के लिए भी जो किसी दुखी प्राणी के दुःख को दूर करने का प्रयास करता है, वह कोटि वर्ष पर्यन्त शिवपुर में महान् सुखों को प्राप्त करता है।

गोचारणविधिमाह —

तस्माद्गां चारयेद् ग्रीष्मे जलवृक्षतृणान्विते।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वर्षासृकर्दमे स्थाने गिरिपृष्ठ समीपतः॥ 132॥

अतएव गायों को यदि ग्रीष्मकाल हो तो जल के समीप जहाँ वृक्ष और घास-पूस वाली भूमि हो, वहाँ चराना चाहिए। वर्षा की अधिकता हो और भूमि पर कीचड़ आदि हो तो उनको निकट की पहाड़ी पर ले जाकर चराना चाहिए।

हेमन्ते यः दिवाकाले रात्रो च प्रसरन्नयेत्।
निस्तृणेऽपि गवां स्थाने वसदेरण धृतिर्भवेत्॥ 133॥

हेमन्त ऋतु हो तब दिन और रात्रि के समय में उनको यत्न से (ढाँककर आदि प्रयत्नों सहित) रखें। जहाँ पर घास न होती हो, ऐसी गोचर भूमि पर उनको ठहराने पर उनको धैर्य मिलता है।

ग्रीष्मे निवासयेद्गां च स्वादुतोयं महद्धितः।
क्षारभूस्सलिलं क्षारं ग्रीष्मादन्यत्र शोभितम्॥ 134॥

ग्रीष्मकाल में गायों को स्वादिष्ट जलस्थल के पास ठहराना महान हितकर होता है। खारे जल वाली भूमि तो ग्रीष्मकाल के सिवाय ही ठीक रहती है।

एवं यः पालयन् गान्तु सगोपश्चारयातसः।
सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ 135॥

इसी प्रकार जो गायों का पालन-गोचारण का कार्य करता है, वह सब पापों से विनिर्मुक्त होकर अन्त में शिवलोक को प्राप्त होता है।

यो स्थापयेत् स्तम्भास्सु गोष्ठमध्ये क्वचित् क्वचित्।
कण्डूनार्थं निखनेत् शिवलोकं स गच्छति॥ 136॥

जो व्यक्ति गोशाला के बीच गायों के खुजलाने के लिए कहीं-कहीं स्तम्भों (खुजाल-खम्भों) की स्थापना करते हैं, वे शिवलोक में जाते हैं।

गोवत्सप्रतिकर्त्तव्यमाह —

अनाथान्दुर्बलास्वस्थान् रोगादि परिपीडितान्।
मृतवत्साल्पदुग्धाश्च मातृभिः परिवर्जितान्॥ 137॥
स्वकीयान् परकीयान्वा वत्सान्यः परिपालयेत्।
विधूय सर्वपापानि शिवलोके महीयते॥ 138॥

अनाथ, दुर्बल, अस्वस्थ और रोगादि से पीड़ित, जिसके बछड़े मर गए हों, जो थोड़ा दूध देने वाली हों ऐसी गायों और वे बछड़े जो माता से बिछड़ गए हों, अपने

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

और दूसरों के पालित बछड़ों का परिपालन करना चाहिए— इस उपक्रम को करने वाले अपने समस्त पापों को धो डालते हैं और अन्त में शिवलोक को प्राप्त होते हैं।

दुर्बलोद्वहते प्राज्ञान् ये वत्सान् क्षीरजीविनः।
निष्पीडयन्ति पापिष्ठाः पच्यन्ते नरकेषु ते॥ 139॥

जो समझदार होकर भी दुर्बल और दूध पीते बछड़ों को वाहन में जोत देते हैं और जो पापी उनको इस तरह की पीड़ा पहुँचाते हैं, वे अन्त में नरक में पकाए जाते हैं।

निश्वासन्ति गृहे येषां दह्यमाना क्षुधाग्निना।
निर्दघ्नुर्निर्दयैर्वत्साः पच्यन्ते नरकेषु ते॥ 140॥

जिस घर में ऐसे दुखी और भूख की अग्नि में जलते हुए बछड़े निश्वास छोड़ते हैं और जहाँ बिना दूध पीये बछड़े रहते हैं, वे लोग भी नरक की आग में पकाए जाएँगे।

विक्रोशन्तः क्षुधाविष्टाः शुष्ककण्ठोतालुकाः।
नरकाग्नौ प्रयच्छन्ति वर्षकोटिशतं नराः॥ 141॥

भूख से तंग आए, दुःख से सूखे कण्ठ और तालु वाले ऐसे बछड़ों के कोसने से ऐसे दुष्ट लोग करोड़ों वर्षों तक नरकाग्नि में पड़े रहेंगे।

नरकेभ्यस्तु विर्मुक्ताः सावशेषेण कर्मणा।
यत्र तत्राभि जायन्ते तत्र तत्र बुभुक्षिताः॥ 142॥
योनि कोटि सहस्त्रेषु परिक्रम्य क्रमात् पुनः।
मनुष्ययोनौ जायन्ते दरिद्राः परतन्त्रकाः॥ 143॥

ऐसे लोग नरक की यन्त्रणा को भोगकर भी अपने शेष कर्मों के अनुसार जहाँ कहीं जन्म लेते हैं, वहाँ-वहाँ वे भूखे ही रहते हैं और करोड़ों योनियों में घूमकर भी जब वे मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं तो वहाँ भी वे दरिद्र और परतन्त्र होकर ही रहते हैं।

तस्मान्नपीड्येद् वत्सान् नपमानयेत्तुतम्।
एकवारं दुहेत् क्षीरं न दुहेत् पुनः पुनः॥ 144॥

इसलिए कभी भी बछड़ों को पीड़ा नहीं पहुँचाएँ और उनका अपमान नहीं करें। गाय को एक बार दूह लेने के बाद उसे बार-बार नहीं दूहे, बछड़े के लिए भी दूध छोड़ देना चाहिए।

द्वौ मासौ न दुहेच्चैव चतुर्मास तदर्धकम्।
तस्माच्च वालवत्सानां बलात्सतु वर्धयेत्॥ 145॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जब तक बछड़ा दो मास का हो, तब तक गाय का दोहन नहीं करें। जब बछड़ा चार मास का हो जाए तो गाय को आधा ही दूहना चाहिए। इस तरह बाल बछड़ों का बल बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

[सर्वयत्नेन रक्षयेत् वत्स क्षीरणी गवां[20]] समम्।
मधुनापनयं धूपं कुर्यात् कण्डूयनं तथा॥ 146॥

बछड़ों का सर्वयत्नतया वैसे ही पालन करना चाहिए जैसे कि दूधारू गाय उनका पोषण करती है। उनको मधु मिश्रित धूप दें और यथावसर खुर्रा करें अर्थात् खुजलाएँ।

कृमिरोगक्षुधादिभ्यः सर्वयत्नेन पालयेत्।
य एवं बालवत्सानामुपकाराय वर्तते॥ 147॥
इहाप्नोति धनं सौख्यं परत्र च शिवं पुरम्।

उनको कृमि पड़ने और भूख आदि से सर्वयत्नपूर्वक बचाकर पालन करना चाहिए। जो व्यक्ति छोटे बछड़ों के प्रति इस प्रकार उपकार करते हैं, वे इस लोक में तो धन और सुख पाते हैं, परलोकगमन पर शिवपुर को जाते हैं।

आहारगृहनिर्माणोद्धारफलमाह —

ग्रामं भोक्तृगृहं प्राप्तं नृपतिं यः समुद्धरेत्॥ 148॥
कुलैकविंशमुत्तार्य[21] शिवलोके महीयते।

जो ग्राम में आहार के लिए भोजनशाला आदि बनाते हैं अथवा जीर्ण भोजगृह का जीर्णोद्धार करते हैं, वे राजा अपने इक्कीस कुलों को तार देते हैं और फिर शिवलोक को प्राप्त होते हैं।

यस्तु द्विजः प्रयत्नेन कामभोज्यान् समुद्धरेत्॥ 149॥
प्रतिग्रहादुपायेन स शिवलोके महीयते।

जो द्विजों के काम्य-भोजन के प्रबन्ध का प्रयत्नपूर्वक उद्धार करते हैं और दान देने के उपाय करते हैं, वे अन्त में शिवलोक को जाते हैं।

अथ गोदानप्रसङ्गेन वृषभदानमप्यभिधीयते —

यः प्रदद्यात् सुधवलं शिवं ध्यात्वा महावृषम्॥ 150॥

---

20. तुल.— बृहस्पतिस्मृति 1, 14

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

विस्तीर्णोरस्कमुच्चं च समुन्नत बृहत् कटिम्।
ऊर्ध्वकूच्छतभृङ्गाग्रमल्पशृङ्गं नरं तथा॥ 151॥

जो व्यक्ति बैल का दान करे, वह भगवान् शिव का ध्यान करके अच्छे सफेद महावृषभ का दान करे। उक्त वृषभ विस्तीर्ण उरु वाला, ऊँचा, उठी हुई बड़ी कमर, उन्नत कूबड़ वाला और अभंग पतले सींग वाला नर होना चाहिए।

स्थूलाग्रशृङ्गयुक्तं वा सर्वावयव शोभितम्।
रक्तचित्रैश्च कुसुमैः कङ्कुमायैश्च वर्णकैः॥ 152॥

वह आगे की ओर से स्थूल सींग वाला हो। सभी अंगों की दृष्टि से शोभाजनक हो। लाल रंग के पुष्पों जैसा और कुमकुम के समान वर्ण वाला होना चाहिए।

यथाशोभं समारुह्यविभवै तं नियोजयेत्।
वृषं मणिरत्नोपेतं[21] घण्टाचामरकान्वितम्॥ 153॥

उसको शोभा की अभिवृद्धि करने वाले की तरह सजाकर शिव के वैभव में रखना चाहिए। उस बैल को मणिरत्नों, घण्टा, चामर आदि से सजाना चाहिए।

स्वस्तिकैरर्धचन्द्रैश्च नानारत्नैश्च शोभितम्।
अष्टाङ्गुल प्रविस्तीर्णं हेमपट्ट विभूषितम्॥ 154॥

उसको स्वस्तिक, अर्धचन्द्रमा और नाना रत्नों से सजाना चाहिए। उस पर आठ अंगुल के विस्तार वाला सुवर्णपट्ट शोभायमान हो।

राजतं चर्मणा वापि मालामुरसि विन्यसेत्।
तद्विधापृष्ठमालां च पुच्छान्तररुकुक्षाश्रिताम्॥ 155॥

चाँदी अथवा चर्म से गूँथी माला उसके गले में पहनाई जानी चाहिए। इसी प्रकार से उसकी पीठ की माला भी पूँछ तक कुक्षी के आश्रय से धारण करवाएँ।

नानाभरण संयुक्तामुदारास्तु प्रलम्बिनीम्।
हेमराजतराशिं वा नानारत्नोपशोभितम्॥ 156॥

विभिन्न प्रकार के आभूषणों सहित उसके उदर पर झूलें डाली जाएँ जो सुवर्ण और चाँदी के मूल्यवान तारों और विविध रत्नों से गूँथी जाकर शोभायमान हों।

कार्यं शृङ्गद्वयं तस्य सवस्त्रं चामरान्वितम्।

---

21. 'मणिरथोपेतं' इति मूलपाठः।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

पट्टं शिरसि सौवर्णं चन्द्रसूर्यभूषितम्॥ 157॥

महावृषभ के दोनों सींगों को वस्त्र सहित चामर बाँधकर सजाने चाहिए। सिर पर सुवर्ण का पट्ट हो जिस पर चन्द्रमा और सूर्य शोभायमान हों।

चामराश्वत्थपत्रेश्च बध्नीयाद्रत्न संयुतम्।
ग्रैवेयकेन दिव्येन नानारत्नोपशोभितम्॥ 158॥

उक्त चामरों को रत्नजटित अश्वत्थपत्रों के साथ बाँधकर लगाएँ। गले में दिव्य ग्रैवेयक (गलपट्ट) नाना प्रकार के रत्नों से शोभित किए जाएँ।

घण्टां कास्यां महाघोषा बध्नित सुस्वनाम्।
खुरैः सौवर्णकाद्यैश्च केयूराङ्गदभूषितम्॥ 159॥
पट्टवस्त्रैर्विचित्रैश्च यथाशोभमलङ्कृतम्।

महाघोष करने वाले कांसे के घण्टों को बाँधा जाएँ जो अच्छी ध्वनि करते हों। खुरों को सोने से मंढ़ा जाए और केयूर-अंगद जैसे गहने धारण करवाएँ। इसी प्रकार तरह-तरह के रेशमी पट्ट-वस्त्रों से महावृषभ को जहाँ जैसा अच्छा लगे सजाएँ।

विमानद्वयस्तु तूर्यादि वाद्यादि मङ्गलैः॥ 160॥
दोधूयमानचमरैः शिवाय विनिवेदयेत्।

इसी प्रकार दो विमानों को तूर्य-भेरी आदि वाद्यों के वादन और मांगलिक-बधावा गीतों के गान सहित, चंवर ढुलाते हुए भगवान् शिव को निवेदित करने चाहिए।

यावन्नृणाम सङ्ख्यानात्तत्प्रसूति कुलेषु च॥ 161॥
[तत्सर्वं विलयं पापं शिवपुरं मही]यते।
स च मानुष्यलोकमागच्छेत् पुनरध्रुवम्॥ 162॥
ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव स विमुच्यते।
ऐश्वर्य्याण्यभिजायन्ते जायमानाः पुनः पुनः॥ 163॥[22]

इस दान-निवेदनकर्ता के कुल में जितनी भी संख्या में लोग जन्म लेते हैं, उन सबके समस्त पापों का विलय हो जाता है और वे शिवलोक को प्राप्त होते हैं। वे पुनः

---

22. महाभारते— युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन सह यूथपम्। गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरिशृङ्गमलङ्कृतम्॥ वृषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परन्तप। ऐश्वर्याण्यभिजायन्ते जायमानेष्वतः पुनः॥ दृतिकण्ठमनड्वाहं सर्वरत्नैरलङ्कृतम्। दत्वा प्रजापतेर्लोकान् विशोकः प्रतिपद्यते॥ दानमयूखे च कृत्यकल्पतरौ, पञ्चम, दानकाण्डे, पृष्ठ 178

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

निश्चित रूप से मनुष्य लोक में आते हैं और ज्ञानयोग को प्राप्त करके शीघ्र ही मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार उनको जन्म-जन्म में ऐश्वर्य सुलभ होता रहता है।

गोकुलेगोदानफलमाह —

सत्सिकांश्च मनसः प्राणां बहुक्षीरदुहां च गाम्।
नानाभरणसंयुक्ताः पूर्वशोभा समन्विताः॥ 164॥
तां भक्त्या सम्पूज्य व्रजश्चैव गोकुले।
इत्येवं यः प्रदधात्तु वृषेन्द्रं शिवेनाकुले॥ 165॥
स पूर्वोक्तं लभते पुण्यं वृषदानकृता शुभम्।

जब भी कोई व्यक्ति मन और प्राण को एक करके पर्याप्त दूध देने वाली गाय को पूर्ववर्णित अलंकरणों सहित नाना प्रकार से सजाकर भक्तिपूर्वक ले जाकर गोकुल को दान करता है और वैसे ही वृषेन्द्र (साँड) का शिवकुल के प्रति दान करता है तो वह पूर्वोक्त वृषदानकर्ता के समान शुभ पुण्य अर्जित करता है।

तथा प्रयाति सद्गुणोपेतमनड्वाहं शिवाश्रये॥ 166॥
दशधेनु प्रदानस्य फलं शोभनमाप्नुयात्।

इसी प्रकार जो शिवाश्रय में सद्गुण सहित साँड का दान करता है, वह दस गायों के बराबर दान का शोभास्पद फल प्राप्त करता है।

गोप्रशंसामाह —

उत्पाद्य सस्यानि तृणञ्चरन्ति [23]तूष्णि बभूयः सलिलं पिबन्ति॥ 167॥
आहारपीडां न प्रवदन्ति किञ्चित् अहो! वृषैर्जीवतिजीवलोकः।

जीवनोपयोगी धान्यराशि को उगाकर भी जो केवल घास को चरती है और मात्र जल पीकर सन्तुष्ट रहती है और अपनी आहार सम्बन्धी पीड़ा को किसी से नहीं कहती, अहो! धन्य हैं ऐसी वृषों की जननी गाय जो इस जीवलोक में रहती हैं।

वृषविषयकपातकानि —

वृषाणां वृषमारूढाः ये चरन्ति नराधमाः॥ 168॥
ते महाप्रलयं यावत् पच्यन्ते नरकादिषु।

---

23. 'ॐतदेव भूयःसकलं वहन्ति। नभारखिन्नाः प्रवदन्ति किञ्चित् अहो वृषैर्जीवतिर्जीवलोकः।' इति स्कन्दपुराणपाठः हेमाद्रि. दानखण्डे अध्या. 7, पृष्ठ 481

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

बैलों के ऊपर बैठकर जो मूढ़जन वृषों को चराते हैं, व सब महाप्रलय तक नरक की अग्नि में पकाए जाते हैं।

वृषपृष्ठेन गच्छन्तः ज्ञानं ज्ञात्वा सदा नृपः॥ 169॥
नवारदेमपेक्षत पापं तस्माल्पपि तत्समः।

राजा को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए यदि कोई बैल की पीठ पर सवारी करता पाया जाए तो उस पापी के नौ दाँत उखाड़े जाएँ, चाहे उसका पाप अल्प ही क्यो न हों मगर दण्ड बराबर होगा।

ये वृषाविधुनिनिर्मुक्तास्त्रिशूलाङ्काः शिवं प्रति॥ 170॥
तान् वाहयन्ति ये मूढाः पापाचारी नराधमाः।

जो बैल भाग्य-निर्मुक्त हो अर्थात् शिव के निमित्त छोड़े गए हों, उन पर त्रिशूल का चिह्न किया जाता है। ऐसे त्रिशूलांकित साँड को जा मूढ़जन वाहन बनाता है, वह पापाचारी और नराधम होता है।

ते महाप्रलयं यावदशेष नरकादिषु॥ 171॥
पच्यन्ते विविधैर्घोरैः पत्नीपुत्रादि संवृत्तैः।

ऐसा पापी प्रलयान्त तक नरक-निवास करता है और नरकाग्नि में अपनी पत्नी व पुत्रों सहित घोरदण्ड प्राप्त करता हुआ पकाया जाएगा।

राज्ञां तु विषये यस्य अनन्तश्च नराधमाः॥ 172॥
वृषान्वहन्ति पापिष्ठाः पापं तस्यापि तत्समम्।
तस्मान्निवारयेद्राजा बाध्यमानान् जनैर्वृषान्॥ 173॥
अन्यथा घोरेषु नरकेषु च तत्स्वयं व्रजेत्।

यदि ऐसा करने वाला किसी प्रदेश का राजा भी हो तो वह अनन्तकोटि नराधम होता है क्योंकि जो ऐसे बैलों को जोतता हैं, उस पापीष्ट और राजा के पाप समान ही होते हैं। इसलिए राजा को चाहिए कि वह ऐसे लोगों को जो बैलों को ऐसे कार्यों के लिए जोतकर बाध्य करते हैं, इस काम के लिए निषिद्ध करें। अन्यथा स्वयं वह राजा भी घोर नरक में जाएगा।

वाह्यमानान् वृषान् भूपो निवार्य स्वर्गमाप्नुयात्॥ 174॥
इह राज्यं धनं सौख्यमायुर्कीर्तिः श्रियं सुतान्।
यश्च पापविशुर्ध्यं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ते॥ 175॥

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जो राजा वाहन रूप में प्रयोग में लाए जाने वाले साँडों को दुष्टों से छुड़ाता है, वह स्वर्ग को प्राप्त होता है। वह यहाँ राज्य, धन, सुख, आयु, कीर्ति, श्रिय, पुत्रादि को प्राप्त करता है। इस तरह पाप की विशुद्धि के लिए प्रायश्चित का आचरण करना चाहिए।

वृषभैकादशीदानफलमाह —

वृषैकादशकं दत्वा वृषं रक्षेच्च मातरम्।
एकैकां रक्षणं कुर्यात् गोरूपाणां शतं शतम्[24] ॥ 176 ॥
वर्धते च सुखे नैव चरन्ति रमरन्ति च।

वृष-एकादशी (एक बैल और दस गाय) के दान से वृष की माता गाय की रक्षा की जा सकती है। इस प्रकार एक-एक गाय की रक्षा करते हुए सौ-सौ गायों की रक्षा होती है। इससे वे गायें सुखपूर्वक चरती और रमती-खेलती हुई वृद्धि को प्राप्त होती है।

गोपालनफलमाह —

गोब्राह्मणं प्रविरलं स तदन्ते तरतस्तथा ॥ 177 ॥
तस्मात्र विरला गाश्च चारयेत् पालयेति च।

गाय और ब्राह्मण की सेवा करते हुए अन्ततः संसार से तारण होता है। इसलिए रुचि सहित गायों को पालने और चराने का उपक्रम करना चाहिए।

गोभिर्नैकत्र रक्षास्याददम्यास वाहभर्तृकाः ॥ 178 ॥
अभिद्रवन्ति ये गाः सुयुताभि नश्यन्त चेऽपि च।

गायों को अकेली देखकर उनका पालन करें, उनको एकत्र करके उनकी रक्षा के उद्देश्य से सेवक को नियुक्त करना चाहिए। जो गायों की सेवा से दूर होते हैं, वे नाश को प्राप्त होते हैं।

शरद् ग्रीष्मे च मध्याह्ने छायायां विनिवेशयेत् ॥ 179 ॥
प्राप्तं विरला गाव भक्तितः तं चारयेत्।
एवं प्रविरला गावः सदकृत्यानुपालयेत् ॥ 180 ॥

---

24. तथा च शिवधर्मपुराणे— दश गावो वृषश्चैको वृषभैकादशी स्मृता ॥ शिवाय विनिवेद्यैवं अवधारय तत्फलम्। रुद्रैकादशतुल्याढ्यो बलभोगादिभिर्गुणैः ॥ शिवधर्मपुराणे 10, 219-220; भविष्यपुराणेपि— दश गावः स वृषभा वृषभैकादशी स्मृता। शिवाय विनिवेद्यैवं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ रुद्रैकादशतुल्यात्मा बलभोगादिभिर्गुणैः। शिवादिसर्वलोकेषु यथेष्टं मोदते वशी ॥ चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे अध्या. 7, पृष्ठ 567; तत्रैव भविष्यपुराणात् उद्धरणम्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

विधौते पातकैः सर्वैः शिवलोकमवाप्नुयात्।

गायों के हित में शरदकाल और ग्रीष्मकाल के मध्याह्न में छाया का प्रबन्ध करना चाहिए। इसी प्रकार किसी अकेली गाय को पाकर उसका श्रद्धापूर्वक पालन करें। इस प्रकार एक-एक गाय का पालन सुकृत्य की तरह करना चाहिए। ऐसा करने वाला अपने समस्त पापों को धोता हुआ अन्त में शिवलोक को प्राप्त होता है।

ये [क्षुत्तृषार्त्ताय तोयतृणं प्रयच्छति] जनाः॥ 181॥
ते विन्दन्ति महाभोगान्नराः शिवपुरे चिरम्।

जो लोग भूखी प्यासी गायों के लिए जल, घास आदि का प्रबन्ध करते हैं, वे भगवान् शिव के पुर में चिरकाल तक महाभोगों का लाभ उठाते हैं।

शिवाश्रमयात्रामाहात्म्यमाह —

ये शिवाश्रम तीर्थानि श्रद्धया यान्ति मानवाः॥ 182॥
ते वसन्ति महाभोगैर्दिव्यैः शिवपुरे नात्र संशयः।

जो मनुष्य शिवाश्रम और तीर्थों में श्रद्धापूर्वक पहुँचते हैं, वे निःसन्देह शिवपुर में निवास करते हैं और वहाँ विशिष्ट दिव्यभोगों को भोगते हैं।

ये दानं शिवभक्त्येभ्यः प्रयच्छन्ति विपश्चितः॥ 183॥
ते क्रीडन्ति महाभोगैर्नित्यं शिवपुरे सदाः।

जो बुद्धिमान शिवभक्तों के प्रति दान करते हैं, वे मनुष्य सदा शिवपुर में क्रीड़ा करते हैं और वहाँ नित्य महाभोगों का उपभोग करते हैं।

स शिव परिपूर्णत्वा किञ्चिदर्थं समीहते॥ 184॥
किन्तु तन्नाममात्रेण दत्तं भवति चाक्षयम्।

उन शिव के परिपूर्णत्व के बिना कुछ भी पूरा नहीं होता है तथापि भगवान् को नाममात्र भी दान किया हुआ अक्षय सिद्ध होता है।

दानकालवचनमाह —

दानेनानेन भगवान् प्रियतां मे शिवः सदाः॥ 185॥
इत्युक्त्वा एवमर्थिभ्यो दानं स्यादक्षयं फलम्।

दान देते समय कहना चाहिए— "मेरा यह दान सदा भगवान् शिव की प्रसन्नता के लिए है।" ऐसा कहकर दानार्थी को दान करने का फ़ल अक्षय होता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शिवज्ञानीप्रतिवस्त्रकृष्णाजिनादीनां दानमाह —

यस्तूलपूर्णविस्तीर्णं दद्याद्वस्त्रमपूर्वकम्॥ 186॥
मृदुचर्मकृतं वापि सितवस्त्रावगुण्ठितः।
कृष्णाजिनोपरिच्छन्नं पुष्पधूपादि वासितम्॥ 187॥
शिवाज्ञानाभियुक्ताय श्रद्धया विनिवेदयेत्।

रुई से भरे हुए बड़े बिस्तर-गदले का दान वस्त्रदान की तरह करना चाहिए। मुलायम चर्म से बने हुए अथवा सफेद वस्त्र से ढके हुए वस्त्र भी हो सकते हैं। पहनने योग्य कृष्णमृगाजिनों को पुष्पों और धूपादि से सुवासित करके शिवज्ञान के जानकार को श्रद्धापूर्वक दान करना चाहिए।

यस्तूलवस्त्रतन्तूनां रोम्णां सङ्ख्यानि यावति॥ 188॥
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते।

इस प्रकार का दान करने वाला जितने रुई के वस्त्रों में तन्तु अथवा रोम की संख्या होती है, उतने हजार वर्षों तक शिवलोक की महिमा बढ़ाता है।

शिवमुद्दिश्य यद्द्रव्यं यः प्रदद्यात्तदर्थिने॥ 189॥
शाकमूलफलाद्यं वा तस्य पुण्यफलं शृणु।
यावत् सा शाकादीनां सङ्ख्यपत्र फलेषु च॥ 190॥
तावद्वर्ष सहस्राणि शिवलोके महीयते।

दानार्थियों द्वारा जो द्रव्यादि शिव के प्रति दान उद्देश्य से दिए जाते हैं, उनमें से सब्जी, मूल अथवा फलादि के दान के पुण्यफल को सुनियेगा। सब्जी आदि के दान करने पर जितनी संख्या में उनमें पत्रादि होते हैं, उतने हजार वर्षों तक दानदाता शिवलोक की महिमा की अभिवृद्धि करता है।

सव्यञ्जनभिक्षादीनां दानफलमाह —

भिक्षां सव्यञ्जनं दत्वा शिवभक्ताय भक्तितः॥ 191॥
वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते।

जो शिवभक्तों के प्रति भक्तिपूर्वक व्यंजनों सहित भिक्षा प्रदान करता है, वह लाख वर्षों तक शिवलोक में रहकर महाभोगों का लाभ उठाता है।

दध्यन्नं भिक्षपूर्णं वा भिक्षापात्रं सुशोभनम्॥ 192॥
दद्याद्यः शिवभक्ताय तस्य पुण्यफलं शृणु।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

वर्षकोटिशतं दिव्यं महाभोगैः समन्वितः॥ 193॥
स्थित्वा शिवपुरे देही तस्यान्ते स महीपतिः।

जो श्रद्धालु सुन्दर भिक्षापात्र में दही और अन्न परोसकर सर्वप्रथम शिवभक्तों को प्रदान करता है, उसका पुण्यफल सुनियेगा। ऐसा दानदाता शतकोटि वर्षों तक शिवपुर में रहकर दिव्य महाभोगों को भोगता है और अन्ततः राजा होता है।

शिवभक्तप्रतिजलदानफलमाह —

सुशीतलेनतोयेन शिवभक्तं पिपासितम्॥ 194॥
तर्पयित्वा स शिवलोके वर्षलक्षं प्रमोदते।

जो प्यासे शिवभक्त को अच्छी तरह से शीतल जल पिलाकर तृप्त करता है, वह लाख वर्षों तक शिवलोक में आनन्द उठाता है।

कर्करीयुक्तकलशदानपुण्यमाह —

कलशं कर्करीयुक्तं वस्त्रपूताम्बुपूरितम्॥ 195॥
प्रदद्याच्छिवभक्ताय तस्य पुण्यफलं शृणु।
शुद्धस्फटिकसङ्काशैर्विमानैः सर्वकामिकैः॥ 196॥
सम्प्रदद्य शिवलोके वर्षलक्षं प्रमोदते।

कर्करीयुक्त कलश जिसमें कपड़े से छाना गया जल भरा हो, को शिव के भक्त के प्रति दान करने से जो पुण्य होता है, उसको सुनियेगा। ऐसा दानकर्ता शुद्ध स्फटिक के समान विमान में बैठकर स्वर्गलोक को जाता है। इस दान से वह लाखों वर्षों तक शिवलोक में आनन्दित रहता है।

नानापात्रदानफलमाह —

पालाशपद्मपत्रैर्वा यः कृत्वा पुटिकानि तु॥ 197॥
प्रदद्यात दानभक्तितः स दाता ताम्रपात्रफलं लभेत्।

पलाश के पत्तों अथवा कमल के पत्तों का पुटक अर्थात् दोना बनाकर जो शिवयोगी को भक्तिपूर्वक दान करता है, वह दानदाता ताँबे के पात्र के दान के बराबर फल प्राप्त करता है।

यः ताम्रपात्रं सुकृतं प्रदद्याच्छिवयोगिने॥ 198॥
स स्वर्णपात्रस्य दानस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात्।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जो शिवयोगी के प्रति ताँबे के पात्र को दान करने का सुकृत करता है, वह सुवर्णपात्र के दान के बराबर फल प्राप्त करता है।

[यः कांस्यपात्रस्य दानस्य दत्तं] शिवयोगिने॥ 199॥
कोटि कोटि सः कल्पानां शिवलोके महीयते।

जो शिवयोगी के प्रति कांस्यपात्र का दान करता है, वह कोटि-कोटि कल्प तक शिवलोक की महिमा बढ़ाता है।

रौप्यकं शिवमुद्दिश्य ये भक्तं शिवधार्मिकम्॥ 200॥
भोजयित्वा तथा दध्यन्न सव्यञ्जन तथैव च।
स वेदज्ञानपूरितं शान्त शक्त्या भक्त्या च पूजयेत्॥ 201॥
स तु दिव्यैर्महाभोगैः शिवलोके महीयते।

जो भक्त चाँदी के बने पात्र का भगवान् शिव के उद्देश्य से दान करता है और शिवधार्मिकों को व्यंजन सहित दही, अन्न का भोजन करवाकर शान्तचित्त होकर भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह वेदज्ञान से परिपूर्ण हो जाता है।

शूलधारकप्रतिनमस्कारफलमाह —

त्रिशूलपाणै यो भक्त्या वहते शिववत् सदा॥ 202॥
श्रद्धया तं नमस्कृत्वा प्रयत्नेन शिवलोकमवाप्नुयात्।

शिव के समान सदैव त्रिशूल धारण करने वाले को जो व्यक्ति सप्रयत्न श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता है, वह शिवलोक को प्राप्त होता है।

शिवब्रह्मचारिणां भोजनफलमाह —

भोजयेच्छ्रद्धया भक्त्या यः शिवब्रह्मचारिणाम्॥ 203॥
स भोगैः क्रीडते दिव्यैः शिवलोके व्यवस्थितः।

जो शिवब्रह्मचारी को श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भोजन करवाता है, वह शिवलोक में क्रीड़ा करता हुआ दिव्य भोगों का उपभोग करता है।

यः शिवाश्रम निवासितं गृहस्थग्रस्थं भोजयेद्बुधः॥ 204॥
विपुलैः स महाभोगैः क्रीडञ्छिवपुरे वसेत्।

जो बुद्धिमान शिवाश्रम में निवास करने वाले गृहस्थजनों को भोजन करवाता है, वह शिवपुर में निवास करता है और वहाँ बहुत से महाभोग का लाभ उठाता है।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

शिवाश्रमे वनस्थं यः कन्दमूलफलैर्यजेत्॥ 205॥
दिव्यान् प्राप्नुयाद्भोगानीश्वरस्य पुरे स्थितः।

शिवाश्रम में रहने वाले वानप्रस्थी को कन्द-मूल-फल से यजन करवाता है, वह ईश्वर के पुर में स्थित होकर दिव्य भोगों का लाभ प्राप्त करता है।

एकं पाशुपतं भक्त्या पूजयित्वा प्रणम्य च॥ 206॥
नानाविधैर्महाभोगैः शिवलोके महीयते[25]।

यदि कोई व्यक्ति एक पाशुपत शैव को भोजन पर न्यौतकर पूजन और प्रणाम करता है तो वह शिवलोक को प्राप्त होता है और वहाँ पर नाना प्रकार के महाभोगों का लाभ उठाता है।

महाव्रतधरामेकां भिक्षाय प्रतिपादयेत्॥ 207॥
दिव्यैः सुमहाभोगैः शिवलोके महीयते।

जो एक महाव्रतधारी को भिक्षा के प्रयोजन से बुलाता है, वह दिव्य और सुन्दर महाभोगों के साथ शिवलोक की महिमा बढ़ाता है।

अन्त्यजमनाचारं शिवभक्तिरतं नरम्॥ 208॥
भोजयित्वा यथा भक्त्या शिवलोके महीयते।

कोई अन्त्यज और अनाचारी व्यक्ति भी यदि शिवभक्ति में लगा हुआ हो तो उसको यथाभक्ति भोजन करने वाला शिवलोक को प्राप्त होता है।

ज्ञानयोग वा इष्टाये लोके सामान्यकर्मभिः॥ 209॥
पूजयन्ति शिवं भक्त्या शिवलोकं स गच्छति।

ज्ञानयोग की साधना अथवा इच्छित सामान्यकर्मों को करता हुआ भी जो शिव की भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह शिवलोक को जाता है।

महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगं च शाश्वतम्॥ 210॥
योऽनेन विधिना युक्तं ज्ञानयोगं समाचरेत्।
स पश्यति महादेवं नान्यः कल्पशतैरपि॥ 211॥

भगवान् शिव की आराधना के लिए ज्ञानयोग शाश्वत है। जो विधिपूर्वक इस ज्ञानयोग का आचरण करता है, वह वह महादेव के दर्शन करता है, अन्य कोई व्यक्ति सैकड़ों कल्पों तक भी उनका साक्षात्कार नहीं कर सकता है।

---

25. तुल.— स्कन्दपुराणवचनम्। विधानपारिजाते चतुर्थस्तबकः पृष्ठ 398

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

स्थापयेद् यः परं धर्मं ज्ञान तत्पारमेश्वरम्।
न तस्मादधिको लोके स योगी परमो मतः॥ 212॥

इस प्रकार समझकर जो इस परम धर्म और परमेश्वर शिव विषयक ज्ञान की निष्ठा से स्थापना करता है, इस लोक में उससे बढ़कर और कोई नहीं है। वह परम योगी माना जाता है।

यः संस्थापयितुं शक्तो न कुर्यान्मोहितो जनः।
स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रियः॥ 213॥
तस्मात् सदैव दातव्यं यतिनामेषु विशेषतः।
धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै[26]॥ 214॥

जो व्यक्ति समर्थ होकर भी परमेश्वर के ज्ञान को संस्थापित नहीं कर सकता है और मोहित या भ्रमित रहता है, वह मुनि योगयुक्त होकर भी भगवान् का बहुत प्रिय नहीं हो सकता है। इसलिए सदैव इस ज्ञान का विशेष रूप से धर्मयुक्त, शान्तचित और श्रद्धासम्पन्न यतियों को उपदेश करना चाहिए।

ज्ञानयोगेन शास्ता ये यजन्ते परमं शिवम्।
ते सर्वदुःखनिर्मुक्ता भक्त्या शिवलोके व्रजन्ति॥ 215॥

ज्ञानयोग के द्वारा जो साधक परम शास्ता शिव का यजन करते हैं, वे अपनी भक्ति से समस्त दुखों से मुक्त होकर शिवलोक को जाते हैं।

इत्येतच्छिवलोकस्य माहात्म्यं समुदाहृतम्।
गोलोकस्य प्रसङ्गेन तद्भक्तानां समानतः॥ 216॥

इस तरह यह शिवलोक का माहात्म्य यहाँ कहा गया है। यहाँ गोलोक के प्रसंग को भी उसके भक्तों के प्रति समान रूप से कहा गया है।

शिवलोकाद्बहिर्ज्ञेयं [सप्तोर्ध्वमृषयः स्थिताः[27]]।
षड्गुणेनाकारख्यातिः च प्रकृतिरष्टमी॥ 217॥

---

26. तुल. — कौर्मे. उ. वि. 33, 145-149; तथा च मातृकायाम्— येभ्यः परादैवतमातृपूजालोकेऽखिले ते गोगृहवासनां च॥ सर्वेऽपि तिष्ठन्ति दिवं प्रहृष्टा भवेयुरन्ते पृथक् पृथक् तच्च। ध्यानेन तु लोकेपुरुषौमहान्तो तौ गच्छतः सूर्यकरात्प्रभृत्या॥ एको मुनिर्योगरतस्तथास्यय प्राणान्प्रियान्यस्तृजतः गवार्थे। शनै शनै वापि करीषवह्नौ न च प्रदानैर्नतपोभिरग्रैः॥ गतिं प्रयाति स्म सयज्ञसङ्घैः नीजोपि यां गच्छति गोगृहेषु। पाल्याः चराति परमास पूजालोकेर्बके गोगृह सावितानाम्॥ स तिष्ठन्ति चिरञ्चकालं (शिवलोके) भवेयुरन्ते पृथिवीश्वराश्च॥ इतिमूलपाठः।

27. तुल. —शिव. उमा. 19, 15

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

ईदृशानां तथान्धानां कोट्यो ज्ञेयोः सहस्त्रशः।
सर्वज्ञत्वात् प्रधानस्य सत्यलोकस्ततः ॥ 218 ॥
स विज्ञेयो चेतसः प्रकृतेर्मध्यतः स्थितम्।
ब्रह्मणः परमस्थानं पद्मराग समप्रभम्॥ 219 ॥

शिवलोक के बाहर ऊपर की ओर सप्तर्षियों का लोक है। आठ प्रकृति और षड्गुणाकार से उसकी ख्याति है। इस रूप में अन्धतम हजारों कोटियों के साथ सर्वज्ञत्व मुख्य सत्यलोक है। उसके बाद ध्यान से प्रकृति के मध्यवर्ती ब्रह्मा का परम स्थान जानना चाहिए। ब्रह्मा का वह स्थान पद्मराग के समान दैदीप्यमान है।

ब्रह्मलोकात्परं ज्ञेयं विष्णोः स्थानमतिसुन्दरम्।
अयमस्तु इन्द्रनील प्रतीकाशैर्महाभोगैरलङ्कृतम्॥ 220 ॥

ब्रह्मलोक के ऊपर विष्णु का लोक है जो अतीव सुन्दर है। यह इन्द्रनील की आभा के समान दीप्तिमान है और महाभोगों से युक्त हैं।

विष्णुलोकात्परं स्थान कुमारस्य महात्मनः।
स्वच्छमौक्तिकसङ्काशं महाभोगसमन्वितम्[28] ॥ 221 ॥

विष्णुलोक के ऊपर महात्मा कार्तिकेय कुमार का लोक है। वह स्वच्छ मोती के समान प्रभा वाला है और महाभोगों से समन्वित है।

संसारात्परं स्थानमुमादेव्याः प्रकीर्तितम्।
तप्तचामीकर प्रख्यमशेषगुण संयुतम्॥ 222 ॥

संसार से भी परमस्थान उमादेवी का कहा जाता है। यह तपाए हुए सुवर्ण के समान आभा के कारण ख्याति लिए है और अशेष गुणों से संयुक्त है।

इदं उमास्थानाच्च परमं स्थानमाद्यमुमापतेः।
दिनकृत्कोटि सङ्काशं सर्वकाम समन्वितम्॥ 223 ॥

इस उमालोक से परमस्थान आद्य उमापति का है जो करोड़ों सूर्यों की प्रभा लिए है और समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला है।

---

28. तुल.— विधिलोकात्परो लोको वैकुण्ठ इति विश्रुतः। विराजते महादीप्ता यत्र विष्णुः प्रतिष्ठितः॥ तस्योपरिष्टात् कौमारो लोका हि परमाद्भुतम्। सेनानी शम्भुतनयो राजते यत्र सुप्रभः॥ ततः परमुमालोको महादिव्यो विराजते। यत्र शक्तिर्विभात्येका त्रिदेवजननी शिवा॥ परात्परा हि प्रकृती रजःसत्त्वतमोमयी। निर्गुणा च स्वयं देवी निर्विकारा शिवात्मिका॥ तस्योपरिष्टाद्विज्ञेयः शिवलोकः सनातनः। अविनाशी महादिव्यो महाशोभान्वितः सदा। विराजते परं ब्रह्म यत्र शम्भुर्महेश्वरः। त्रिदेवजनकः स्वामी सर्वेषां त्रिगुणात्परः॥ ततः ऊर्ध्वं न लोकाश्च गोलोकस्तत्समीपतः। गोमातरः सुशीलाख्यास्तत्र सन्ति शिवप्रियाः॥ शिव. उमा. 19, 34-40

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

अप्रमेयगुणं शुद्ध मनौपम्यं सनातनम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं भोगैर्विविधैः समलङ्कृतम्॥ 224॥

वह लोक अप्रमेय गुणों वाला, शुद्ध, मनोरम और सनातन है। वह समस्त आभरणों से युक्त, विविध भोगों से सुसज्जित है।

महाप्रवाहसंयुक्तैः सूर्यायुत समप्रभैः।
गणैरध्युषितैः स्थानमसङ्ख्यैर्योग तत्परः॥ 225॥

वह लोक महाप्रवाहों के साथ अयुत सूर्यों के समान प्रभा वाला है। वहाँ पर योग में तत्पर असंख्य गण प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

हरिहिरण्यगर्भ ब्रह्माद्यैर्वसुरुद्रदिवाकरैः।
स्तूयते भगवन्नित्यं तत्स्थान प्राप्तिकाङ्क्षिभिः॥ 226॥

भगवान् विष्णु, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा इत्यादि सहित आठ वसु, ग्यारह रुद्र और द्वादश सूर्य उन भगवान् की नित्य स्तुति करते हैं और उस स्थान को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं।

भगवान् ध्यानरतैः शान्तैर्भिक्षाहारैर्जितेन्द्रियैः।
प्राप्यन्ते तत्परं तत्त्वं ब्राह्मणैविन किल्विषैः॥ 227॥
तं सम्प्राप्य परमसिध्या समस्तक्लेशवर्जिताः।[29]

वे भगवान् ध्यानरत रहते हैं, शान्त हैं, भिक्षा और आहार सहित इन्द्रियों को जीतने वाले हैं। उस परम तत्त्व को पापों से रहित ब्राह्मण ही प्राप्त करते हैं और उसे प्राप्त कर वे समस्त क्लेशों से मुक्त होकर परमसिद्ध हो जाते हैं।

---

29. इत्यमनन्तरे— सर्वज्ञ ... परमः शुद्ध ... ... ॥ 228 ॥ ... ... इच्छया पुनः ॥ 229 ॥ इति नित्यं विशुद्धं च स्थानमाद्यमुमापतेः। दिव्यं श्र... ... ... ॥ 230 ॥ ... ... इयं संयुक्तः नित्यमक्षयम्॥ 231 ॥ स्वदेवता प्रणीतेन ज्ञानयोगेन ... ... । ... ... दारुरूपिणः। भवन्ति वशिनः सिद्धा स्वभोगानामधीश्वराः ॥ 233 ॥ अप्येकदिवत्तः शिवज्ञान परायणै ... ... । शिवधर्म परः सूक्ष्मः ... ... ॥ 235 ॥ ... ... फलं महत्॥ 236 ॥ देहान्ते तेन धर्मेण शिव स्थानमेनमवाप्नुयात्। ... ... यात्। तत्रार्ध सम्मितं कालं क्रीडमानः सुखं वसेत्॥ 238 ॥ त .... । ... ... योगभ्रष्टस्तिष्ठेच्छिवपुरे सुखी ॥ 239 ॥ ततस्तान्ब्रह्मविष्ण्वादि लोकान् प्रा... ... । ... ... वेत्पुनः। ततः स योगविधिना पुनर्ध्यायति शङ्करम्॥ 241 ॥ सम्प्राप्यते परं स्थानं शिवयोगमृते नरैः। तस्मादन्तर्बहिश्च ... ... ॥ 243 ॥ स विनाप्ये तत् स्थानमेकं न (स) लभ्यते। शिवप्रियेण विधिना नान्यैः प्रत ... ... ॥ 245 ॥ ततस्य ... ... ग्रीणां गवां श्वेतं सुशोभनम्। ... ... ण्यर्धन ... ... ॥ 246 ॥ इति मातृकायाम्। इत्यपरे पाठः न लभ्यते।

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

बलीवर्द्दहननप्रायश्चित्तमाह —

अनड्वान् हन्यते विप्रैरज्जुदण्डशिलादिभिः।
गृहे वा विपिने तोये भारोद्वाहनकर्म्मणि॥ 228॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि रोषाद्वा मत्सरादपि।
न तेषां निष्कृतिश्चास्ति तप्तकृच्छ्रैस्त्रिभिर्विना[30]॥ 229॥

जो विप्र वृषभ को रस्सी से बाँधकर दण्ड और पत्थर आदि से पीटते हुए घर अथवा वनखण्ड में जल और अन्य भार ढोहने के कार्य में जोतते हैं, ऐसा पाप वे ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक करते हैं, यह कार्य रोष में आकर अथवा ईर्ष्यावश करते है, उनके ऐसे पाप की निवृत्ति तीन् तप्तकृच्छ व्रत के अभाव में नहीं हो सकती है।

पोगण्डकहननप्रायश्चितमाह —

पोगण्डकं सदोन्मत्तो गोकुले स्वगृहेऽथवा।
निमित्तैः पूर्व्वजो विप्रो हन्यादेवं प्रचोदितम्॥ 231॥
तद्दोषपरिहार्थं चरेत्तप्तं यथाविधि।
पञ्चगव्यं ततः पश्चात् पिबेदज्ञाननाशनम्।
क्षत्रियाणां द्विगुणितं वैश्यानां त्रिगुणं स्मृतम्[31]॥ 232॥

विप्र को कभी पोगण्डक अथवा अल्पवयी बैल को उन्मत होकर गोगृह अथवा अपने ही घर में किसी भी निमित्त से नहीं मारना चाहिए। यदि ऐसा किया गया हो तो उस दोष के निवारण के लिए यथाविधि तप्तव्रत[32] करना चाहिए। इस अज्ञान के निवारण के लिए पंचगव्य का पान करना चाहिए। क्षत्रियों को विप्र की अपेक्षा दोगुने और वैश्यों को तीन गुना तप्तव्रत करना चाहिए।

भर्तृघ्नी प्रतिग्रहप्रायश्चित —

या नारी बहुभिर्विप्रं प्रतिहन्ति विषादिभिः।

---

30. चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ प्रायश्चितखण्ड पृष्ठ 95

31. तत्रैव प्रायश्चितखण्ड पृष्ठ 90; एतद् प्रसङ्गे अथेदानीं महिषीहननप्रायश्चितमाह— राजपुत्रोवणिग्वापि मुखजः पादसम्भवः। वनमध्ये जले गेहे महिषीं यदि यत्र वै॥ विहिंसन्ति तदा क्रूराः प्रविशन्ति च काननम्। पुनर्भुवमुपागम्य आर्द्रास्याः सम्भवन्ति ते॥ तद्दोषशमनायालं महासान्तपनं विदुः। पञ्चगव्यविधानेन पञ्चगव्यं पिबेत्ततः। शुद्धिमन्तस्तथाभूवन् नान्यथा शुद्धचेतसः॥ साचेद्भवेद् बालवत्सा तद्धिंसायां नराधिप। विप्रः कुर्यात् तदा ज्ञात्वा महासान्तपनद्वयम्। राजा सान्तपनं कुर्य्यादूरुजः क्षत्रियार्द्धतः। पादजः पादमात्रञ्च प्रायश्चितं यथाक्रमम्। तत्तत्स्त्रीणां तत्तदर्द्धं प्रायश्चित्तमुदीरितम्॥ तत्रैवोद्धृत पृष्ठ 107

32. तप्तक्षीरघृताम्बूनामेमैकं प्रत्यहं पिबेत्। एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र मुदाहृतम्॥ प्रायश्चितेन्दुशेखरे, पृष्ठ 9

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

राजासक्ताऽन्यतो विप्रः कदा तां नाऽवलोकयेत्[33] ॥ 233 ॥

जिस नारी ने पति या विप्रादि बहुत जनों को विषादि देकर मार डाला हो और राजा आदि की आसक्त भी हो तो विप्रादि को उसकी ओर कभी नहीं देखना चाहिए।

उभयमुखीप्रदक्षिणाफलमाह —

द्विमुखीं षट्पदां धेनुमनुव्रज्य प्रणम्य च।
यो दद्याद्विप्रवर्य्याय स वै विष्णुपदं व्रजेत्[34] ॥ 234 ॥

दोनों ओर मुख वाली, छह पाँवों वाली गाय को परिक्रमा कर प्रणाम करना चाहिए, ऐसी उभयमुखी गाय को जो विप्रवर्य को प्रदान करता है, वह विष्णुपद को जाता है।

दधिधेनुप्रतिग्रहमाह—

दधिधेनुमलङ्कृत्य गन्धवस्त्रादिभूषणैः।
अभ्यर्च्य विधिवद्भक्त्या दद्याद्योविप्रपुङ्गवे ॥ 235 ॥
न तस्य यमबाधाऽस्ति तदगृहे वा प्रवेशनम्।
तद्दर्शनं वा राजेन्द्र भवेज्जन्मनि जन्मनि[35] ॥ 236 ॥

दधिधेनु को गन्ध, वस्त्र, आभूषणों से अलंकृत करना चाहिए। उसकी विधिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणराज को दान करनी चाहिए। ऐसे दानदाता को कभी यम की बाधा नहीं सताती है, यहाँ तक कि उसके घर में यमदूत नहीं आते। उसके दर्शन करने वाला जन्म-जन्म में राजा होता है।

अथान्ते ग्रन्थमाहात्म्यमाह —

इदं शिवधर्मोत्तरं नाम्नोपपुराणमब्रवीत्।
षण्मुखं प्रोक्तमगस्त्यमुनिवरं प्रतिं पुरा ॥ 237 ॥

यह शिवधर्मोत्तर नामक पुराण कहा गया है। इसको पुराकाल में शिवकुमार स्कन्द ने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य के प्रति कहा है।

यः पठेत् शैवं सम्बद्धां यथा मर्त्यो महामतिः।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत् कीर्तिमान्नरः ॥ 238 ॥

---

33. तत्रैव प्रायश्चितखण्ड पृष्ठ 840
34. तत्रैव प्रायश्चितखण्ड पृष्ठ 758
35. तत्रैव प्रायश्चितखण्ड पृष्ठ 731

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

जो कोई महामति इस शैवधर्म से सम्बद्ध पुराण का पारायण करता है, सुनता अथवा दूसरे को सुनाता है, वह व्यक्ति कीर्ति को प्राप्त करता है।

दीर्घायुः सुभगश्श्रिमान्कान्तिमाञ्छुभदर्शितः।
भूतेभ्यो निर्भयश्चापि सर्वदुःखनिवर्जितः॥ 239॥

इस पुण्य के फलस्वरूप वह दीर्घायु होता है, सौभाग्यवान होता है, श्री से समृद्ध होता है और शुभ स्वरूप पाता है। वह समस्त भूत-प्राणियों से निर्भय होता है और समस्त दुखों से रहित हो जाता है।

इदं तत्परं शिवधर्मानुशासनं वरम्।
तनुक्षये च सायुज्यं महेश्वरः व्रजेन्नरः॥ 240॥

यह परमश्रेष्ठ शिवधर्मानुशासन का प्रवर्तक शास्त्र हैं। इसका पाठ करने वाला मनुष्य शरीरान्त होने पर भगवान् शिव की सायुज्यता को प्राप्त हो जाता है।

इति शिवधर्मोत्तरे पातालादि शिवलोक पर्यन्तानां लोकानां निरूपणम् तत्र विशेषतो गोलोकवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ 12॥

इस प्रकार शिवधर्मोत्तर पुराण में पातालादि शिवलोकपर्यन्त लोक निरूपण और उसमें भी विशेष रूप से गोलोक वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

*****

इति शिवधर्मोत्तरपुराणम्।

*****

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

श्रीकृष्ण 'जुगनू'

राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले के आकोला गाँव में 2 अक्टूबर, 1964 को संत-कवि मोहनलालजी चौहान के घर जन्म। हिन्दी, अंग्रेजी और इतिहास में स्नातकोत्तर। राजस्थान की हीड़ गाथाओं पर पीएच. डी., पत्रकारिता में पी. जी. डिप्लोमा, बी. एड. और श्रव्य-दृश्य मीडिया दक्ष। सम्पूर्ण शिक्षा स्वयंपाठी स्तर पर। इतिहास-पुरातत्त्व, शिल्प-स्थापत्य, कला, शिक्षा, धर्म और संस्कृति जैसे विषयों के अध्ययन-अध्यापन, अनुसन्धान और लेखन में गहरी रुचि। इन विषयों पर 1978 ई. से लेकर आज तक सात हजार से अधिक लेखों, शोधलेखों का देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन। कई शिलालेखों का सम्पादन और अनुवाद। देश-विदेश के ग्रन्थ भण्डारों में मौजूद शताधिक भारतीय ज्ञान-विज्ञान की संस्कृत पाण्डुलिपियों का पाठ सम्पादन और अनुवाद। कई पुस्तकों पर विश्व विद्यालयों में शोधकार्य सम्पन्न। काव्यपाठ आदि का 1983 से आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारण।

प्रकाशित पुस्तकें (मौलिक) : भलाभाई-बुराभाई, लिछमी पण म्हारी लिछमण कार (राजस्थानी काव्य संग्रह), कला की कालकथा, मन्दिर श्रीअम्बामाताजी उदयपुर, मेवाड़ का प्रारम्भिक इतिहास, वास्तु एवं शिला चयन, महाराणा प्रताप का युग, राजस्थान की ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, राजस्थान के प्राचीन अभिलेख, रिश्ते में औरत (कहानी संग्रह) इत्यादि।

सम्पादन और अनुवाद : महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्य, ज्योतिष रत्नमाला, वृक्षायुर्वेद, मनुष्यालय चन्द्रिका वास्तुसार मण्डनम्, आयतत्त्वम्, चित्रलक्षणम्, राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम्, प्रासाद मण्डनम्, देवता मूर्ति प्रकरणम्-रूप मण्डनम्, वास्तु मण्डनम्, वास्तु मञ्जरी, कलानिधि, वास्तूद्धार धोरणी, मुहूर्त कल्पद्रुम, मुहूर्त दीपक, शिल्प शास्त्रम्, वास्तु विद्या, प्रमाण मञ्जरी, मयमतम्, शिल्पशास्त्रे आयुर्वेद, ज्योतिष वृत्तशतम्, योगगीता, कला विलास, विवेक विलास, वास्तु रत्नावली, एकलिङ्ग पुराण, अपराजित पृच्छा, राजमार्तण्ड, राजमृगांक, समराङ्गण सूत्रधार, बृहत्संहिता, आत्रेय तिलक इत्यादि 80 पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर से नवोदित प्रतिभा प्रोत्साहन पुरस्कार (1982 ई.), साहित्य मण्डल नाथद्वारा से हिंदी सेवी सम्मान (2003 ई.), महाराणा मेवाड़ फाउण्डेशन, उदयपुर से महाराणा कुम्भा सम्मान (2008 ई.), मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ (2009 ई.), त्रिवेदी ब्राह्मण मेवाड़ा समाज संस्थान, बड़ौदा (2011 ई.), भारतीय भाषा संसद, कोलकाता और जय स्मिता वास्तु प्रतिष्ठान, गोवा (2012 ई.) राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर द्वारा जगन्नाथ सम्राट ज्योतिष सम्मान (2013 ई.), राजस्थान के राज्यपाल द्वारा राज्यस्तरीय और राष्ट्रपति महोदय द्वारा राष्ट्रीय शिक्षक सम्मान (2013-2014 ई.) आदि सम्मान।

निवास : 40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर - 313001

skjugnu@gmail.com

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

964 को संत-
में स्नातकोत्तर।
ोमा, बी. एड.
हास-पुरातत्त्व,
यन-अध्यापन,
आज तक सात
प्रकाशन। कई
ौजूद शताधिक
अनुवाद। कई
का 1983 से

ी पण म्हारी
ीअम्बामाताजी
प्रताप का युग,
ान के प्राचीन

वक्रपाणि मिश्र
का वास्तुसार
म्, देवता मूर्ति
धोरणी, मुहूर्त
म्, शिल्पशास्त्रे
स्तु रत्नावली,
ङ्ग सूत्रधार,

तिभा प्रोत्साहन
(2003 ई.),
), मीरा स्मृति
ड़ौदा (2011
(2012 ई.)
(2013 ई.),
शिक्षक सम्मान

01

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by Agam Nigam. Funding Tattva Heritage Foundation, Kolkatta and IKS-MOE

₹ 1800.00 (Set in 2 Vols.)

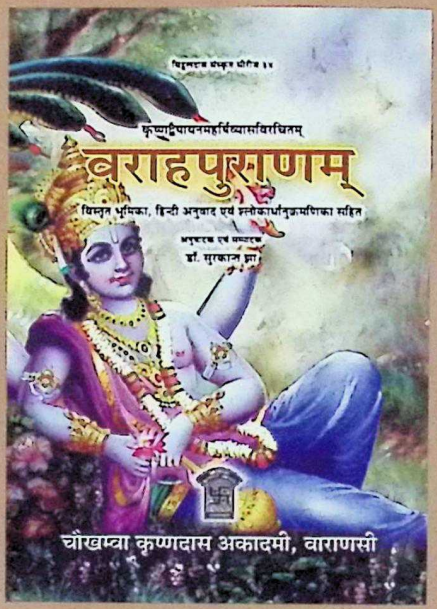

₹ 1250.00

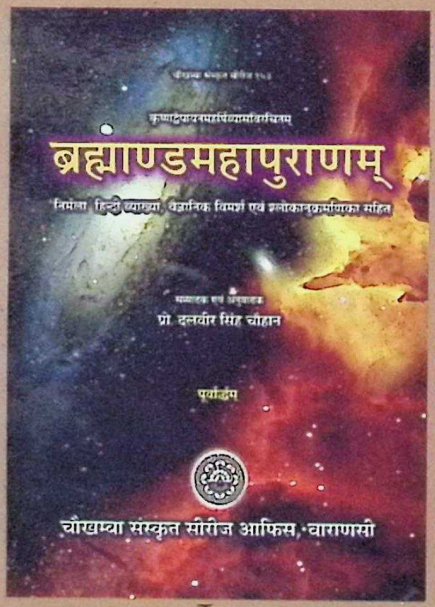

₹ 1600.00 (Set in 2 Vols.)

Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy**, Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-474-1 ₹ 425.00

designed by Shreyashi GRAPHICS, ph. 9830814784

Center for Shaiva Studies, Pondicherry Collection